आठवें-दशक के हिन्दी उपन्यासों में युवा-मानस

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

की

पी.एच-डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

1989

प्रस्तुतकर्त्री :

इन्दु त्रिपाठी, एम.ए., एम.फिल्

निर्देशक :

डॉ. वाई. वेंकटरमण राव

एम.ए. (हिन्दी, तेलुगु) पी.एच-डी

प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्ष, (हिन्दी विभाग)

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद ।

SUPERVISOR'S CERTIFICATE

This is to certify that Indu Tripathi, M.A., M.Phil. is a bonafide student of the Department of Hindi, University of Hyderabad and the Thesis entitled "AATHVEN DASHAK KE HINDI UPANYAASON MAI YUVA MAANAS" is a bonafide record of the research work done under my supervision for the award of Ph.D. Degree in fulfilment of the course work.

Hyderabad

Dated: 31st July, 1989.

Prof. Y.VENKATARAMANA RAO 31/7/89

SUPERVISOR

DECLARATION

I hereby declare that this thesis entitled AATHVEN DASHAK KE HINDI UPANYAASON MAI YUVA MAANAS" has been written by me under the guidance and supervision of Prof. Y. Venkata Ramana Rao, M.A. (Hindi), M.A. (Telugu), Ph. D., Head of the Hindi Department, University of Hyderabad, in fulfilment of the requirement for the award of Ph.D. Degree.

I also declare that this thesis is the result of my own effort and has not been submitted to any other University before for any degree or diploma.

Indu Tripathi

INDU TRIPATHI

HYDERABAD

DATED: 28-7-89

अनुक्रमणिका

पृष्ठ सं0

पहला अध्याय . . . 1—109

युवा और युवा-मानस

1· युवावस्था ..

1·1 युवा मानस : एक विश्लेषण ..

1·2 युवा वर्ग और सामाजिकरण की प्रक्रिया ..

2· आधुनिक युवा-मानस और पाश्चात्य प्रभाव ..

3· युवा संस्कृति ..

4· युवा पीढ़ी ..

5· युवा आन्दोलन ..

5·1 जर्मन युवा आन्दोलन ..

5·2 फ्रांसी युवा आन्दोलन ..

5·3 रूसी युवा आन्दोलन ..

[illegible] ..

5·4 पूर्वी तथा दक्षिणी यूरोप और लैटिन अमेरिका ..

पृष्ठ सं०

5.5. विश्व युद्धोत्तर युवा आन्दोलन
क) यूरोप ..
ख) अमेरिका ..
ग) अफ्रीका ..
घ) इंग्लैण्ड ..
ङ) एशिया खण्ड : युवा आन्दोलन
5.6. भारतीय युवा आन्दोलन ..
6. भारतीय युवा आन्दोलनों में संघों की भूमिका ..
7. भारतीय युवा पीढ़ी और मानस
8. युवा-मानस व अकेलेपन की प्रक्रिया
9. युवा आक्रोश, घृणा, अपराध व भविष्य बोध ..

दूसरा अध्याय . . . 110 —152

कथित दशक के प्रमुख उपन्यासों का एक सर्वेक्षण : युवा मानस के संदर्भ में :

1. आठवां दशक और उपन्यास
2. आठवें दशक के चुने हुए उपन्यास : एक अनुशीलन

पृष्ठ सं0

2·1 अपना मोर्चा : काशीनाथ सिंह

2·2 रेत की मछली : कान्ता भारती

2·3 रूकोगी नहीं राधिका :
उषा प्रियंवदा

2·4 सीमाएं टूटती हैं : श्रीलाल शुक्ल

2·5 तीसरा आदमी : कमलेश्वर

2·6 नरक-दर-नरक : ममता कालिया

2·7 रिहर्सल : हिमांशु श्रीवास्तव

2·8 लाल पीली जमीन : गोविंद मिश्र

2·9 चितकोबरा : मृदुला गर्ग

2·10 बीमार शहर : राजेन्द्र अवस्थी

2·11 गली आगे मुड़ती है :
डा0 शिव प्रसाद सिंह

2·12 अन्तराल : मोहन राकेश

2·13 काली आंधी : कमलेश्वर

2·14 महाभोज : मन्नू भण्डारी

2·15 रथ से गिरी बांसुरी :
हिमांशु श्रीवास्तव

2·16 उसका शहर : प्रमोद सिंहा

2·17 मुरदा घर : जगदम्बा प्रसाद दीक्षित

2·18 भ्रम भंग : देवेश ठाकुर

पृष्ठ सं0

2·19 बेघर : ममता कालिया

2·20 यात्राएं : गिरिराज किशोर

2·21 आपका बंटी : मन्नू भंडारि

2·22 नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृतलाल नागर

2·23 सुरजमुखी अंधेरे की : कृष्णा सोबती

2·24 कड़ियां : भीष्म साहनी

2·25 सोया हुआ जल : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

तीसरा अध्याय . . . 153-234

युवा परिवेश

1· आर्थिक परिवेश ..

1·1 घर की आर्थिक स्थिति ..

1·2 बेकारी की समस्या ..

1·3 भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी

1·4 न्याय, कानून, पुलिस का प्रशासन ..

2· पारिवारिक परिवेश

2·1 पारिवारिक संबंधों में रागात्मकता

पृष्ठ संख्या

2·2 पारिवारिक संबंधों में बिखराव

1· आर्थिक कारण ..

2· नैतिक कारण ..

2·3 पारिवारिक दायित्व ..

2·4 विवाह और पति-पत्नी संबंध

3· सामाजिक परिवेश ..

3·1 मैत्री परिवेश ..

3·2 कार्यालयीन परिवेश ..

3·3 ग्रामीण और शहरी परिवेश

4· राजनैतिक परिवेश ..

5· सांस्कृतिक परिवेश ..

6· शैक्षणिक परिवेश ..

6·1 राजनीति का कुप्रभाव ..

6·2 शिक्षा की दिशाहीनता ..

6·3 अध्यापक-छात्र संबंध ..

चौथा अध्याय . . . 235 — 299

युवा व्यक्तित्व और युवा-मानस

1· मनोवैज्ञानिक आधार ..

1·1 परिपक्व युवा-मानस ..

पृष्ठ सं०

1·2	अपरिपक्व युवा-मानस	..
1·3	विकसित युवा-मानस	..
2·	आर्थिक आधार	..
2·1	उच्च वर्ग के युवा	..
2·2	मध्य वर्ग के युवक	..
2·3	निम्न वर्ग के युवा	..
3·	मनोवृत्तियों के आधार पर	
3·1	बहिर्मुखी युवा मानस	..
3·2	अन्तर्मुखी युवा मानस	..
3·3	समझौतावादी युवा मानस	
3·4	असामान्य युवा मानस	..
3·5	रूढि व परम्परा विरोधी युवा मानस	
3·6	विद्रोही और क्रांतिकारी मानस	..
3·7	पलायनवादी युवा मानस	..
4·	आचरण	..
5·	वेशभूषा	..
6·	बातचीत का ढंग	..
7·	आदतें और व्यसन	..

पृष्ठ सं०

पांचवा अध्याय . . . 300-367

युवा मानस : दिशाएं व संभावनाएं

1. सामाजिक व मनोवैज्ञानिक चेतना

1.1 आस्था का स्वरूप व ईश्वरहीनता

1.2 मूल्य चेतना

2.1 नैतिक चेतना

2.2 अधिकार और दायित्व की भावना

1.3 सामाजिक संबंध और आर्थिक समस्याएं ..

1.4 साध्य और साधन का स्वरूप

1.5 सफलता और असफलता की दिशा

1.6 कुंठा और आक्रोश

2. विद्रोह एवं अपराध की भावना

2.1 निषेध की भावना

2.2 असमर्थता का बोध : अकेलेपन की पीड़ा

2.3 स्वाभिमान की भावना

2.4 आत्मविश्वास की भावना

पृष्ठ सं0

3. ध्येय और दिशाहीनता

4. भविष्य बोध ..

5. वैयक्तिक चेतना ..

6. राजनैतिक चेतना ..

उपसंहार . . . 368-384

संदर्भ ग्रन्थों की सूची . . . 385-395

प्राक्कथन

आज के आधुनिक समाज में युवा व्यक्ति का महत्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है । किसी भी राष्ट्र और समाज को एक नये विकासमान क्षितिज की ओर ले जाने की अत्यधिक सम्भावना युवा व्यक्ति में ही दिखाई देती है । इतिहास इसका गवाह है । संसार में जितने भी आन्दोलन हुए वे सब युवा वर्ग की सशक्त सक्रियता के कारण ही हुए । युवा वर्ग समाज में हमेशा ही एक चुनौती के रूप में विकसित हुआ है । नये मूल्यों का आग्रही यह युवा वर्ग सदैव पुरानी मान्यताओं, नैतिकताओं और व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों के प्रति अपना असमर्थन व्यक्त किया है । स्वीकृति की इस प्रक्रिया में उसे अनेकों यातनाओं से गुजरना पड़ता है । परन्तु समाज उसके चिन्तन और उसके हौसले को डिगा नहीं पाया है । यह युवामानस की नियति है कि उसे हमेशा से अपने अस्तित्व के लिए अपने ही बर्जुग पीढ़ी से संघर्ष करना पड़ा है और पड रहा है । इसका कारण पुरानी मान्यताओं को नकारना और नये जीवन मूल्यों की स्थापना है । यह उसका दुर्भाग्य है कि जिस वर्ग को सबसे ज्यादा मान, सम्मान व स्थान मिलना चाहिए वही आज उपेक्षित है । अपने अस्तित्व के लिए उसे अपने ही लोगों से अपने ही घर में, देश में संघर्ष करना पड़ रहा है । जबकि परिवर्तन शाश्वत है । पुराने मूल्यों, चिन्तन तथा सिद्धान्तों को टूटना ही है । आठवें दशक में युवा चिन्तन अत्यधिक मुखर है । यह पीढ़ी मोह भंग के दर्द से पीड़ित नहीं है बल्कि कुछ नया करने की आकांक्षा से परिचालित है ।

मानव जीवन में युवावस्था का महत्व बहुत है । यह वह अवस्था है जहां पहुंचकर व्यक्ति भविष्य को एक आकार में ढालने की कोशिश करता है । इस उम्र में होनेवाली घटनाएं उसे जीवन राह की ओर ले जाती है । इस अवस्था में वह जो कुछ सीखता व देखता है प्रौढ़ा अवस्था में उसी का अनुसरण करता है । युवा सशक्त सम्वेगी तथा स्वत: स्फूर्त होता है । दूसरे शब्दों में युवा के आचरण के प्रेरक सम्वेग होते हैं विवेक नहीं । वह स्वयं किसी भी कार्य को करने के लिए उत्सुक होता है परन्तु विवश किये जाने पर कुछ नहीं कर सकता । साहस उसका अपना गुण है । इस अवस्था में मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दोनों ही स्तरों पर महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं । 14 से 30 वर्ष की आयु के बीच की अवस्था में मनुष्य की शारीरिक व मानसिक शक्तियां पूर्ण रूप से सक्रिय होती हैं । युवावस्था तीव्र रूप में शारीरिक, भावात्मक और बौद्धिक परिवर्तन का समय है । अत: इस अवस्था का संघर्षों होना स्वाभाविक है । इसीलिए इस अवस्था को संघर्ष का काल भी माना गया है । युवक मनचाही दिशा में आगे बढ़ने के लिए मानो हर समय उद्विग्न होता है । उसका यह उद्वेग महत्वाकांक्षाओं के रूप में, दिवा स्वप्नों व आदर्श कल्पना के रूप में तथा कभी-कभी नूतन उद्भावना मूलक चिन्तन के रूप में प्रकट होता है । कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह अवस्था मनुष्य के जीवन में एक अत्यन्त संभावनापूर्ण अवस्था है । इस अवस्था में मानों व्यक्ति जीवन के चौराहे पर राह तय करने के लिए खड़ा हो जाता है । इस समय उसे सही मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है ।

प्रश्न यह उठता है कि युवा मानस और अवस्था को एक साथ कैसे जोड़ा जाये । यह प्रश्न अपने आप में विवादास्पद है क्योंकि व्यक्ति का विकास समय के साथ-साथ व्यक्ति की परिस्थितियां तथा वातावरण के साथ जुड़ा हुआ होता है । हमें ऐसे लोग भी समाज में

दिखाई देते हैं जो समय से पहले ही युवामानस को प्राप्त कर लेते हैं। तो दूसरी तरफ ऐसे व्यक्ति भी मौजूद हैं जो युवावस्था में भी युवामानस से वंचित रह जाते हैं। इसीलिए यह प्रश्न अभी भी चिन्तन का विषय है फिर भी 14 से 35 वर्ष के बीच की अवस्था के मानस को युवा-भावना कहना उचित होगा।

आठवें दशक के उपन्यासों में युवा मानस को निर्धारित करते समय यह देखना है कि इन उपन्यासों के युवा मानस अपने लिए वह कौनसी दृष्टि प्रस्तुत करना चाहता है जो इससे पहले के उपन्यासों में नहीं मिलती है। उसकी आदर्श भावना, नैतिकता, संबंध, सामाजिकता, आक्रोश-विद्रोह तथा भविष्य बोध किस भाव-भूमि की तलाश करते हैं और वह उनके लिए कितना हितकर है व अहितकर। साथ ही यह भी स्पष्ट करना है कि इस युवा मानस का निर्माण किन परिस्थितियों में हुआ है व वे कौन से कारण हैं जो उन्हें अपने प्रति, समाज के प्रति, धर्म के प्रति तथा संबंधों के प्रति अपना एक अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए विवश करते हैं।

आलोच्य दशक से पहले युवा-मानस को इतने तीव्र रूप से उभारने की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी थी। कारण यह था कि युवा अपने पुराने रास्तों पर चलता था। विषमता और विसंगतियाँ उसके मानस में हलचल पैदा करती थीं परन्तु वह उन्हें प्रश्न के रूप में व्यक्त नहीं कर सकता था। बुजुर्ग पीढ़ी उसे तरह-तरह के भय दिखाकर खामोश कर देती थी। उसके पास ईश्वर के नाम पर इतनी आस्था थी कि वह बड़े-से-बड़े संकट को, अपमान को ईश्वर का वरदान या बड़ों का प्यार या मर्यादा समझकर सहन कर जाता था। धर्म के ह्रास के साथ धीरे-धीरे उसकी सहनशीलता थकने लगी है। वह आज ईश्वर को नकारने लगा है। अपनी सफलता और असफलता की जिम्मेदारी वह स्वयं को समझने लगा है यही कारण है कि वह असफलता

में भी सफलता के सपने देखता है और मन से नहीं हारता । उसका आत्मविश्वास बढ़ा है ।

भारत में पूर्ण रूप से युवा क्रान्ति 1960 केबाद आयी है । इससे पहले युवक सपनों में विचरते थे । भविष्य के प्रति उनकी पूर्ण आस्था थी । वे समझते थे कि ये दुव्यवस्थाएं सरकार कुछ दिनों में दूर कर देगी । परन्तु साठ के बाद जो मोहभंग हुआ उसने युवा-मानस में अविश्वास की लहर पैदा कर दी । युवक आकाश से जमीन पर आ गिरा । वे समझ गये कि इस तरह बुजुर्ग पीढी उन्हें कभी भी आगे नहीं आने देगी । अतः सामाजिक परिधि, पारिवारिक कलह, राजनैतिक वातावरण, बेकारी, भूखमरी, आक्रोशी आंखे, तनती मुठ्ठियां, भावुक हृदय, तनावपूर्ण मानस उसे आक्रोशी बना दिया । आज का युवा मानस विवश परिस्थितियों की फसल है । व्यवस्था उसे थोड़ा सा लालच दिखाकर उसका शोषण कर रही है । इसीलिए उसके मानस में कुंठा, आक्रोश, विद्रोह तथा पलायन की प्रवृत्तियां मिलती है । उसके मानस में मौजूदा व्यवस्था (सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक) के प्रति विद्रोह है तो भविष्य के प्रति सुंदर सपने भी हैं । वह भविष्य के प्रति आशावान हैं । अतः आज के परिप्रेक्ष्य में युवा मानस और युवा समस्या इतनी महत्वपूर्ण है कि शोध की दृष्टि से उपेक्षित नहीं रह सकता । यही आकर्षण प्रस्तुत शोध प्रबंध का मूल उद्देश्य रहा है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में युवा मानस की सामान्य विवेचना की गयी है । युवा मानस और अवस्था का विवेचन अनेक मनोवैज्ञानिकों व समाजशास्त्रियों, विद्वानों के विचारों के आधार पर किया गया है । युवा वर्ग को सामाजिक रचना की प्रक्रिया से परिवार से समाज की ओर गमन करता हुआ युवा वर्ग के बचपन से युवा होने तक की स्थितियों का चित्रण है । युवा पीढी, युवा संस्कृति, युवा-

मानस और अकेलेपन की प्रक्रिया तथा युवा आक्रोश, घृणा, विचार, तथा बोध में युवा के विचार, समस्याएं, आचार, चाल-चलन तथा उसके अकेलेपन की पीड़ा को चित्रित किया गया है । यूं तो विश्व के इतिहास में अनेक आन्दोलन हुए हैं लेकिन युवा आन्दोलन का अपना ही महत्व है । अतः इस अध्याय में युवा आन्दोलनों को विश्वके नक्शे पर एक झलक देखने का प्रयास भी शामिल है ।

दूसरे अध्याय में आठवें दशक की लेखकीय विशेषता को उकेरने के साथ-साथ युवा मानस से संबंधित उपन्यासों का विश्लेषण करने का प्रयास शामिल है । आज के आधुनिक युग में युवा-मानस जितना विचलित और आक्रोशी हो गया है उतना आठवें दशक के उपन्यासों में नहीं मिलता है । फिर भी एक ऐसी भाव-भूमि अवश्य मिलती है जिसको आधार बनाकर युवा मानस को एक विस्तृत फलक पर विश्लेषित किया जा सकता है । युवा समस्याओं को उपन्यासों का आधार बनाकर समाज के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है और इस अध्याय में यही कार्य सम्पन्न हुआ है ।

तृतीय अध्याय में युवा परिवेश का अध्ययन किया गया है । आर्थिक परिवेश के अन्तर्गत अर्थ से संबंधित उन सारे परिवेश को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है जो युवा मानस को अत्यधिक प्रभावित करते हैं । पारिवारिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक परिवेश का विश्लेषण युवा मानस की सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक व शैक्षणिक व सांस्कृतिक मूल्यों की पहचान के लिए किया गया है । यही परिवेश युवा को जीवनदृष्टि प्रदान करते हैं । परिवेश की जटिलता युवा मानस को और भी जटिल बनाता है । अतः परिवेश का महत्व मानव जीवन में अत्यधिक है ।

चौथे अध्याय में युवा व्यक्तित्व और युवा मानस को वर्गीकरण के आधार पर विश्लेषित किया गया है । हर वर्ग की अपनी एक मानसिकता होती है जो उसको संस्कार के रूप में पूर्वजों से प्राप्त होती है । परन्तु आस-पास की परिस्थितियाँ उसमें कुछ ऐसा परिवर्तन कर देती है कि उसका व्यक्तित्व ही बदल जाता है । वह कभी अन्तर्मुखी हो जाता है तो कभी बहिर्मुखी और बहुतायत विद्रोही होकर परम्पराओं और नैतिक मान्यताओं को तोड़ने लगता है । अतः युवा व्यक्तित्व और मानस का अध्ययन महत्वपूर्ण अध्याय है ।

पाँचवे अध्याय में युवा वर्ग की मानसिकता के साथ-साथ उसकी संभावनाएं तथा दिशाओं को समझने का प्रयास संलग्न है । इस अध्याय में अनेक उप-शीर्षकों के माध्यम में युवा मानस की मूल चेतना और उसकी संभावना को विश्लेषित किया गया है जिसमें भविष्य के सपने और आत्मविश्वास को वैज्ञानिक आधार पर देखने का प्रयास भी शामिल है । अधिकार और दायित्व के अंतर्गत युवा-मानस की आवश्यकताओं का भी अध्ययन किया गया है । कुंठा तथा आक्रोश की स्थिति को कारणों के साथ उभारा गया है ।

अन्त में उपसंहार है जिसमें आठवें दशक के युवकों के मानस संबंधी निष्कर्षों को आज के युवकों की मानसिकता को आधार बनाकर समाहार करने का प्रयत्न किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध विषय-निर्वाह की दृष्टि से एक बहुत ही जटिल और जोखिम का काम था, क्योंकि आज के वैविध्य जीवन और विसंगति के परिवेश में कब क्या हो जाएगा कहा नहीं जा सकता । एक ही परिस्थिति में हर व्यक्ति का अपना अलग-अलग अनुभव है । अपनी अलग-अलग समस्याएं हैं । अतः किसी की मानसिकता को एक सही नाम दूना कठिन कार्य है । युग की प्रवृत्ति को युवा के संदर्भ में उठाना तो और भी जटिल कार्य है । फिर भी मैंने इस विषय को उठाया और

यथा उचित कुछ निष्कर्षों पर पहुंचने का प्रयत्न किया है । मैं अपने विभाग तथा अपने निर्देशक डा० वाई० वेंकटरमण राव के प्रति आभार प्रकट करती हूं जिनके महत्वपूर्ण निर्देशन और सहायता से यह कार्य सम्पन्न हुआ है । साथ ही मैं हिंदी विभाग के रीडर डा० नूरजहां बेगम की भी आभारी हूं जिन्होंने मुझे हमेशा ही प्रोत्साहित किया है । मैं अपने उन मित्रों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूं जिनका महत्वपूर्ण योगदान मुझे प्राप्त हुआ है ।

-- इन्दु त्रिपाठी

पहला अध्याय

युवा और युवामानस :

मानव जीवन में युवावस्था का विशेष महत्व है । यह वह अवस्था है जब व्यक्ति किशोरावस्था को पार कर जीवन के प्रति अग्रसर होता है । इस उम्र में होनेवाली घटनायें उसे जीवन के रास्ते पर ले जाती हैं । यह अवस्था मनुष्य के लिए सम्पूर्ण विकास की अर्थात् शारीरिक और मानसिक परिणति के संक्रान्ति काल की हैं । बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में जो कुछ भी व्यक्ति देखता व सीखता है प्रौढावस्था में वही एक बने बनाये ढर्रे पर चलता है । युवावस्था एक ऐसी अवस्था है जहां पहुंचकर व्यक्ति कुछ न कुछ नया करने की सम्भावना से पूर्ण होता है । युवा सशक्त संवेगिक तथा स्वत:स्फूर्त होता है । दूसरे शब्दों में युवा के आचरण के प्रेरक सम्वेग होते हैं, विवेक नहीं । वह स्वयं किसी कार्य के लिए सहज रूप में तत्पर होता है । खतरों से खेलना उसका शौक है । युवावस्था तीव्र रूप में शारीरिक, भावात्मक और बौद्धिक विकास का काल है । अत: इस काल का संघर्षमय होना स्वाभाविक है । युवक मनचाही दिशा में आगे बढने के लिए हर समय उद्विग्न होता है । आगे बढ़ने की राह के लिए नयी दिशाओं की खोज में निरंतर संघर्षशील होता है । उसका यह उद्वेग महत्वाकांक्षाओं के रूप में दिवास्वप्नों के रूप में आदर्श कल्पना के रूप में तो कभी नूतन उद्भावना मूलक चिन्तन के रूप में फूटते हैं । कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अवस्था मनुष्य के जीवन में एक अत्यन्त सम्भावनापूर्ण अवस्था होती है । इस अवस्था में मानो मनुष्य जीवन के चौराहे पर आ खड़ा हो जाता है । उसको इस समय

पथ प्रदर्शन की आवश्यकता होती है जो उसकी क्षमताओं की पहचान करे और उसकी शक्तियों को सही दिशा में मोड़ दे ।

1. युवावस्था :

प्रश्नों से समस्या उठाना पारम्परिक है । समय की सापेक्षता में प्रश्नों व समस्याओं का होना और फैलना लगातार होता रहा है । ऐसी ही एक समस्या "युवावस्था" को लेकर विद्वानों व अनेक शास्त्रीयों के बीच उपस्थित है । प्रश्न है -- "युवा कौन है ?" क्या है ? युवा कहलाने की कसौटी और पहचान ? सिर्फ उम्र, नवीनतम फैशन, होशरहित जोश, अपनी ध्वंसात्मक शक्ति का तूफानी उबाल या वर्तमान की विरूपताओं को चुनौती देकर नया भविष्य गढ़ने का संकल्प, आदर्शों के लिए मृत्यु तक का वरण करनेवाली पीढ़ी, युवा-पीढ़ी कहलायेगी या फिर 21 वर्ष का हो जाने पर मतदान का हक प्राप्त करनेवालों को युवा पीढ़ी कहेंगे या जीन्स और टाप पहनकर बिचरनेवाले, कैंपस में नशीली दवाओं का प्रदूषण फैलानेवाली युवापीढ़ी है ? या हज़ारों की संख्या में रचनात्मक कार्य या किसी प्रेरणादायी व्याख्यान को सुनने के लिए उमड़ते हुए युवा लोगों की बात कर रहे हैं अथवा उन नौजवानों की बात कर रहे हैं जो आँखों में स्वप्न और होठों पर संकल्प को सजीव करते हैं ।"[1]

प्रश्न का यह स्वरूप मात्र आज के युवा स्थिति को ही स्पष्ट नहीं करता बल्कि प्रश्न के घेरे में "युवावस्था" से लेकर युवा व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक विकास व स्थिति को राष्ट्र व व्यवस्था के अन्तर्गत युवा विसंगति को व्यापक रूप में पेश करता है । इस प्रश्न को उत्तरित करने में व्यवस्था मूक अभिनय करने लगी है ।

आज का युवा इतना संघर्षी है कि उसका मानस रेशमी धागों की उलझन (समान) है । अवस्था और मानस का सन्तुलन बिगड़ सा

गया है । अर्थ का प्रश्न उसकी अवस्था और मानसिकता दोनों को निर्धारित ही नहीं, बरगलाने भी लगी है । समय व मानस का असन्तुलन आज की परिधि में तेज़ी से बदल रहा है । इस बदलाव की स्थिति से युवावस्था का पैमाना बाज़ार में वस्तुओं की कीमतों का अंक हो गया है । सुनने में कम खरीदने में ज्यादा । परिणाम में प्रश्न युवावस्था क्या है ? व युवा मानस का सही या विकृत रूप क्या होगा, क्या होना चाहिए ? तमाम विद्वानों व शास्त्रीयों के अध्ययन करने के उपरान्त भी निश्चित व सर्वकालिक पैमाना व अंक (संख्या) निर्धारित नहीं हो पा रहा है । लगभग व चाहिए का संबंध अभी अवस्था से जुड़ा हुआ होना इसका सबूत है ।

मानव जीवन का आरम्भ उसी समय से होता है जब वह माता के गर्भ में जीवकण के रूप में प्रवेश करता है और अपने जीवन का विकास पाने लगता है । अन्त मृत्यु से होता है । इन दोनों छोरों के बीच में मानव जीवन का जैविक विकास समीकृत है । जीव विकास की दृष्टि से जीवन-चक्र को डी० वी० महोदय ने अपनी पुस्तक 'Adult Psychology' में सोलह स्थितियों के बीच वर्गीकृत किया है, वे इस प्रकार हैं :-

स्थिति	..	लगभग अवस्था
जैगोट	..	गर्भधारण स्थिति
एमबियों	..	सात हफ्ते तक
फोटस	..	7 से 38 हफ्ते तक
जन्म	..	38 हफ्ते
नन्हीं अवस्था	..	18 महीनों तक
बाल्यावस्था	..	18 महीनों से 5 साल तक
बचपन	..	5 साल से 13 साल तक
युवावस्था	..	15 से 21 साल तक

पूर्व प्रौढा अवस्था	..	21 साल से 25 साल तक
मध्य प्रौढा अवस्था	..	25 से 40 साल तक
पश्च प्रौढा अवस्था	..	40 से 60 साल तक
पूर्व कार्य मुक्तावस्था	..	60 से 65 साल तक
कार्य मुक्तावस्था	..	65 से 70 साल तक
वृद्धावस्था	..	70 साल से अधिक
चरमावस्था	..	व्याधिग्रस्त अवस्था एवं मृत्यु

इस उपरोक्त तालिका से मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का परिचय हो जाता है, लेकिन यह अधिक विवरणात्मक है। सामान्यत: भारतीय विचारधारा में जीवन की निम्नस्थितियां प्रमुख मानी गयी हैं :-

स्थिति	..	लगभग अवस्था
भ्रूणावस्था	..	गर्भस्त अवस्था
बाल्यावस्था	..	जन्म से पांच साल तक
ब्रह्मचर्यावस्था	..	5 साल से 16 साल तक
किशोरावस्था	..	16 से 18 साल तक
युवावस्था	..	18 से 30 तक
प्रौढावस्था	..	30 से 60 तक
वृद्धावस्था	..	60 के बाद
मृत्यु	..	--

इन स्थितियों में प्राय: व्यवहारिक मान्यतायें देखी जा सकती हैं। इसी विचार को दृष्टि में रखकर जुंग ने अपनी पुस्तक Interpreting personality theories में सम्पूर्ण मानव जीवन को चार अवस्थाओं में इस प्रकार विभाजित किया है --

बाल्यावस्था	..	जन्म से 12 वर्ष तक
युवावस्था	..	12 से 40 वर्ष तक
प्रौढावस्था	..	40 से 65 वर्ष तक
वृद्धावस्था	..	65 से मृत्यु तक ।"[4]

इसके अतिरिक्त इस विवादास्पद प्रश्न को अन्य विचारकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से सुलझाने की यथासम्भव कोशिश की है ।

सुदर्शन कुमारी ने यूथ की परिभाषा करते हुए लिखा है कि किशोरावस्था से लेकर परिपक्व अवस्था के बीच की अवस्था को यूथ मानना चाहिए । "समूहवाची अर्थ में युवा वह अवस्था है जो उच्चतर विद्यालय तथा महाविद्यालय के युवा विद्यार्थियों की होती है ।"[5]

वाई॰ डब्ल्यू॰ सी॰ ए॰ तथा कुछ युवा संगठनों ने सोलह से पच्चीस वर्ष के बीच की अवस्था को युवा अवस्था माना है ।"[6] इसका कारण यह रहा है कि यह अवस्था पूर्ण विकास की अवस्था है । जहाँ शारीरिक व मानसिक दोनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आते हैं । युवावस्था की प्रारम्भिक अवस्था किशोरावस्था (Adolescence) की होती है । जिसको चिन्तकों ने एक कठिन अवस्था के रूप में उद्घोषित किया है । "यह अवस्था परिवार और समाज से कुसन्तुलन (दोषप्रद संबंधों) की द्योतक है ।"[7] किशोरावस्था को परिभाषित करते हुए डा० प्रीति वर्मा व डा० डी० एन० श्रीवास्तव ने आज़ुबेक और उनके साथियों के विचारों को उल्लेखित करते हुए लिखा है कि -- "किशोरावस्था वय:संधि के बाद की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति में आत्म उत्तरदायित्व की स्थापना होती है .... जिसमें व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक विवृद्धि पराकाष्ठा या अन्तिम रूप पर पहुँचती है । आधुनिक युग में आज किशोरावस्था के अन्तर्गत भौतिक परिपक्वता के साथ-साथ मानसिक सम्वेगात्मक और सामाजिक परिपक्वता का अध्ययन किया जाता है ।"[8]

James F Adams ने युवावस्था को परिभाषित करते हुए लिखा कि -- "उस समय जब बालक अपने पारिवारिक देखभाल और बचाव की सुरक्षा की सामान्य, मूलभूत आवश्यकताओं के विषय में सोचना आरंभ करता है, जब उसका मानसिक एवं जैविक विकास युवा-परिपक्वता की पूर्णता प्राप्त करना शुरू करता है, तथा अन्तत: जब उसकी मनोगत परिपक्वता समाज में उसे एक उत्तरदायी व्यक्ति के रूप में स्थापित करने लगती है, तब उसकी अवस्था युवावस्था कहलाती है ।"[9]

लार्डोस -"अडालसेंट यूथ" की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि -- "युवक वे हैं जो आयु के अनुसार 12-24 तक की अवस्था के हैं, मनोविज्ञान के अनुसार -- बाल्यावस्था की सीमा बांधनेवाले हैं । समाजशास्त्र के अनुसार वे बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के बीच के पुल हैं ।"[10] इस प्रकार युवावस्था की अवधि 21 - 24 तक तथा 25 वर्ष मानने का कारण प्राय: यही है कि इस उम्र में व्यक्ति अपनी स्थिति को समझकर, अपनी जिम्मेदारी को समझने व निभाने योग्य हो जाता है । शारीरिक व मानसिक विकास अपनी चरम स्थिति से गुजर रहा होता है । इस उम्र में प्रवेश पाने के साथ ही व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए प्रयत्नशील हो जाता है । भारत में विवाह की अवस्था 21 वर्ष ही मानी गयी है । मतदान के लिए भी 21 वर्ष की उम्र ही स्वीकार्य है ।

डॉ० श्यामसुंदर दास के "हिंदी शब्द सागर" के अनुसार -- "युवा वह है जिसकी अवस्था सोलह से लेकर 35 वर्ष के अन्दर हो ।"[11] सागर अहलुवालिया ने अपनी पुस्तक "यूथ इन रिवोल्ट" में युवावस्था को 15 से 35 तक माना है । वे कालेज में पढ़नेवाले छात्रों को ही नहीं बल्कि ग्राम में रहनेवाले युवक, निम्नवर्ग के मजदूर सभी को युवा वर्ग के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं ।"[12] अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष (1985) में राष्ट्रसंघ में युवकों की आयु 15 से 25 वर्ष तक रखी है जिसे भारत सरकार ने भारत में उसे 35 वर्ष तक और बढ़ाया है ।

इस प्रकार युवावस्था की आयु सीमा-निर्धारण के संबंध में मतभेद पाये जाते हैं । मनोविज्ञान युवावस्था को कालक्रम (उम्र) की परीधि में न मानकर विकास व परिपक्वता को महत्व देता है । बचपन के बाद जो शारीरिक व मानसिक विकास में परिवर्तन आते हैं उनका व्यक्तित्व पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है । ग्यारह वर्ष से लेकर 21 वर्ष की आयु तक का समय बालक में सम्पूर्ण व्यक्तित्व पाने का समय है । इस समय में जो भी घटना जिस प्रकार प्रभावित करती है उसका असर जिन्दगी भर उसी प्रकार बना रहता है । दूसरे शब्दों में यह वह अवस्था है जहां उसके भविष्य-संबंधी सम्भावनायें लगभग निर्धारित हो जाती है । यह अवस्था उसके जीवन की महत्वपूर्ण व नाजुक अवस्था है ।

मनोवैज्ञानिकों के अलावा समाजशास्त्रियों ने युवावस्था के समय को विकास व परिपक्वता के साथ-साथ उत्तरदायित्व की भावना से जोड़कर 15 से 35 वर्ष की ओर ले जाते हैं ।

यहां यह तो स्पष्ट हो जाता है कि युवावस्था को उम्र की सीमा में बांधकर स्पष्ट नहीं कर सके । लेकिन सामाजिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर युवा अवस्था को 14 से 35 के बीच मानना अधिक तर्क संगत लगता है । इस अवस्था में युवक बचपन की चंचलता को छोड़कर मानसिक स्थिरता पाने की ओर अग्रसर होता है । इस विकसित अवस्था में उसे यौन-संबंधी भावनाओं का ज्ञान होने लगता है । शारीरिक सुदृढता के साथ-साथ उसे परिस्थितियों को समझने व समाज में व्यवस्थित होने की समझ आ जाती है । वह यह समझने लगता है कि उसे क्या चाहिए तथा अपनी इच्छापूर्ति के लिए उसे किस प्रकार के कार्य करने चाहिए । यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि युवा-अवस्था वह अवस्था है जहां पहुंचकर व्यक्ति शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास प्राप्त करता है । भावनाओं के साथ बुद्धि में परिपक्वता आने लगती है । उसके फैसले उसके कार्य मात्र काल्पनिक नहीं बल्कि सामाजिक भी होते हैं । अतः यह अवस्था पूरी तरह से कुछ कर सकने की क्षमता से

पूर्ण होते हैं ।

मानव जीवन में युवावस्था से पूर्व की अवस्था किशोरावस्था (Adolescence) है जबकि इससे पूर्व की अवस्था बचपन है । समय के साथ अवस्थाओं में परिवर्तन होता रहता है । बालक बाल्यावस्था को त्याग कर किशोरावस्था व किशोरावस्था से युवावस्था की ओर गमन करता हुआ धीरे-धीरे अनुभव व समय की सीढियों को लाँघता हुआ बूढ़ा हो मृत्यु की अंतिम स्थिति में लुप्त हो जाता है । इतनी उपलब्धियों के बाद युवावस्था का समय "14 से 35" वर्ष के बीच निर्धारित होने के उपरान्त यह नहीं कहा जा सकता है कि 14 साल के आते ही बालक युवक बन जाता है, तो उस साल के समाप्त होते ही युवक प्रौढ़ हो जाता है, और न ही यह धारणा सर्वकालिक है । परिस्थितियों के आधार पर युवावस्था में परिवर्तन आता रहता है । यही वजह है कि युवा वर्ग कभी उम्र से पहले युवा हो जाता है तो कभी उम्र गुज़र जाने के बाद भी युवा मन व शक्ति को अर्जित नहीं कर पाता । ऐसे युवामानस को मनोवैज्ञानिक असामान्य युवा कहते हैं ।

1.1 युवा मानस - एक विश्लेषण :

प्राणी के बौद्धिक विकास का भी संबंध उसके जैविक विकास के साथ जुड़ा रहता है । अर्थात् जैसे "प्राणी" की आयु बढ़ती जाती है वैसे ही बौद्धिक विकास भी होता है । मानवेतर प्राणियों में यह विकास एक सीमा तक ही देखा जा सकता है लेकिन मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जिसका बौद्धिक विकास बहु आयामीय है । इतना ही नहीं इस विकास का अध्ययन भी क्लिष्ट और बहुआयामीय होता है ।

मानव के बौद्धिक विकास का संबंध उसकी आयु, उसकी प्राप्त वातावरण, उसकी सामाजिक स्थिति तथा वंशानुगत स्थिति आदि पर भी

आधारित होता है । इन सबको समग्र रूप में समेट कर मनोविज्ञान ने मानव के बौद्धिक स्थितियों का विवेचन प्रस्तुत किया है । इस विवेचन के आधार पर यह भी देख सकते हैं कि आयु के साथ-साथ मानव की बाह्य और आन्तरिक प्रवृत्तियाँ किस प्रकार विकसित होती हैं । एक सामाजिक प्राणी के रूप में मानव की आन्तरिक और बाह्य प्रवृत्तियां क्या और किस प्रकार नियोजित होती हैं और एक सामाजिक प्राणी के रूप में उसका समग्र व्यक्तित्व किस प्रकार उभरता है ।

मानव के बौद्धिक विकास का संबंध मानव के मानसिक विकास से है, और मानसिक विकास की पूर्ण स्थिति मनोवैज्ञानिकों के अनुसार युवावस्था है जिसे कुछ विचारकों ने -- "किशोरावस्था के समय को वैयक्तिक रूप में दूसरा जन्म माना है । इस जन्म से युवावस्था तक व्यक्ति बहुत सारे मानसिक परिवर्तन आते हैं । साथ ही भावुकता में वृद्धि, जागरूकता और गहरी आत्मीयता व आदर्श संबंधी विचारों का विकास होता है ।"[13] इस परिवर्तन के साथ में यह भी माना गया है कि यह समय युवकों के लिए अधिक दबाव व तनाव का होता है । तथ्य यह है कि किशोरावस्था बचपन और प्रौढ़ अवस्था के बीच की संक्रमण की अवस्था है । बचपन के समाप्त होने पर किशोरावस्था का आगमन अनेक शारीरिक व मानसिक परिवर्तन के साथ होता है । जो युवावस्था की प्रारंभिक अवस्था है, जिसमें युवक इन परिवर्तनों की सक्रियता व उत्तेजनाओं को तेज़ी से अनुभव करता है । वह पुराने व्यवहार और आदतों को छोड़कर नयी-नयी बातें अपनाता है । उसे अपना पूरा उत्तरदायित्व संभालना तथा व्यक्तित्व की स्थापना की चिन्ता रहती है । इस अवस्था में किशोर के मानस का सिर्फ विकास होता है । स्थिरता उसमें नहीं आती । भावुकता की ज्यादती रहती है । स्थिरता उसमें तभी आती है जब विकास की अवधि पूर्ण होती है । मानसिक अस्थिरता के कारण ही किशोर इस अवस्था में आकर्षण-विकर्षण दोनों का अनुभव एक साथ या क्षणों के अन्तर में, एक ही वस्तु में

करता है । यही उसकी उलझन है । यही कारण है कि प्रौढों के समाज में न तो अपना स्थान हासिल कर पाता है और न ही बच्चों के साथ उसका सम्पूर्ण मिलाप हो पाता है । यह विसंगति उसके लिए समस्या बन जाती है । यहां हरलॉक का यह कथन सही प्रतीत होता है कि -- "किशोर स्वयं के लिए एक समस्या है ।"[14] सम्भवत: इसी समस्या के कारण वह अपनी नयी अवस्था के नये रोल्स के साथ समायोजन नहीं कर पाता । फलत: भ्रान्ति, अनिश्चित, चिन्तित और उत्सुक होता है । साथ ही यह एक उमंगपूर्ण कल्पना की अवस्था है जब कभी वह वास्तविक जीवन से निराश होता है तो अपनी उमंगपूर्ण कल्पना लोक का बादशाह बन सुनहरे भविष्य का ताना-बाना आसानी से बुनने लगता है । यह कल्पना व उमंग, भावुकता में वृद्धि के ही परिणाम हैं ।

एक अन्य विश्लेषण के अनुसार -- "किशोरावस्था के प्रारम्भ होते ही बालक की लम्बाई और शारीरिक अनुपात में परिवर्तन होने लग जाता है । उसमें सेक्स की दृष्टि से भी परिपक्वता प्रारंभ हो जाती है । इन सभी परिवर्तनों का किशोर के मानसिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है । इन सब परिवर्तनों से किशोर के समायोजन में कठिनाई पड़ती है । यह कठिनाई समय के बीतने के साथ-साथ दूर हो जाती है । किशोर के शारीरिक परिवर्तनों की चेतना बालकों-सी होती है । इसी के फलस्वरूप उसमें आत्मचेतना(Self awareness) होती है ।"[15] इस आत्मचेतना से ही वह शारीरिक आकर्षण व सामाजिक संबंधों को बढ़ाने लगता है । समझता है कि विपरित लिंगी (Opposit sex) का ध्यान सरलता से आकर्षित कर लेगा । इन सब प्रयासों के बाद वह अन्य व्यक्तियों के ध्यान का केन्द्र भी बन जाता है । अपने किसी भी कार्य में प्रौढ़ों के हस्तक्षेप को वह अनावश्यक ही नहीं उसके लिए असहनीय हो जाता है । व्यक्तित्व की स्थापना व आत्मचेतना की यह पहली प्रक्रिया है । वह दैनिक जीवन की सभी गतिविधियों में स्वतन्त्र रहना चाहता है । इसके अतिरिक्त दोषपूर्ण शारीरिक विकास तथा दोषपूर्ण दबाव भी बालक

में हीनता की भावना उत्पन्न करते हैं । इन भावनाओं की अधिकता की अवस्था में बालक अंतर्मुखी प्रवृत्ति अपना सकता है -- "जिन किशोरों में शारीरिक विकास शीघ्र होता है वे किशोर अधिक आत्मविश्वासी, सामाजिक मानदण्डों के अनुसार व्यवहार करनेवाले होते हैं लेकिन जिनका विकास देर से होता है वे अधिक बेचैन और ऐसा व्यवहार करनेवाले होते हैं जो दूसरों का ध्यान आकर्षित करें, यह अधिक बातूनी, कम लोकप्रिय, कम नेतृत्व के गुणवाले व अपराधप्रिय होते हैं ।"[16] P.H.Mussem and M.C.Jones के अनुसार -- "जिन बालकों में शारीरिक परिपक्वता देर से आती है वे अनुपयुक्तता की अधिक भावना ऋणात्मक, आत्म प्रत्यय, तिरस्कार की भावनाओं और आश्रितता की भावनाओंवाले होते हैं ।"[17] किशोरावस्था की इस उथलपुथल को मनोपरिवर्तन को (undesstanding of adolescenece) में इस प्रकार से विश्लेषित है -- "किशोरावस्था में हुए परिवर्तनों में सबसे ज्यादा विचारणीय विषय शारीरिक-मानसिक परिवर्तन सामाजिक-आर्थिक का प्रभाव व निर्धारण तथा भावनाओं में वृद्धि का विषय है ।"[18]

किशोरावस्था की पूर्णतः परिणति ही युवावस्था है इन अनेक परिवर्तनों (शारीरिक-मानसिक) से गुज़रता हुआ जब वह विकास की पूर्णता में पहुंचता है तो काफी हद तक अपने आप में स्थिरता महसूसने लगता है । शारीरिक विकास पूर्ण स्थिति पर पहुंच जाती है । शक्ति व ऊर्जा का संचयन हो जाता है तथा उसकी दृष्टि पहले से कहीं अधिक बौद्धिकता व सामाजिकता के निकट होती है । वह अपने आप को अपने तक ही सीमित नहीं रख पाता बल्कि उसका संबंध समाज, व्यवस्था व जीवन से एक नियोजित योजना के साथ जुड़ने लगता है । इसीलिए इस अवस्था (Adulthood) को परिपक्वता की दहलीज माना गया है । परिपक्वता की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है --

"Maturity is a relative term denoting the degree to which, at any juncture of their lives individuals have discovered and are able to employ the resources that become available to them in the process of growth."

Emotional maturity is, import a biological product it is linked with the physical maturation of the organism. Maturity is also product of learning it is only through training, discipline and experience that the individuals psychological potential can be put to use. Maturity is in addition a cultural concept, for when we assess a person's maturity we do so, in large measure in terms of standards and values of culture in which he or she like." 19

युवावस्था प्राथमिक सम्वेगों जैसे प्रेम, भय और क्रोध से वे विशेष परिचालित होती हैं । युवावस्था के चारित्रिक विशेषता के संबंध में विचार करते हुए Aspiration of Indian youth में कहा गया है कि -- "अधिकांशत: युवा इस समय दबाव और तनाव में होता है । इस अवस्था का प्रमुख चरित्र, आक्रोश, बड़ों के द्वारा स्थापित मूल्यों पर आपत्ति व आशंका करना, क्रियात्मकता, अविवेकारीकता, बहादुरी, रोमान्स और साहसिक कार्य, भावुकता तथा Sense of Human Sympathy आदि प्रमुख हैं ।"[20] इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि युवा चारित्रिक गुण व्यक्ति के नयेपन की शुरूआत है । सही अर्थों में यह वह मानस है जिसमें कुछ नया सोचने, करने को अदम्य ऊर्जा व उत्साह भरा होता है[21] । इसीलिए इसको "Youth are the human capital of mankind" कहा गया है । समय व परिस्थितियों के उतराव चढाव का जितना इस मानस पर प्रभाव पड़ता है शायद ही जीवन के किसी अन्य काल खण्ड पर पड़ता हो ।

युवावस्था की सबसे पहली पहचान, समाज तथा व्यक्ति को उसके शारीरिक विकास तथा यौन संबंधी अंगों के विकास व उससे उत्पन्न उत्तेजना से होती है। युवा काल में यौनवृत्ति अति प्रबल होती है। यौन-वृत्तियों की ऐसी प्रबलता जीवन में पुन: कभी नहीं होती है, किन्तु इनके तृप्ति के अवसर भी कम होते हैं। युवामानस सशक्त सम्वेग तथा स्वत: स्फूर्त होता है वह किसी भी कार्य को करने के लिए सहज ही तत्पर होता होता है, विवश किये जाने पर विद्रोही बन कर अड़ जाता है। खतरों से खेलना उसके लिए सुखद अनुभूति है। जबकि प्रौढ़ों के लिए पहाड़ व बहुत सोचने का धन्धा, साहस उसका अपना गुण है। युवक प्राणवान, जिन्दादिल होता है। हास-परिहास व खेलों में उसकी विशेष रूचि होती है। किसी चीज के बारे में जानना उसे ढूंढ निकालने का अपना एक अलग आकर्षण है। उसकी अदम्य जिज्ञासा व जीवन की जीजिविषा सतर्कता की कमी और परिणामों की परवाह नहीं करती। अपने लिए स्वयं मार्ग बनाकर जीवन को सफल बनाने का उद्देश्य, स्वयंप्रेरणा बन जाता है। वह अपने कार्यों में अतिवादी होता है। बीच का रास्ता उसे पसन्द नहीं। सनसनाखेज और रोमांचकारी साहित्य और कार्यों में उसे आनन्द मिलता है।

इस अवस्था की शक्ति व ऊर्जा अनुमान से परे है। यह एक प्रकार से अन्धी शक्ति है जिसका विवेकपूर्ण प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। यह शक्ति जिधर मुड़ जाती है उधर अपनी छाप अंकित कर देती है। युवावस्था का काल हर तरह से संघर्षकाल है। किसी भी कार्य को करने या किसी भी राह से गुजरने के लिए उसे संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्षी-मानस" होता है जिसमें लड़ने की शक्ति व व्यवस्थित दिशाओं को तोड़ने का अपना एक विशेष तर्क होता है। उसका उद्वेग, महत्वाकांक्षा, स्वप्न, आशा, आदर्श कल्पना के रूप में नवीन चिन्तन को प्रस्फूटित करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह मानस सम्भावनापूर्ण होता है यदि कुछ इसे चाहिए तो सिर्फ सही व सार्थक निर्देशन, जो शक्ति को ... बचाने और

उसका प्रयोग हित में करें । इस सम्भावना पूर्ण अवस्था व शक्ति की उपेक्षा समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकती है । आगे बढ़ने के लिए सही राह व दिशा का अभाव युवामानस को कुंठीत, हताश, संत्रासग्रस्त व ध्वंसात्मक बना देता है । यह कुंठित मानस की शक्ति नष्ट नहीं होती बल्कि कालान्तर में संचित होकर किसी अन्य माध्यम से अन्य रूप में विस्फोटित होती है, जिसका प्रभाव घातक भी हो सकता है ।

युवावस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता आत्म प्रबुद्धता भी है । मनुष्य इस अवस्था में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है (घर, समाज व सरकार से) वह अपने अस्तित्व की स्वतन्त्रता के लिए सचेत रहता है । अस्तित्व की लड़ाई उसे परिवार, समाज, अर्थ, धर्म, राजनीति आदि सभी स्तरों पर अपने तरह से करनी पड़ती है । वह अनुचित दबावों का तुरन्त प्रतिकार करता है । किसी चीज़ की कीमत व उपयोगिता अपने दृष्टिकोण से देखता है । इस मानस में सिद्धान्त व ज्ञान होने के बावजूद उम्रगत अनुभव नहीं होता जिसके कारण सहनशीलता की कमी होती है । तुरन्त क्रिया व प्रतिक्रिया में आना इसका सबूत है ।

युवावर्ग की आस्था और अनास्था बहुत कुछ समाज की लम्बे समय से चली आ रही व्यवस्था और उससे उत्पन्न संस्कारों पर निर्भर करती है । यदि यह व्यवस्था व संस्कार उसके शक्ति विकास के अनुकूल हैं तो वह आदर्श प्रिय, आस्थावान व प्रेमी होता है और यदि उसके प्रतिकूल, तो वह कुंठित व हताश होता है । उसकी आस्था टूटती है । वह अन्दर व बाहर दोहरी लड़ाई से सम्बद्ध हो जाता है । उसमें बहुत हद तक अन्तर्मुखी होकर जीवन से पलायन करने की सम्भावना होती है जो मनोविज्ञान की दृष्टि से परिस्थितियों व जीवन से विद्रोह ही है ।

जिस प्रकार युवावस्था मनुष्य होने की पूर्ण क्षमता रखता है उसी प्रकार "युवा मानस" सोचने विचारने की पूर्ण क्षमता है । यह ऐसा उन्मुक्त

मानस है, जिसमें सामान्यत: किसी प्रकार का अवसाद, निराशा व कुंठा नहीं होती है। यह किसी भी कार्य को करने की अद्भुत क्षमता व प्रेरणा से भरपूर होता है। किसी भी वस्तु के पूर्व परिचय पर अपनी धारणायें नहीं बताना, बल्कि उसके साथ अपना नया परिचय देना व लेना चाहता है। पुरानी पीढ़ी व पुरानी धारणायें इसे पुराने फैशन से ज्यादा की नहीं दिखायी पड़ती हैं। ये क्रान्तिकारी परिवर्तनों के आकांक्षी हैं। होश की अपेक्षा जोश की अधिकता का नाम "युवामानस" है। ये जितने वेग से अपने में आये परिवर्तनों को महसूसते हैं ठीक उतने ही वेग से अपने आस-पास उपस्थित परिस्थितियों में भी परिवर्तन चाहते हैं। उसके पास यह सोचने, समझने का समय नहीं होता कि उसके विचार सिद्धान्त व दृष्टि का उसके अतिरिक्त दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ सकता है। इनकी आकांक्षायें स्वप्न, सिद्धान्त व नैतिकता आदि समुद्र में उठनेवाली लहरों के सदृश्य होते हैं जो बार-बार उठती-गिरती रहती हैं, धीरे-धीरे समय के अन्तराल में यह समझ जाते हैं कि इनकी सीमा, हैसियत व नीयति क्या है। इतने उलझनों के बाद भी यह मानना पड़ता है कि युवावस्था, युवाशक्ति, युवा-सोच कोई स्वप्न नहीं, वास्तविकता है। उसके सामने खड़ी समस्या उसके स्वप्न की कचोटती चुनौती है जिसको कभी न कभी परास्त करने का वह संकल्प रखता है।

आज के युवामानस की विसंगतियों का सबसे महत्वपूर्ण अंश प्रेम और पैसा हो गया है। इस अवस्था में यह दोनों ही उसे सबसे ज्यादा आकर्षित करने लगे हैं। आज के परिपेक्ष में यह देखा गया है कि जिस युवक व युवती को यह दोनों ही पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं वे आस्थावान, नैतिक, आदर्श प्रिय होते हैं उनमें किसी प्रकार की कोई पारिवारिक, सामाजिक व राजनीतिक विकृति नहीं उगती है। जीवन उनके लिए वरदान है, सुख है। दूसरी स्थिति में यदि इसमें से एक भी मिल जाये तो कम से कम वह अपने आप को व्यवस्थित परिस्थिति में

समायोजन करने की भरपूर कोशिश करता है, परन्तु इसके विपरीत यदि इन दोनों में से उसे कुछ भी हासिल नहीं होता तो वे निराश, कुंठित, आक्रामक, ईर्ष्यालु व हीनभावनाओं से ग्रस्त हो जाते हैं । जीवन का लक्ष्य उसके सामने से खिसक जाता है । उसके सामने न तो कोई आदर्श होता है और न ही आस्था । उसका विद्रोह व उनकी शक्ति प्रत्येक उस [illegible] व्यवस्था के प्रति कार्य करती है जो उसके विकास में अवरोध उत्पन्न करते हैं । ये हिंसात्मक व ध्वन्सात्मक कार्य करके दूसरों का ध्यान आकर्षित करते हैं तथा उसमें अपनी शक्ति व तेज शक्ति की सार्थकता तलाश करते हैं ।

आज का युवामानस इन्हीं दो इच्छाओं (प्रेम व पैसा) की पूर्ति की कोशिश में उलझा है । किशोरावस्था में हुए परिवर्तनों व उत्तेजनाओं पर नियन्त्रण करता हुआ युवावस्था की परिपक्वता तक आते-आते वह अपनी युवा सम्वेग से ही परिचालित नहीं होता बल्कि ईमानदारी व सोच को ही दर्शाने लगता है । प्रेम व पैसा उसके जीवन का लक्ष्य बन तो गया है फिर इसके अन्दर कहीं आदर्श नैतिक संस्कारों का रेशा जुड़ा हुआ है । पैसा यदि उसे जीवन की हर भौतिक सुख-सुविधा, शानदार सम्पन्नता की जिन्दगी दे सकता है तो प्रेम सम्बन्ध उसकी मानसिक भावनाओं की पूर्ति करते हैं, परन्तु विश्वास, संतोष व सम्वेदना उसे आदर्श नैतिकता तथा संस्कारों का वही समृद्ध रेशा ही दे सकता है । जिसके अभाव में मन सुख समृद्धि के बीच भी अकेला व अजनबी हो जाता है ।

आज के युवा की हर लड़ाई का विषय प्यार व पैसा है । उसकी जिज्ञासा इन्हीं दो को प्राप्त करने और उसको सुरक्षित रखने के प्रयत्न व संजोने में थक जाता है । उसके पास इन सब सुख सुविधा से उत्पन्न विषाक्त वातावरण में जीने का न तो समय है और न ही सोचने की मानसिकता, जवानी का शौक बुढ़ापे में पूरा करता हुआ यह बूढ़ा-

युवा होकर यह विषैली विरासत अपनी औलाद को सौंपता है, और एक नये सिरे से नयी लड़ाई, नये युवामानस के अन्दर जुड़कर एक नैरन्तर्य के रूप में चल रही है । यही कारण है कि समय व व्यवस्था की परेशानियों के दलदल में धंसता हुआ युवा वर्ग कभी उम्र से पहले युवा कहलाने लगता है तो कभी उम्र बीतने के बाद भी युवा मानस व शक्ति प्राप्त नहीं कर पाता । उसकी अप्राप्य इच्छाएं, आकांक्षाएं उसे असफलता के अंधकूप में ढकेलती हैं या तो फिर ज़मीन से ऊपर उठाकर आकाश में आधारहीन त्रिशंकु बनाकर छोड़ देती है ।

1.2. युवा वर्ग और सामाजिकरण की प्रक्रिया :

जन्म के समय शिशु न तो सामाजिक होता है और न ही असामाजिक, बल्कि समाज की बढ़ती-पनपती एक इकाई मात्र होता है । आयु बढ़ने के साथ-साथ व सामाजिक गुणों से सुशोभित होता हैऔर कुछ ही वर्षों बाद वह सामाजिक प्राणी कहलाने लगता है । स्वस्थ, सुंदर और मानसिक गुणों से युक्त बालक के लिए आवश्यक है कि उसमें पर्याप्त मात्रा में सामाजिक गुण विद्यमान हो । "सामाजिक जीवन और कार्यों में भाग लेते हुए सामाजिक विकास प्राप्त करने की प्रक्रिया को सामाजीकरण कहते हैं ।"[22] व्यक्ति जो जैविक प्राणी है । जब सामाजिक अन्योन्य-क्रिया और सामाजिकता सीखने के द्वारा अपने प्रौढ समाज के प्रचलित व्यवहार के ढंग और ढांचे को स्वीकारने और अपनाने लगता है तो सामाजीकरण की प्रक्रिया से गुज़रता हुआ प्रौढ़ समाज का सदस्य बन जाता है । चाइल्ड के अनुसार -- "सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के समूह मानकों के अनुसार वास्तविक व्यवहार का विकास होता है ।"[23] इस परिभाषा से यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजीकरण व्यक्ति में सामाजिक विकास की प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामूहिक मान्य-नियमों व मर्यादाओं का पालन करता है व उसके

अनुरूप व्यवहारिक ज्ञान अर्जित कर जीवनयापन करने लगता है -- "सामाजिक प्रक्रिया में तीन प्रकार की प्रक्रिया सम्मिलित होती है । पहली प्रक्रिया के अन्तर्गत बालक कुछ सामान्य मानक व्यवहार सीखता है तो दूसरी प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रत्येक समूह में विभिन्न आयु के लोगों के साथ विभिन्न प्रकार का व्यवहार तथा तीसरी प्रक्रिया में सामाजिक अभिवृत्तियों का विकास होता है ।"[24]

इन अभिवृत्तियों के कारण ही बालक सामाजिक कार्यक्रमों तथा समाज के अन्य व्यक्तियों को पसन्द व नापसन्द करता है । दैनिक जीवन के अनुभव में यह देखा गया है कि जो बालक अपने समूह के मानकों के व्यवहार में अनुरूपता स्थापित नहीं कर पाता, तो परिवार व समूह उसे स्वीकार नहीं करता ।

सामाजिक और असामाजिक व्यवहार प्रतिमानों को बालक अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में ग्रहण कर लेता है । बालक के प्रारम्भिक सामाजिक अनुभवों में परिवार का वातावरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है । यदि प्रारम्भिक काल में ही परिवार का वातावरण सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार रहा है तो बहुत कुछ संभावना है कि बड़ा होकर बालक सामाजिक व्यक्ति ही बनेगा । बालक के प्रारम्भिक अनुभवों को परिवार का आकार जिसमें बालक पलता है वह भी महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है । बालक का परिवार में क्या स्थान है, बालक से परिवार किस प्रकार का व्यवहार करता है, बालक के लालन-पालन की कौन सी विधियाँ अपनायी गयी हैं, बालक के माता-पिता बालक से क्या प्रत्याशा रखते है । इस प्रकार के कारण बालक के प्रारम्भिक सामाजिक अनुभवों को अधिक महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं । यदि परिवार में बालक अपने आपको तिरस्कृत अनुभव करता है तो उसमें जो सामाजिक अनुभव विकसित होंगे वे विपरीत प्रकार के होंगे । प्राय: इस प्रकार के बच्चे अन्तर्मुखी,

कुंठित व निराश होते हैं । इसके अतिरिक्त जिन बालकों का पालन-पोषण एक अच्छे परिवार में अच्छे तरीके से होता है तो वह अधिक मानसिक स्वस्थता व सामाजिक मर्यादाओं में आस्थावान होते हैं । अत्यधिक प्रभुत्वशाली अभिभावकों के संरक्षण में पलनेवाले बालक या तो शान्त व निर्विरोधी हो जाते हैं, या एकदम विद्रोही व्यक्तित्व अपना लेते हैं । बहुधा यह देखा गया है कि जिन बालकों का संबंध परिवार से अच्छा होता है वे बाहर के लोगों के साथ भी अपने संबंधों का आनन्द उठाते हैं और इस अवस्था में ही उनमें सामाजिक आस्था व उसके व्यक्तियों के प्रति स्वस्थ अभिवृत्ति निर्मित होती है । वे अपने साथियों में लोकप्रिय रहते हैं और इस मान्य समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं ।

सामान्यत: प्राथमिक समूह में परिवार और परिवार के सदस्य-गण, पडोसी, सहपाठी तथा खेल-कूद के साथी आते हैं । रेडियो तथा पाठशाला की गणना भी इसी कोटि में की जा सकती है । अपने प्राथमिक समूह में व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है, उसका प्रभाव उसपर आजीवन बना रहता है, क्योंकि इससे सम्बद्ध व्यक्ति निकट सम्पर्क के होते हैं फलत: इनका सम्पर्क अधिक व्यापक और स्थायी होता है । अपने भाई बहनों के द्वारा वह प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, सहयोग तथा त्याग सीख लेता है ।

द्वितीयक समूह में महाविद्यालय और विश्वविद्यालय, व्यवसायिक समूह, समाचार पत्र और पत्रिका, सिनेमा, रेडियो, राजनैतिक दल, साथी और विशाल समाज होता है । युवा के सामाजीकरण में समूह का वर्तमान काल में अधिक महत्व है । राज्य का भी व्यक्ति के सामाजीकरण में प्रमुख हाथ होता है । विशेषत: साम्यवादी देशों में, जैसे, जैसे समाज अधिक जटिलता की ओर अग्रसर होता है, वैसे-वैसे सामाजीकरण के द्वितीयक समूहों का महत्व बढ़ता जाता है ।

परिवार समाज की इकाई है और जातीय सांस्कृतिक निधि का प्रसारक एवं पोषक होता है । आनुवंशिक संस्कृति को परिवार ही संक्रमित करता है, तथा बालकों में अनुकरण निर्देशन, प्रोत्साहन, प्रशंसा, भय, दण्ड, गल्प एवं गीत द्वारा उसका प्रचार और प्रसार करता है । पूर्व औद्योगिक समाज में किशोर अपने परिवार का एक उपयोगी सदस्य होता था । वह माता-पिता के व्यवसाय एवं जीविकोपार्जन की क्रियाओं में हाथ बंटाता था और परिवार में ही पिता के जीवीकोपार्जन की क्रियाओं में लगकर स्वत: उस व्यवसाय में प्रशिक्षित हो जाता था । इस तरह वह माता-पिता के निकट सम्पर्क में सयाना होता था, साथ ही परिवार का संकुचित दृष्टिकोण कठोर धारणा, पूर्वाग्रह Prejudice अभिवृत्ति Attitude और मनोभावों को अर्जित करते हुए बालक पिता की ही प्रतिकृति हो जाता था । बेकारी का शिकार होने से बच जाता था ।

बीसवी शताब्दी में औद्योगिक, नागरीकरण तथा व्यक्तिवादी विचारधारा के कारण परिवार की परिधि, आकार एवं रूप-रेखा में तेज़ी से परिवर्तन हो रहा है । परिवार दिनो-दिन लघुता में सिमटता जा रहा है और आधुनिक कहलाने व दिखने की चाह में आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक उत्तरदायित्वों का वहन ठीक रूप में नहीं हो पा रहा है ।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में नगरीकरण, औद्योगिकरण सामाजिक गतिशीलता और बढ़ती हुई जीवन की आवश्यकताएं सभी विकासमान देशों के मूलभूत तत्व हैं । इन परिवर्तनों के कारण अभिभावक अपने व्यवसाय तथा जीविकोपार्जन में व्यस्त हैं । साधन-सम्पन्न माता-पिता अपनी संतानों का पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा स्वयं न कर धाय तथा शिक्षकों को सौंप देते हैं । परिणाम में बालक उनकी गोद तो दूर, सम्पर्क से भी वंचित हो जाते हैं । आजकल शैशवास्था में ही धनी लोग बालकों को आवासीय विद्यालयों में भेजकर अपना बोझ उतार लेते हैं, फिर परिवार के प्रभाव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । साथ ही "युवा वर्ग के सामने सामाजिक

मूल्यों में भी अनेक अन्तर्विरोध उपस्थित होते हैं । घर तथा बाहर व स्कूली संस्थाओं में जो सामाजिक मूल्य उसे सिखाते हैं वे स्वयं आपस में विवादास्पद होते हैं । उसके सामने यह संकट पैदा हो जाता है कि वास्तव में कौन सा सही है और कौन सा गलत ।"[25]

सभी विकासमान देशों की जनसंख्या ग्रामीण अंचलों से खिसक कर नगरों की ओर खींच रही है । छोटे नगर बड़े होते जा रहे हैं । नगरों में रहनेवाले आधुनिकीकरण की होड़ में, तथा जीवन स्तर को उठाने में अपनी भौतिक आवश्यकताओं को दिन-ब-दिन बढ़ाते जा रहे हैं, जिनकी पूर्ति करने में उन्हें जीवन से जूझना पड़ता है । अपनी सन्तानों की देख-रेख के लिए न तो उन्हें समय ही मिल पाता है और न ही उनके पास शक्ति शेष रहती है । दूसरी ओर सूचना एवं संचार के साधनों से सुलभ ज्ञान के कारण बालक पर परिवार का प्रभाव घटता जा रहा है । परिवार के साथ भावात्मक लगाव भी पहले की अपेक्षा कम होता जा रहा है । आज का युवा वर्ग अपने संरक्षक के आदेश का पालन बिना तर्क के मानने को तैयार नहीं है । वे अभिभावकों के हर बात को विचार की कसौटी पर सही व गलत साबित करके देखते हैं । फलत: सामाजीकरण के प्रथम समूह का अधिकांश कार्य द्वैतीयक समूहों द्वारा सम्पन्न होता है ।

मध्य वर्गी पिता का अधिकांश समय जीविकोपार्जन में बीत जाता है । भौतिक समृद्धि की प्रतिस्पर्धा, सामाजिक पद स्थिति के परिचायक उपकरणों के संचय संघर्ष में विवश होकर माता-पिता को भी किसी अंशकालिक व्यवसाय को पाने के लिए घर-गृहस्थी ... त्यागना पड़ता है । इसे हम दुर्भाग्य ही कहेंगे कि शिशु अपनी इस सुकुमार अवस्था में, जिसमें वह सर्वाधिक ग्रहणशील होता है, माता-पिता के स्नेह सम्पर्क से वंचित रह जाता है । निम्न वर्ग के माता-पिता जो प्राय: अशिक्षित होते हैं जिनमें शिशु कल्याण चेतना नहीं होती वे परिवार-नियोजन न कर सन्तानों की संख्या

बढ़ाते जाते हैं । एक ओर सन्तानों की वृद्धि तो दूसरी ओर सीमित साधनों के परिणामस्वरूप माता-पिता के अधिक परिश्रम के कारण उस परिवार की स्थिति दयनीय हो जाती है जिससे परिवार की समुचित देखभाल नहीं हो पाती ।

सामाजिकरण की इस प्रक्रिया में आज का युवामानस भटक रहा है । उसका पहला संघर्ष अपने परिवार, अपने कुटुम्ब के प्रति है । वह अपने प्रौढ़ों के अनुरूप बनना नहीं चाहता, अपितु उसमें परिवर्तन चाहता है । किसी तथ्य (fact) के वर्णन से सन्तुष्टि नहीं पाता बल्कि स्वयं अनुभव (Self experience) चाहता है ।

बड़े आकार की तुलना में छोटे परिवार के बालकों को शैक्षिक सुविधाएं अधिक सुलभ होती हैं । शैक्षिक सुविधायें और जीवन स्तर में अन्योन्याश्रित संबंध हैं । आज वे ही राष्ट्र समृद्धिशाली हैं जो शिक्षा क्षेत्र में आगे हैं । जहाँ के अधिकांश नागरिकों को उच्च शिक्षा सुलभ है । जैसे -- अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड और जर्मनी आदि । सामान्यत: यह देखा गया है कि कम संख्यावाले परिवार में बच्चों की देखभाल व शिक्षा का कार्य अधिक उचित हो पाता है । उनका जीवन स्तर भी ऊंचा होता है । इसमें संदेह नहीं कि उचित शिक्षा प्रणाली द्वारा ही प्राकृतिक साधनों व वैज्ञानिक अनुसन्धानों के द्वारा राष्ट्र की समृद्धि संभव है । शिक्षित परिवार ही इसका विवेकपूर्ण उपयोग कर सकते हैं । सन्तति निरोध, अच्छे आवास, सन्तुलित एवं पौष्टिक भोजन-भ्रमण तथा ललित तथा कला व मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति एक शिक्षित परिवार ही कर सकता है व उसकी उपयोगिता समझ सकता है । अधिक बच्चों से कम बच्चोंवाले घरों में बच्चों को पारिवारिक मधुरता अधिक मिलती है जिससे सामाजिक मानदण्ड को समझने में सहायता मिलती है ।

विकासशील देशों की इन परिस्थिति में गृह कार्यों से मुक्त युवा परिवार की वास्तविक गतिविधियों से अनभिज्ञ रह जाता है । बाह्य

आधुनिक वातावरण से प्रेरणा प्राप्त युवा का घर की जिम्मेदारियों से कतराते रहना स्वाभाविक है । परिवार के प्रौढ़ सदस्य किशोर को वयस्क उत्तर-दायित्व के बोझ से मुक्त कर देते हैं ताकि किशोर अपनी प्रतिभा को प्रकट कर सके । उससे पारिवारिक मसलों के समाधान में सहयोग और सलाह नहीं लेते हैं । इस उपेक्षा की स्थिति में किशोर में "मैं भी कुछ कर सकता हूँ कि भावना प्रबल हो उठती है ।

सही तौर पर यह मानना चाहिए कि आज के सामाजिक परिवेश में युवा वर्ग उपेक्षित परिस्थितियों से गुज़र रहा है । अपनी अस्मिता व महत्व की आकांक्षा ने उसको समाज के प्रति संदिग्ध कर दिया है । बदलता हुआ आज का यांत्रिक परिवेश परिवार में भय भय पैदा करने लगा है । माता-पिता युवा-सन्तान को ﴾अपनी नज़र में﴿ बांधना नहीं चाहते बल्कि उसे जीवन व्यापन की पद्धति में ढालना चाहते हैं । उन्हें हमेशा किशोर के भविष्य की चिन्ता बनी रहती है । सामाजिक विषमता को जानते हुए भी किशोर के एक लकीर में चलाना उनकी अपनी विवशता है । वे नहीं चाहते कि इन्कलाब की पहल उनकी अपनी सन्तान द्वारा हो । जिनके कन्धे पर उनके भविष्य ﴾वृद्धावस्था﴿ का बोझ लदा है । कुछ उनका स्वार्थ, कुछ सन्तान का मोह व उनका डर युवा को सामाजिक नियमों के विरोध में चलने से रोकता है । वे सिर्फ इतना युवा मन में बिठा देना चाहते हैं कि यदि जीवन अभावों के बीच भी जिया जा सकता है तो क्यों न इसी तरह जिया जाये । जीवन का सुख-दुःख भाग्य की देन है, ईश्वरीय कृपा है । यदि जीवन शापित है तो शापित ही रहेगा । यही उनके बिताये जीवन के अनुभव हैं, यही उनकी वसीयत है जिससे वे अपनी सन्तान के नाम करने के लिए लालायित रहते हैं "गरीबी की मार भी सन्तान स्नेह को सुखा देती है ।"[26]

2. आधुनिक युवामानस और पाश्चात्य प्रभाव :

स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय जनता ने बहुत बड़े परिवर्तन का स्वप्न देखा था । स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वतन्त्रता का अनुभव किया जाने लगा । मताधिकार के प्रयोग से सामान्य जनता को भी राजनैतिक दृष्टि से प्रतिष्ठा मिली । प्रशासन द्वारा विशेष संरक्षण मिलने से पिछड़ी हुई जातियों में आत्मबल बढ़ा । देश की आर्थिक स्थिति मन्द होने पर भी देश की उन्नति के साथ जीवन की सुरक्षा व समृद्धि का मोह पैदा होना लाजिम था, लेकिन दुर्भाग्यवश यह स्वर्णिम स्वप्न कालान्तर में मृग मरीचिका साबित हुए । विशाल पंचवर्षीय योजनाओं ने देश में असन्तुलित विकास पैदा कर दिया है । औद्योगिक और तकनीकी शिक्षा का शिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम से कोई विशेष सामंजस्य न होने के कारण आम जनता से उसका संबंध टूटने लगा है । मध्यवर्ग का उदय व उसकी वर्णीय प्रवृत्ति का रूप खूँखार हो गया । भारतीय समाज की रीढ कहा जानेवाला यह वर्ग दोहरी नीति अपनाकर स्वयं तो अन्त:द्वन्द्वों में फँसता रहा साथ ही अपने अस्तित्व के लिए उच्च वर्ग व निम्न वर्ग के बीच के सम्वाद को समाप्त कर दिया है । यह बुद्धिजीवी वर्ग अपने स्वार्थों के लिए इन दोनों वर्गों का आज भी शोषण करने के षडयंत्र में राज-नैतिक, सामाजिक तथा नैतिक स्तर पर शोषित हो रहा है । यह सच है कि स्वतंत्रता के बाद भारत ने वास्तव में प्रशंसनीय प्रगति की है । लेकिन इस प्रगति की गति और दिशा सामाजिक जीवन के सिर्फ एक ही आयाम की ओर है । इस प्रगति का लाभ सामान्य जनता को नहीं हुआ बल्कि पूंजीपतियों और उद्योगपतियों के ही पक्ष में विशेष रूप से रहा, जिसका प्रमुख कारण था, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बनी सरकार द्वारा भारी उद्योगों और प्रतिष्ठानों को बढावा देना । काम बनाने व बिगाड़ने के जिम्मेदार प्रशासन व उच्च पदों पर अधिकांशतः मध्य वर्ग या उच्च मध्य वर्ग ही था । इन्हीं की कुटनीतियों एवं षडयन्त्रों द्वारा सामान्य जनता को यह एहसास तक नहीं होने दिया कि सरकार और पूंजीपतियों के बीच

कोई गुप्त समझौता भी है । इनकी आपसी सांठ-गांठ का परिणाम है कि आज भारत ग्रहों पर पहुंचने का स्वप्न संजोये करोड़ों रूपये अपने को विकसित देशों को श्रेणी में रखने के लिए खर्च कर रहा है, जबकि दूसरी ओर उसी भारत की जनता रोटी-रोज़ी की खोज में दर-दर भटक रही है । ऐसे द्वन्द्वीय समाज में पली हुई युवा पीढ़ी की अपनी अलग ही जीवन-दृष्टि बन गयी है । विकास से अछूते क्षेत्रों के युवकों का चिन्तन महलों में पल रहे युवक से भिन्न है । उम्र व प्राकृतिक संरचना एक होते हुए भी वर्गीयप्रवृत्ति का महत्व बढ़ गया है । मध्यवर्गी युवकों का चिन्तन व समस्याओं में इन दोनों वर्गों का मिश्रण प्राप्त होता है । मध्यवर्ग की मानसिकता ही कुछ ऐसी होती है कि वह ऊपर उठने व प्रगति की इच्छा को निरन्तर आगे बढ़ाता ही रहता है । वह उच्च वर्ग का युवक होना चाहता है जबकि उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति निम्न वर्ग की होती है, परिणामतः द्वन्द्वों के भंवर में फंसा नियति वादी हो जाता है ।

विश्व के अधिकांश विकासशील राष्ट्रों की भांति भारत भी दरिद्रता, भुखमरी, निरक्षरता और बेरोज़गारी जैसी भयंकर समस्याओं के चंगुल में फंसा हुआ है । दिनों-दिन बढ़ती संख्या, आर्थिक विकास को निगलती जा रही है । भ्रष्ट, कामचोर, अयोग्य, पदलोलुप, घूसखोर नेता व कर्मचारी सभी अपने-अपने स्वार्थों में गहराई तक धंस पड़े हैं । योजनाओं का प्रतिफलन इन्हीं के लिए पूरा नहीं पड़ता, आम जनता तो परे है ।

आधुनिकता की लहर भारतीय जीवन को तेज़ी से भ्रमित जीवन दर्शन की ओर ले जा रही है । सांस्कृतिक जीवन दृष्टि बदलने लगी है । "आधुनिकीकरण के नाम पर पाश्चात्यीकरण के प्रभाव से भारतीय समाज में सांस्कृतिक सम्वर्धन और विकास के लिए नवीन तत्वों को ग्रहण किया गया है । नित्य नवीन आविष्कारों, पाश्चात्य संस्कृति के नवीन विचारों ने जहाँ भारतीय संस्कृति में विकास की स्थिति उत्पन्न की है, वही वर्तमान स्थिति में विश्व की समस्त संस्कृतियों में विघटन की स्थिति बनई हुई है ।"[27] वर्तमान

भौतिक उन्नति के साथ-साथ जब सांस्कृतिक विकास तालमेल नहीं बैठा पाता तभी सांस्कृतिक धरातल पर गतिरोध की स्थिति उत्पन्न होती है और यहीं से सभ्यता और संस्कृति के मूल्यों में अन्तर्विरोध की स्थिति व्याप्त होने लगती है। अंग्रेज नहीं रहे, किन्तु वह गलत तन्त्र और उसके आर-पार फैला हुआ सन्नाटा आज भी ज्यों-त्यों कायम है।

स्वतंत्रता के बाद जन्मी भारत की एक पूरी पीढ़ी को आज मतदान का अधिकार प्राप्त हो चुका है। जो कि सम्पूर्ण मतदाताओं का अधिकांश है। देश के भविष्य पर इस पीढ़ी का गहरा असर हो सकता है और देश की दिशा परिवर्तन करने में भी सक्षम है। स्वतन्त्रता इनके लिए शासन के हस्तान्तरण से अधिक कुछ नहीं है। इस पीढ़ी ने आजादी के मोह को संजोते और फिर मोह भंग में परिणत होते सजीव रूप में अनुभव किया है। आज की इस युवा-पीढ़ी ने अपने मानसिक-निर्माण काल में किसी आदर्श को बनते नहीं देखा। स्वतन्त्रता आन्दोलनों का त्याग, बलिदान और संघर्ष की कहानियों और पौराणिक कहानियों में उसे कोई अन्तर नहीं दिखायी देता। भारतीय परिवेश में व्याप्त खोखले आदर्शों, नैतिक, सामाजिक मूल्यों का टूटन के साथ-साथ विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में नयी-नयी क्रान्तियों, पाश्चात्य आधुनिक फैशन के बढ़ते प्रभाव में वह अपने को कहीं का नहीं पा रहा है। बड़े-बड़े कुर्सीखोरों को अपने निम्न स्वार्थ के लिए भ्रष्टातिभ्रष्ट हथकंडों को अपनाते हुए यह युवा पीढ़ी अपने ही सामने देखती है तो उसका विद्रोही हो जाना स्वाभाविक है, जिसके लिए उसको दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इस परिपेक्ष्य में भी भारतीय युवा पीढ़ी पर भावुकता और फैशनपरस्ती का इल्जाम नहीं लगाया जा सकता। जीवन की सच्चाई को समझने की राह पर जब वह घर में दिन-रात पारिवारिक कलहों से जूझता है तथा घर से बाहर भ्रष्ट कर्मचारियों का शिकार होता है तब इस पीढ़ी का वरगला जाना स्वाभाविक है। तब अपनी मायूसीतफको छुपाने के लिए, पाश्चात्य तरीकों को अपनाने के लिए तत्पर हो उठता है। सम्बन्धों की मिठास उसके लिए फीकी नहीं हुई है बल्कि फीका महसूसना समय का आदेश है। अपनी विवशता को समझना, उसे मानसिक व शारीरिक रूप से विद्रोही बना दे रही

है । एक तरह आधुनिक यन्त्रों से उत्पन्न लुभावने सुख-सौन्दर्य उसे उम्र के इस नाजुक व भावुक दौर में आकर्षित व सम्मोहित करते हैं तो दूसरी ओर भारतीय पारम्परिक अनुशासन व संस्कारों का भ्रम उसे बीच की स्थिति में गुनाहगारों के कटघरे में खड़ा कर देती है । अगर एक वाक्य में कहना हो तो यही कहा जा सकता है कि भारतीय युवापीढी तन से पूरी तरह पाश्चात्य . है तो वहां उसका मन पाश्चात्य की तरफ बहते-बहते समकालीन भारतीय परम्परा की तरफ लौट पड़ता है । जैसे विदाई के समय व्यक्ति बार-बार मुडकर अपने प्यारों को आत्मीयता की नज़र से देखता है ।

"आधुनिक बोध का अर्थ होगा, वर्तमान का बोध"[28] और इस पीढी को वर्तमान बोध विशेष रूप से है । आज की विसंगति-विषमता में जीता हुआ युवा वर्ग वर्तमान की परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पा रहा है । वह मौजूदा व्यवस्था को बदलने की कोशिश कर रहा है । उसका विद्रोह किसी एक व्यवस्था से न होकर लगभग सभी रूढ़गत व्यवस्थाओं से है, जो आज के जीवन गतिरोधक सिद्ध हो चुके हैं । "आज का विद्रोह युद्ध की घोषणा नहीं है, तथाकथित विश्वास के प्रति अविश्वास की घोषणा है । उठाया गया हर कदम अपने लिए रास्ता खोजना नहीं है, निर्धारित रास्तों से इन्कार है ।"[29]

बीसवीं शताब्दी के छठे, सातवें और आठवें दशकों में युवा मानस ने जिस प्रचण्ड शक्ति का परिचय दिया है उससे पुरानी पीढी चौंक उठी है । आज विश्व में हुए युवा जागरण से स्पष्ट है कि युवा जागरण हो चुका है भारत में छठे दशक के बाद जो युवा पीढी उभरी वह पूरी की पूरी विद्रोही है इसका कारण असन्तोष है ।"[30] पुरानी पीढी के रूढिबद्ध विचारों के प्रति शिक्षा के प्रति, समाज के प्रति व जड़ परम्पराओं व भ्रष्ट शासन के प्रति जीवन में लगभग हर पहलू के प्रति । शासन उसके इस असंतोष को मिटाने का असफल प्रयास कर रहा है । अतः अनुशासनहीनता युवकों में ही नहीं समाज के विभिन्न पहलू में फूट रही है । जो सम्पूर्ण जन जीवन को

अस्त-व्यस्त किये दे रही है । इस अनुशासनहीन युवा वर्ग से समाज को बहुत बड़ा खतरा पैदा हो गया है । देश के विभिन्न शिक्षा संस्थाओं में अनुशासन-हीनता की वजह से ही शिक्षा का अर्थ बदलने लगा है । "हमने जिन मानवीय और लोकतान्त्रिक मूल्यों की कामना की थी वह एक पूरी समर्थ पीढ़ी ने निवृत्त कर दिया है । भविष्य की आशा और दिलासा झूठे पड़ गए । स्पष्ट हुआ कि किसी भी रास्ते से अपनी व्यक्तिगत सफलता ही आज के जीवन का सबसे बडा मूल्य है । हमारा सारा जातीय जीवन मुंह में तीहरी नकाब लगाये जी रहा है । उसके सार्वजनिक और अन्तरंग चेहरे पर बहुत बड़ी खाई उत्पन्न हो चुकी है । सभी आश्वासन पीछे छूटकर झूठे पड चुके हैं, और इतना बड़ा वैचारिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा मूल्यगत विदोष ﴾ कन्फ्यूजन ﴿ पैदा हुआ है कि असली और नकली ढोंग और ईमानदारी सच और झूठ का भेद मिट गया है । चरित्रहीनता की इस स्थिति ने एक नये परीक्षा पोषण को जन्म दिया है । परिणाम यह हुआ कि पिछली प्रबुद्ध पीढ़ी, युवा पीढ़ी और सम्वेदनशील वर्ग तथा व्यवस्था प्रतिष्ठानों के बीच कोई वैचारिक तथा भावात्मक सम्पर्क सूत्र नहीं रह गया है । यदि नयी पीढ़ी क्रुद्ध होकर यह नारा लगाती है कि पीढ़ियों के बीच कोई सम्वाद शेष नहीं, तो बात गलत नहीं है ।"[32]

असन्तुलित आर्थिक विकास ने सामाजिक जीवन में ही असन्तुलन पैदा नहीं किया है बल्कि एक नयी ﴾मानसिकता﴿ साइकोलीजी रच डाली है । नैतिकता का प्रश्न इसी विसंगति के शिकंजे में फंसा है । जिसके पास पैसा है उसके पास सब कुछ होते हुए भी ﴾ भौतिक समृद्धि ﴿ कुछ भी नहीं है । तथा दूसरी ओर जिसके पास पैसा नहीं है भौतिक सुखों के अभाव में भी लेने देने के लिए अपार सम्पदा है । कहने का अर्थ है कि अभावों का यह आर्त सभी वर्गों में व्याप्त है । धनी वर्ग का युवक पैसे से ही हर चीज़ की कीमत आंकता है । नैतिकता, परम्परा, सम्बंध, अनुशासन, इज्जत, आबरू सब कुछ का पैमाना पैसा है । उसके पास सिर्फ एक नारा है पैसे से पैसा बनाओ

और पैसे से खरीदी जा सकनेवाली हर सुविधाओं द्वारा ऐय्याशी करो । लेकिन भावुक व सम्वेदनशील युवक समृद्धि की अपारता में भी अपने को भौतिक सुविधाओं में धुला-मिला नहीं पाते, अपनी सार्थकता का उत्तर ढूंढते रहते हैं ।

पैसा कमाने की इस होड़ में आज परिवार छिन्न-भिन्न हो गया है । पैसा हर वर्ग का लक्ष्य बन चुका है । इस प्रतिस्पर्धा में युवकों को वह शिक्षा नहीं मिल पा रही है जो उनका चारित्रिक विकास कर सके । जिसके परिणामत: गलत रास्ते पर जाना आसान होता जा रहा है । पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित माता-पिता बच्चों की उपेक्षा करने लगे हैं । आधुनिक कपड़े, पाप संगति व विदेशी तौर-तरीके आधुनिक बनने के लिए बहुत जरूरी हो चुके हैं । मन से पूरी तरह भारतीय प्रौढ पीढ़ी विदेशीपन के मोह में फंसा अपने को ही नहीं, पीढी दर पीढी को गुमराह कर रही है । "जिस समाज में नर-नारी के मिलन से संतोष और स्वास्थ्य नहीं फूटता है उस (समाज) में बच्चे बाल-अपराधी बन जाते हैं । ये ही जब युवा होते हैं तो क्रूर और अपराधी बन जाते हैं ।

आज उच्च व निम्न वर्ग में सिर्फ एक ही फर्क रह गया है और वह है पैसे का। । पैसा वर्ग विभाजन का आधार बन गया है । शिक्षा व संबंधों का अर्थ दोनों के लिए एक है । उच्च वर्ग में शिक्षा व संबंध का अर्थ पैसा है । उतना ही संबंध व शिक्षा जरूरी है जो पैसा कमाने के लिए आवश्यक हो । वही शिक्षा उचित है जिसका संबंध व्यवसाय से है । रहन-सहन, बात-विचार, इज्जत आवास का आधार पैसा है । इन दोनों वर्गों में वैसी घृणा, कुंठा व आक्रोश उस रूप में नहीं मिलता जो मध्य वर्गीय जीवन में है । मन से पूरी तरह भारतीय परम्परागत होते हुए भी यह मध्यवर्ग परम्परा को ढोते हुए भी आधुनिक होने का दावा करता है । शिक्षा की उच्च डिग्रियां इसी वर्ग की विरासत है और नौकरी करना वंशागत पेशा है ।

बौद्धिक परेशानी जितनी इस वर्ग को सताती है उतनी शायद किसी अन्य को नहीं। यह एक ऐसा वर्ग है जो एक साथ दो जीवन जीता है। एक असली तो दूसरा लगातार नकली। आदर्शों की महिमा इसी वर्ग के लिए है। ऊपर से चिकनी चुपड़ी बातें, तो उसी वेग में अन्दर गालियों का अम्बर फूटता है। सच तो यह है कि भारत जैसे गरीब देश में मानसिक आधार पर उच्च वर्ग है ही नहीं यदि है तो ना के बराबर। जिसे उच्च वर्ग समझा जाता है वह उच्च मध्यवर्ग है और उसकी मानसिकता पूरी की पूरी मध्यवर्गीय है। भ्रष्टाचार का बीज इसी के मानस से पैदा हुआ है। इस वर्ग की विशेषताओं में एक यह भी है कि जो वह नहीं है, उसी का दावा करता है जो है उसकी कीमत शून्य है और जो नहीं है या विदेशी है उसकी कीमत अनमोल है।

आज का युवा वर्ग इस बजुर्ग अनुभवी पीढ़ी की मन:स्थिति को समझने लगा है। उम्र से पहले जवान हो जानेवाली यह पीढ़ी उनका पर्दाफाश करने लगी है। पाश्चात्य व भारतीय अन्तरों को समझनेवाली यह पीढ़ी दोहरे चेहरे से बगावत करने तो लगी है, लेकिन रूढ़ियों का जाल और परंपरा का मोह युवा वर्ग की मानसिकता को इस प्रकार जकड़े हुए है कि वह नि:सहाय हो गया है। विदेशी और भारतीय इन दोनों धुनों के चुम्बकीय आकर्षण में उसकी अस्मिता नष्ट होती जा रही है। अर्थ का अभाव उसे दिनों-दिन अधार्मिक बना रहा है।

वर्तमान शिक्षा पद्धति बेकारों की संख्या बढ़ा रही है। हजारों-लाखों युवक रोज़गार के लिए मारे-मारे फिर रहे हैं। रोजी-रोटी का लालच स्पष्ट विरोध व व्यक्ति विरोधी कार्यों को बढ़ावा दे रहे हैं। इनमें प्रशासन के प्रति आक्रोश भड़क रहा है। निराशा व विद्रोह की भावना तोड-फोड़ और अव्यवस्था को प्रोत्साहन पहुंचा रही है। देश में फैले असंतोष की वजह प्रमुखत: बेरोजगारी है। अब भी आधुनिक भारत की शिक्षा पद्धति बहुत पुरानी है। आज औद्योगिक विकास के लिए तकनीकी ज्ञान की ज़रूरत है। परिणाम विश्वविद्यालयों में इस वर्तमान शिक्षा का संबंध रोज़गार से नहीं जुड़ पाया है। परिणाम यह हुआ है कि शिक्षा का संबंध रोज़गार व नौकरी से टूट गया, जबकि

रोज़गार व नौकरी का संबंध भारतीय शिक्षा प्रणाली व विषय से दूर होता जा रहा है । बेरोज़गारी बढ़ती जा रही है । धर्मान्ध भारतीय हर झगड़े को धर्म से जोड़ कर आये दिन युवकों में तोड़-फोड़ व खून खराबे की प्रवृत्तियों को उत्तेजित कर रहे हैं । परन्तु बढ़ती समस्याओं के समाधान नहीं निकल पा रहे हैं । समस्यें जटिल होती जा रही हैं । व्यक्ति जटिलता की इस हद तक पहुंच चुका है कि भाषा खामोश हो गयी है --

"आदमी को आदमी से जोड़ने से भाषा कतराती है ।
आदमी को तोड़ने से भाषा खामोश हो जाती है
ऐसा क्यों होता है
आदमी खामोशी मोल लेता है
झेल नहीं पाता भाषा ।"

-- विद्यानिवास मिश्र

व्यक्ति को विवशता इस तरह उस पर हावी हो गयी है कि वह जो नहीं चाहता वही वह करता है । दहेज कहर ढा रहे हैं । बलात्कारों की संख्या लगातार लोकतन्त्र में बढ़ रही है । गर्भपात व परिवार नियोजन की इतनी सारी सुविधायें मिलने के बाद भी नाजायज बच्चों की संख्या बढ़ती ही जा रही है । फैशनपरस्त व आधुनिक कहलाने के नाम पर व्यक्ति कुछ भी करने को तैयार हो गया है । लड़कियां बहुतायत दहेज के नाम पर अविवाहित हैं तो लड़के बेरोज़गार । आज की इस भारतीय दुनिया में पौरूष कम होता जा रहा है । जिम्मेदारियों से युवा वर्ग भागता-सा नज़र आता है । बेरोज़गारी उसे आवारा बनाकर सामाजिक जिम्मेदारियों से अलग कर रही है । यही आवारा युवक हर प्रकार की मौज-मस्ती चाहता है लेकिन जिम्मेदारी नहीं । इन्हीं जिम्मेदारियों से पीछा छुड़ाने के लिए वह पारिवारिक संबंधों से भी अपने को कटा हुआ महसूसता है । पारिवारिक प्रेम जैसी मानसिक तोष की भावना उसके मन के किसी भी कोने में उपज नहीं पाती । युवा-वर्ग की इसी लाचारी और मजबूरी ने उसे दर-बदर कर

दिया है जिसका परिणाम यह हुआ कि उसने घर से बाहर अपने लिए नया रिश्ता ढूंढ लिया है । वह है दोस्ती का । इसी रिश्ते के माध्यम से वह अपनी भड़ास निकालता है । पारिवारिक अलगावी प्रवृत्ति की पूर्ण प्रतिक्रिया दोस्ती के रिश्ते में होती है । दोस्ती की खोज समता की खोज है । इस संबंध के माध्यम से जब वह विपरीत लिंग की ओर आकर्षित होता है तो अपने को हल्का अनुभव करता है तथा अवचेतन में छिपी रति भावना के उत्सर्जन का प्रयास भी करता है जो भारतीय समाज में वैवाहिक बन्धन से पूर्व निषेध होता है । समाज से मानसिक व शारीरिक अलगाव से पूर्व युवा वर्ग की जो, जो मजबूरियाँ थीं, वे धीरे-धीरे क्रमश: शौक और आदत में बदलने लगती हैं । इन्हीं की पूर्णता के लिए वह दुर्व्यसनों जैसे नशा, चोरी, पॉप संगीत, आदि की ओर अग्रसर है जिस कारण यह पीढ़ी अपने ही बुज़ुर्ग पीढ़ी की नज़रों में गिरती जाती है । यह जानते हुए भी कि इन बुरी आदतों या शौकउसे स्थायी सुख नहीं दे सकते फिर भी क्षणिक सुख के लिये इन्हें अपनाने का भरसक प्रयत्न करता है, जो बहुत कम नसीब होते हैं, एक सच को छुपाने के लिए हज़ार झूठ बोलना तो वह अपनी बुज़ुर्ग पीढ़ी से सीख चुका है -- "आज का हर युवक परिस्थितियों से ऊबकर रंगीनियों की तलाश में है । जो क्षणिक ही सही इस उबाऊ, नीरस, बनावटी और असंगत वातावरण से दूर हुआ जा सके । सस्ते सिनेमाओं का हिट हो जाना युवा मानस इस प्रवृत्ति की पुष्टि है ।"[34] ऐसा नहीं कि यह सच कहना-सुनना पसन्द नहीं करता बल्कि उसे कहने-सुनने से रोका जाता है । दुर्व्यवस्थाओं के कीचड़ में फंसा यह युवा वर्ग न तो रो पाता है और न ही हंस पाता है । परिस्थितियों में विपर्यय करता है ।

डा0 रघुवीर सिन्हा का यह कहना कि -- "भारतीय युवा वर्ग की एक बड़ी विशिष्टता यह है कि वह अपने आपको पाश्चात्य जगत् के युवा के समान पूर्ण-रूपेण आधुनिक नहीं बना पाया है । अत: उसमें आधुनिकता की अपेक्षा बौद्धिक अप्रोच व तटस्थता नहीं आ पायी है । वह अब भी अपने

संस्कारिक प्रभावों के कारण अपनी पितृ पीढी से भावात्मक स्तर पर जुड़ा हुआ है ।"[35] भारतीय युवा पीढी की पितृ पीढ़ी से इस प्रकार भावात्मक जुड़ाव निर्दोष है । क्योंकि वह आज भी अपने रूढ़िगत संस्कारों से पूरी तरह जकड़ा हुआ है । परम्परागत उन संस्कार को जिनका कोई मूल्य उसके आधुनिक जीवन में कोई अर्थ नहीं रखते हो, भय के कारण त्यागने में असमर्थ है । परन्तु इसके साथ उसकी मानसिकता का कच्चापन उसकी दीशाहीनता को और घनीभूत कर देता है । वह पूर्ण रूप से भावग्रस्तता से मुक्त हो नहीं पाता और न ही अपने आप को आत्मनिर्भर बना पाता है । ऐसी परिस्थिति में वह परम्परा से विद्रोह करने को मचलता है जो कि पुरानी पीढ़ी से विरोध करने के बाद भी आगे बढ़ नहीं पाता उसका विद्रोह मात्र घरेलू विद्रोह बनकर रह जाता है ।

"अकेला आदमी जब / एक तन्त्र के खिलाफ लड़ता है / तो अपने सारे हथियारों के बावजूद / एक काले पहाड़ से / निहत्थी लड़ाई लड़ता है / और अन्त में एक दिन / अपने ही लहूलुहान चेहरे से डरता है / इस तरह छोटी-छोटी अनेक लड़ाईयाँ लड़ते हुए / कितने ही हाथों से हथियार छूट जाते हैं / और एक फैसलानुमा लड़ाई से पहले / कितने बुलन्द हौसले टूट जाते हैं ।"[36]

एक ओर वह पितृ पीढ़ी व व्यवस्था के प्रति विद्रोह के झण्डे गाढ़ता है तो दूसरी ओर पितृ-पीढ़ी में भावात्मक लगाव भी ढूंढता है । परिणामत: युवा पीढी का विद्रोही दृष्टिकोण द्वन्द्वात्मक व दो मुखी हो गया है । आधुनिक प्रतिमानों के लिए जिस संकल्प शक्ति, आत्मबल, आत्मनिर्भरता दृढ़ता की निरन्तर आवश्यकता होती है उसे भारतीय युवा पीढी अपने आपमें सृजित नहीं कर पा रही है । यही कारण है कि बार-बार पितृ संरक्षण की ओर उन्मुख होती है । अथवा सांस्कारिक विरासत में राह तलाशती है ।

पाश्चात्य देशों में युवकों की दिशाहीनता आधुनीकीकरण का परिणाम है । भौतिक उपलब्धियों की चरमप्राप्ति से उद्देश्यहीनता व असंतोष की स्थिति युवा वर्ग को दिशाहीन बना रही है । यह परिस्थिति भारत में गंतव्य तक पहुंचने से पहले लक्ष्य से विश्वास उठ जाने के कारण है जो पाश्चात्य देशों में लक्ष्य प्राप्त करने के बाद जीवन से विश्वास उठ जाने के कारण आता है । अत: इन दोनों में विरोधात्मक अन्तर है । यह अन्तर दोनों की संस्कृति व संरचना की बुनावट में है । भारतीय समाज व संस्कृति में आधारभूत रूप से संयुक्त परिवार की संरचना है जहां व्यापक प्यार एवं संरक्षण प्राप्त होने के कारण युवक को न तो कार्य करने के अवसर प्राप्त होते हैं और न ही भावी जीवन का पारिवारिक प्रशिक्षण । साथ ही उसके स्वयं निर्णय को न तो माना जाता है और न ही ऐसा मौका दिया जाता है कि वह अपने बारे में स्वयं फैसला कर सके । अत: संयुक्त परिवार में वह निर्भरता नहीं आ पाती जो व्यक्तित्व विकास का आवश्यक तत्व है । आत्मविश्वास की कमी के कारण भावी जीवन की निर्भरता व सहजता डगमगा जाती है । जिसकी आशा आगे चलकर संयुक्त परिवार में की जाती है । यही वजह है कि एक ओर उपेक्षित व्यक्तित्व अहंवादी हो जाता है तो दूसरी तरफ वह आत्मनिर्भर व सहज जीवन नहीं जी पाता ।"[37] आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में उसके पैर डगमगाने लगते हैं । परिणाम में वह भावनात्मक रूप से पितृ-संरक्षण खोजने को विवश हो जाता है । पारिवारिक संस्कार के अलावा उसकी मानसिक पृष्ठभूमि पर कस्बई संस्कारों का प्रभाव भी उसे कभी पूर्ण बौद्धिक नहीं होने देती । इसी कारण भारतीय युवा पीढी कभी भी स्वस्थ दृष्टि, गहरा आत्मविश्वास दृढ संकल्पता एवं निर्वैयक्तिक जीवन दृष्टि को प्राप्त नहीं कर पाती, जिसकी आवश्यकता सामाजिक संघर्ष के लिए अति आवश्यक होती है । यह कमज़ोरी उसे लक्ष्य के प्रति स्थिर नहीं रहने देती बल्कि बार-बार हतोत्साहित हो वह दिशाहीनता को अनुभव करने लगता है ।

इन सबके विपरीत पाश्चात्य युवकों की दिशाहीनता आत्म-निर्भरता निर्वैयक्तिकता, अप्रोच, संकल्प, इच्छा जैसे चारित्रिक कमज़ोरी के कारण नहीं

बल्कि "दिनों दिन लक्ष्य की ओर बढ़ना, नयी-नयी भौतिक उपलब्धियों की खोज तथा इनसे उत्पन्न भौतिक सुखों का जड़ता व अन्दर से खोखला होता हुआ मानव मन व आस्था है ।"[38] अत्यधिक आधुनिकीकरण की उपलब्धि एवं उसकी महत्ता के नीचे दबना, धंसता व छोटा होता मानव जीवन ही उसकी दिशाहीनता के कारण है ।

इन उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि भारत की आधुनिक युवा-पीढी गुमराह नहीं है बल्कि समाज, राजनैतिक दुर्व्यवस्था उसे गुमराह किये दे रही है । उचित शिक्षा का अभाव बेरोज़गारी जैसी भयंकर समस्याएं युवा-मानस को आघात पहुंचा रही हैं । रोटी, कपड़ा और छत की तलाश में भटकती यह युवा पीढी कभी घर में विद्रोह करती है तो कभी शैक्षिक संस्थाओं में । यह उसका दुर्भाग्य है कि उसे न तो भारतीय संस्कृति की सही जानकारी है और न ही पश्चिमी विचारधाराओं एवं उपलब्धियों की तादात्मता तथा संगत । भारतीय संस्कारों से जकड़ा युवा पाश्चात्य जीवनधारा की चमक की तरफ भाग रहा है उसमें असफल होकर अनेक मानसिक बीमारियां अपने अन्दर पैदा कर लेता है । पैसा उसके समाज का अहं चीज बन चुका है । पैसा, पद और भविष्य की इच्छाओं के भारी बोझ से वह मन और शरीर दोनों से टूटता जा रहा है । ज्यादा सुख-सुविधा की दौड़ में भागना उसकी नियति व आवश्यकता बनाती जा रही है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो इस अन्धी दौड़ में जो भी उलट-पुलट भटकाव युवा पीढी में आया है उसमें उसका कम उसके बुज़ुर्ग पीढी का ज्यादा दोष है, जिसने उसे सही दिशा देने का प्रयत्न नहीं किया । पश्चिमी जीवन दृष्टि का अर्थ उसके लिए निरंकुश, सुविधा-सम्पन्न व सहज जीवन से है । लेकिन भारतीय समाज उसमें आधुनिकता व विदेशीपन के जहर का बीज बोकर अपने रूढिगत संस्कारों के अनेक रास्ते दिखाकर उसे भटका देता है । परम्परागत इज्जत के नाम पर युवा वर्ग का शोषण करनेवाली यह बुज़ुर्ग पीढी न तो उसे सही शिक्षा दे पायी है और न ही सही जीवन दृष्टि । अभावों में पली इस पीढी को द्वन्दीय

बनाकर उसे अभावग्रस्त जीवन व भ्रष्ट चरित्र के साथ कोमल कल्पना, स्वर्ग व नरक जैसी झूठी व आस्थाहीन भय, पाप-पुण्य आदर्श जैसी खोखली बातें ही विरासत में दे पायी हैं। यदि इन विसंगति को विरासत में तड़पता, छटपटाता युवा मानस वरगला कर आक्रोशी हो जाये तो सारा दोष उसी का नहीं है उसको दोषी करा देने से पहले उसके परिवेश को समझना बहुत ज़रूरी होगा। इस आधुनिक ग्रस्त युवापीढ़ी पर पाश्चात्य प्रभाव को आँकने के लिए सिर्फ बाहरी खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, आदतें व चरित्र आदि को ही नहीं, इसके साथ मानसिकता को भी समझना चाहिए, साथ ही इस ओर भी ध्यान देना होगा कि वह इन सभी वाह्याडम्बरों से वह खुश भी है या नहीं। उसकी जीवन दृष्टि क्या है ? उसका उद्देश्य क्या है ? क्या वह वही है जो दिखायी देता है या बुर्जुवा पीढ़ी जो समझ रही है।

सच तो यह है कि इन सभी से असंतुष्ट इस आठवें दशक की युवा और बुजुर्ग पीढ़ियों में किसी प्रकार की समता का सम्वाद अब शेष नहीं रह गया है। हर स्तर पर सोचने, सीखने व करने का ढंग-तरीका बदल चुका है। यदि इन दोनों को सही राह पर आना हो तो युवा वर्ग के अस्तित्व का इन्कार नहीं अपितु बुजुर्ग पीढ़ी को अपना विश्वास देना होगा। उन्हें कोशिश यह करनी होगी की अपने आप को काल की सापेक्षता में बदलते जीवन दृष्टि को युवा वर्ग के साथ अपनाये एवं युवा वर्ग को भी बुर्जग की मनःस्थिति को समझना होगा तथा आक्रोश में आकर तोड़-फोड़ के बदले शक्ति से अपनी विचारधारा पुरानी पीढ़ी के समक्ष रखे व अपने उत्तरदायित्व को वहन करने की शक्ति पैदा करे। क्योंकि आज जीवन के विभिन्न आयामों और परिप्रेक्ष्य में युवा पीढ़ी की जिस भूख की चर्चा की जाती है वह भूख वस्तुतः रोटी के साथ स्वस्थ जीवन दृष्टि [illegible] र और लगाव के तालमेल की है।

3. युवा संस्कृति :

मानव की सबसे बड़ी उपलब्धि है उसकी संस्कृति व सभ्यता । एक दार्शनिक ने कहा है कि जो कुछ हम हैं वह हमारी संस्कृति है और जो कुछ हमारे पास है वह हमारी सभ्यता है, और भी स्पष्ट रूप में मानव की भौतिक और अभौतिक उपलब्धियों की समग्रता को संस्कृति कहा गया है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है । संस्कृति का अर्थ है -- "हमारे रहने या सोचने के तरीकों में प्रतिदिन के आपसी समागमों में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन तथा आमोद-प्रमोद में अभिव्यक्त हमारी प्रवृति ही संस्कृति है ।"[39] दूसरे विचार श्री टायलर के शब्दों में -- "संस्कृति वह जटिल समष्टि है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून प्रथा तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज के नाते प्राप्त करता है ।"[40] संस्कृति की प्रवृत्ति निश्चय ही सामाजिक है और वह इस अर्थ में कि संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष या दो चार व्यक्तियों की धरोहर नहीं होती उसका विस्तार व्यापक तथा सामूहिक होता है । दूसरे शब्दों में संस्कृति समाज के समस्त या अधिकतर सदस्यों का दिखाया हुआ व्यवहार प्रतिमान होती है और इसी संदर्भ में यह किसी समाज की सम्पूर्ण जीवन विधि (Way of life) का प्रतिनिधित्व करती है । संस्कृति व्यक्ति को मानसिक तथा शारीरिक विशेषताओं की भांति अपने माता-पिता से वंशानुक्रमण के माध्यम से नहीं प्राप्त होता बल्कि वह जिस समाज में जन्म लेता है वहीं रहकर सह सामाजीकरण की प्रक्रिया के आधार पर उसको सीखता है । प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है । इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक समाज की भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियां अलग-अलग होती हैं । इसके अतिरिक्त संस्कृति पूर्णतया आविष्कार का परिणाम होती है । आविष्कार मानव आवश्यकताओं के कारण होते हैं, जो प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न होते हैं इसलिए संस्कृति का रूप भी प्रत्येक समाज में अलग-अलग होता है । संस्कृति

एक स्थिर वस्तु नहीं है । समयानुसार संस्कृति में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते रहते हैं । संस्कृति समूह के लिए एक आदर्श होती है । चूंकि संस्कृति किसी व्यक्ति का प्रतिमान न होकर पूरे समूह का व्यवहार-प्रतिमान होती है, अतः इन व्यवहार प्रतिमानों को आदर्श मानकर इनका पालन किया जाता है । वास्तव में किसी संस्कृति की निरन्तरता इसी बात पर निर्भर करती है कि उसमें मानवीय आवश्यकताओं को पूर्ति करने की क्षमता है या नहीं ।

संस्कृति व सभ्यता मानव-जीवन के दो महत्वपूर्ण पक्षों की अभिव्यक्तियां हैं । मानवीय जीवन इन दोनों से परस्पर जुड़ा हुआ विकास पाता है । "सभ्यता उसके जीवन का साधन है तो संस्कृति उसका साध्य ।"

संस्कृति पर्यावरण तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है । बच्चा कुछ जन्मजात लक्षणों के साथ पैदा होता है । वंशानुक्रमण-प्रक्रिया द्वारा माता-पिता से उसे शरीर का कद और ढांचा व कुछ अन्य शारीरिक तथा मानसिक विशेषताएं प्राप्त होती है, लेकिन धीरे-धीरेसामाजिकता के द्वारा सांस्कृतिक पर्यावरण के संदर्भ में वह एक सामाजिक प्राणी बन जाता है । उसकी आदतें, विश्वास, व्यवहार सभी कुछ उसके संस्कृति के आधार पर ही बनते हैं और वे ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी करते हैं । यही कारण है कि भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक पर्यावरण में व्यक्तियों का व्यवहार व आदतें भी एकसा नहीं होते । सांस्कृतिक पर्यावरण आर्थिक जीवन के साथ-साथ प्रौद्योगिक विकास को भी प्रभावित करता है । किसी देश में प्रौद्योगिक विकास की क्या स्थिति होगी उस देश की संस्कृति ही उसका निर्धारण करेगी । संस्कृति पर्यावरण का प्रभाव मानव जीवन के सभी क्षेत्रों पर पड़ता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मानव जीवन के निर्धारण में सांस्कृतिक पर्यावरण ही सब कुछ है । इस रूप में यह सत्य है कि व्यक्ति संस्कृति का दास ही नहीं वरन् संस्कृति [illegible]र्ता भी होता है ।

सभ्यता और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में युवा संस्कृति या उपसंस्कृति व्यक्ति को एक उम्र विशेष व मानसिक रुझान के साथ उसकी जीवन दृष्टि से भी जुड़ी है । "युवा संस्कृति का उद्देश्य जीवन को विकसित व उपभोग (enjoy of life) से है ।"[41] युवा संस्कृति का सामान्य लक्षण सुखवादी, उत्तरदायित्व हीन-व्यवहार और आत्माभिव्यक्ति मूलक आचरण होता है । यह उप-संस्कृति समाज की संस्कृति का एक हिस्सा होते हुए भी मानव के आनुवंशिक साम्य रखते हुए भी एक सीमा तक उससे भिन्न व स्वतन्त्र होती है । उप संस्कृति युवा के सहज आचरण को आदर्श घोषित करती है । देश व समय की सापेक्षता में यह उप संस्कृति अलमान और परिवर्तनशील होती है, क्योंकि उप संस्कृति भी समाज और समूह की संस्कृति के अनुरूप होती है । अत: भिन्न-भिन्न युवकों की वेश-भूषा, जीवन का रहन-सहन, धार्मिक विश्वास के आधार पर युवा उपसंस्कृति में भी भिन्नता का होना अपरिहार्य है । उदाहरण के लिए -- "अमेरिका के युवकों की उपसंस्कृति में लोकप्रिय गीत राक-एण्ड-रोल, फानोग्राफ, सिने अभिनेत्रियाँ, रोमांचकारी प्रेम, मोटर साइकिल, गुप्त मधपान, फुटबाल, टेनिस, वालीबाल, नृत्य, डेटिंग व पाप संगीत, प्रीतिभोज, क्लब, गुटबन्दी आदि शामिल है ।"[42] परन्तु ये सब बातें भारत की युवा उपसंस्कृति में नहीं आ सकतीं । यही कथन अन्य देशों के लिए लागू होता है । भारतीय युवा संस्कृति में मैत्री, गुटबन्दी होटलों में चाय और काफी की चुस्कियां, चलचित्र देखना सिनेअभिनेत्रियों के सपने संजोना, उनके नाम पते याद रखना, यौन विषयक पत्रिकाओं में अभिरूचि, सिनेमा की लोकप्रिय धुनें, युवतियों को घूरना, छेड़ना, गुप्त मधपान, असहिष्णु व्यवहार, साइकिल, मोटर साइकिल चलाना व रेडियो सुनना, अश्लील आचरण आदि प्रमुख हो गया है । बढ़ते समाज व देश के आधोगिकरण की क्रिया-प्रतिक्रिया में भारतीय युवा-वर्ग की उपसंस्कृति में ऐसी वृद्धि व बदलाव भी सम्भव है जिसके बारे में कुछ कहना अप्रासंगिक होगा ।

यों तो वर्ग भेद के साथ युवा मानसिकता में भी अलगाव पाया जाता है, लेकिन स्वभाव के अनुसार युवक दो प्रकार के होते हैं। प्रथम वे जिसमें युवा गुण सबल होते हैं तथा दूसरे वे जिसमें युवा गुण दुर्बल होते हैं। इस बुनियादी अन्तर के कारण दोनों प्रकार के युवकों में काफी अन्तर आ जाता है। उदाहरण के लिए प्रथम प्रकार के युवक प्रौढावस्था में शक्तिशाली दृढ, कठोर, दम्भी, कार्यारम्भव, नेतृत्व में सक्षम होंगे, आदर्श, मान्यता परम्परा तथा विधि-विधान के बन्धन उन्हें कष्टकर प्रतीत होंगे उनके व्यवहार का स्रोत लाभ-हानि नहीं वरन् मान-अपमान होता है। इसके विपरित दूसरे प्रकार के युवक भयातुर, कायर, मृदुभाषी समायोजनशील नियमों के अनुकूल आचरण करनेवाले होंगे और उनकी जीवन दृष्टि उपयोगितावादी होगी।

इस प्रकार मानसिक व शारीरिक क्रियाकलापों के आधार पर युवक के भावी जीवन का व्यवहारिक प्रारूप निर्भर होता है। कारण एक ही परिस्थिति में कुछ प्रबल शान्त और सन्तुलित रहते हैं तो कुछ समाज के सामने अपने उबलते युवा-मानव का अनावरण करते हैं। एक ओर वह युवाकालीन संस्कृति की विशेषताएं और दूसरी ओर विकासात्मक मनोविज्ञान की भाषा में "संक्रमण का चरण" समाज में युवा की स्थिति को विक्षिप्त बना देती है। विकासात्मक मनोविज्ञान "संक्रमण के चरण की विशेषताओं की पृष्ठभूमि में ही युवा के क्रिया-कलापों का मूल्यांकन करता है। इस अध्ययन में क्रिया-कलापों पर ही उसका ध्यान केन्द्रित होता है, न कि प्राप्त अनुभवों और अनुभूतियों पर।" विकासात्मक मनोविज्ञान के अनुसार संक्रमण की अवस्था विकास की अनेक अवस्थाओं में से एक है, जिससे पार पाने के लिए वह अपनी इक्कीसवीं वर्षगांठ की प्रतीक्षा अधीरतापूर्वक करता है। यही वर्षगांठ उसे प्रौढ़ जगत् में प्रवेश करने के लिए उसे पात्रता प्रदान करती है। वह अपने को समाज से समायोजित करते हुए उस समाज का सदस्य बनने का प्रयत्न करता है।"[43] उपयुक्त कथन को यदि सत्य माना जाये तो यह होगा कि युवा-मानस का संक्रमण काल एक बाढ़ सदृश्य है जो आती और कुछ समय बाद

वापस हो जाती है । अत: संक्रमण काल में यौवन की उद्वेलित लहरों पर नियंत्रण अनुचित ही होगा ।

उपसंस्कृति संबंधी मान्यता अपेक्षाकृत एक नवीन विचार धारा है, जिसे औद्योगीकरण की देन के रूप में स्वीकृति मिली है । यह अब धीरे-धीरे समय के साथ बढ़कर समस्या बनती जा रही है । युवा की दृष्टि में अग्रज और उनकी संस्थाएं पुरातन पन्थी है जो उसकी प्रगति में बाधक हैं । प्रश्न यह बनता है कि जब यह समाज और संस्कृति बाल्यावस्था और प्रौढावस्था के विकास में बाधक नहीं बनती तो युवावस्था में क्योंकर बाधक बन जाती है ? आखिर ऐसा क्यों होता है ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि युवा वस्था जो कि मानव जीवन का संक्रमण काल है, जिसमें शारीरिक परिवर्तन और मानसिक परिवर्तन दोनों होते हैं । ऐसे समय युवा को यथार्थ का ज्ञान नये सिरे से करना चाहिए । वह पहली बार विकसित मस्तिष्क की हैसियत से समाज, सभ्यता, संस्कृति तथा जीवन के परिचय में आता है । उसे यथार्थ और कल्पना, सम्भव-असम्भव, सत्य-असत्य, झूठ और आदर्श के बीच पड़ी खाई का सामना करना पड़ता है । वह समझ नहीं पाता आखिर ऐसा कैसे हो गया है । इन दोनों के बीच वह कौन-सा केन्द्रीय बिन्दु है जहां से यह दुराव उत्पन्न होकर फैला है । जहां तक हो वह इस दरार को पाटने के लिए संघर्ष करता है । उसमें मेल-बिठाने का यथासंभव प्रयत्न करता है । इस बीच वह जिस संस्कृति व सभ्यता का सृजन करता है वही युवा संस्कृति कहलाती है, जो कि सामाजिक संस्कृति का उपभाग होती है । कालान्तर में वह समझ जाता है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है । फिलहाल जो चीज जहां है वह वही रहेगी उसे पूरी तरह से एक समय में बदला नहीं जा सकता । उसके बदलाव, उसके परिवर्तन समय सापेक्ष है । यह सारी क्रिया-प्रतिक्रिया ठीक इसी तरह चलती है जैसे किसी का किसी से (आकस्मिक) अचानक नया परिचय होता है । इसी फलस्वरूप युवा और प्रौढ संस्कृति में भिन्नता पायी जाती है । इसके अतिरिक्त

औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप भी वर्तमान समाज के अप्रत्याशित तथा तीव्र परिवर्तनों ने भी युवा और प्रौढों की अनुभूति, चिन्तन क्रिया-कलाप और व्यवहार के अन्तरों को और भी बढा दिया है ।

प्राय: समान अवस्था के युवकों के आचार विचार में समानता होती है । उनकी यह समानता समूह या संगठन का रूप ले लेती है । ऐसे समूहों को कालेज, विश्वविद्यालय और दफ्तरों व कारखानों में देखा जा सकता है । यह बात दूसरी है कि इनमें थोड़ा-बहुत अन्तर भी मिलता है । मगर यह भी वयस्कों द्वारा निर्मित समूह का एक अंग होता है । युवा अपने समान उम्रवालों के समूह में रहना चाहता है\प्रौढों के समूह में नहीं उसे जितना अपने हम उम्र पर विश्वास होता है उतना अपने माता-पिता व प्रौढों पर नहीं । युवा की यह मन:स्थिति और समाज का उसके प्रति परम्परागत दृष्टिकोण युवा की स्थिति को और भी विचित्र बना देते हैं । युवा की इसी विचित्र स्थिति ने उसके आचरण और व्यवहार में ऐसी विशेषताएं उत्पन्न कर देती हैं जो न शिशुओं में होती है और न ही वयस्कों में । दूसरे अर्थों में "युवा-संस्कृति का प्रादुर्भाव प्रौढों और बुर्जुगों में प्रचलित परम्पराओं और मान्यताओं के विरोध में विद्रोही युवकों के वैचारिक समर्थन से होता है ।"[44]

युवा संस्कृति केवल उन्हीं युवकों में परिलक्षित होती है जिनके आदर्शमूलक आचरण में तारूण्य हो अर्थात् जिनके व्यवहार में उत्साह, उल्लास, उमंग साहसिक क्रियाशीलता मस्ती, ~~मन~~ मनमानापन और ओज हो । युवा संस्कृति का आधार प्राय: आयु ही नहीं जीवन शैली से भी है । समग्रत: युवा आचरण के विशिष्ट प्रतीकों का नया नाम युवा-संस्कृति है ।

युवा संस्कृति के प्रभाव के अंतर्गत जीने की उन सभी विशेषताओं का नये रूप में उदयन हुआ, जो सामान्यत: प्रौढ समाज के व्यक्ति का होता है । उसका आदर्श, उसकी कल्पना, उठना-बैठना, बोलना-चलना, अभिवादन, सत्कार, हंसना, रोना, उसका मनोरंजन, रूझान यहां तक कि पहनावा का भी अपना वैशिष्ट है । उसकी यह वैशिष्टता वर्ग भेद के साथ

बदलती भी है । आज का युवक हर चीज में, हर ढंग से व्याप्त चुस्तता को अपनी पसन्द में प्रमुखता देता है । धीमी गति व धीमा विकास उसे सहन नहीं होता । उसको पसन्द तेज़ जीवन (Fast life) जीना है । वह घन्टों की अनुभूति को क्षणों में भोगना चाहता है । वह भोग व सुख को ही लक्ष्य बनाकर कर्म निर्धारण करता है । हर ऐसी चीज़ व विचार का निषेध करता है, जो उसकी उपयोगिता की पूर्ति नहीं करती । उसके पास किसी का इतिहास व भविष्य जानने का न तो समय है और न ही वह उसकी उपयोगिता समझता है । यही वजह है कि -- "वह ऐसा संगीत सुनना, ऐसा नृत्य देखना चाहता है जिसमें वह तुरन्त शामिल हो जाये व मानसिक परितोष (fulfillment) तुरन्त मिल सके । भेष-भूषा ऐसी हो जो पहनने में आरामदेह व दिखने में सुंदर लगे ।"[45] यहां तक कि वह खाने व बोलने में भी इसी फार्मूले को अपनाता है -- "कम शब्दों में अधिक से अधिक बात को गंभीर व तीव्र रूप में कहने के लिए कूट (Code) भाषा अपनाता है । वह परम्परा व पीढ़ियों से चली आ रही भाषा को नकार कर अपने लिए भाषा का सृजन नये शब्दों का गठन कर एक नयी युवा भाषा का भी निर्माण करता है । इनके तीखे व्यंग्य अपने उन साथियों को भी नहीं बख्शते जो वर्ग भेद के कारण मानसिकता में अन्तर रखते हैं ।"[46] ये उन्हें मरियल, जनाना, देशी गधा आदि शब्दों से सम्बोधित करते हैं ।

"अमेरिका में हुडी या हूडस शब्द का प्रयोग उच्च मध्यम वर्ग से आये उन अल्हड युवकों के लिए होता है जो विद्यालयीन क्रिया-कलाप, व्यक्तिगत वेश-भूषा, साज-सज्जा और नैतिकता को परवाह नहीं करते ।"[47] युवा संस्कृति में प्रचलित दूसरे शब्द सोसी (Socie) ट्विन्की (Twinky) क्यूट (cute) "कूल" तथा "मेलो" (Cool and Mellow) आदि हैं ।

इस प्रकार एशिया और यूरोप के अनेक देशों के युवकों ने व्यंग्य में अनेक शब्दों को पुराने अर्थों से भिन्न अर्थ में प्रयोग किया है । कोई भी देश

इसका अपवाद नहीं रहा है -- "उत्तरी भारत के विश्वविद्यालयों के युवा-वर्ग ने अपनी एक अनोखी शब्दावली विकसित कर ली है । अपने उन सभी साथियों के लिए जो आन्दोलन, प्रदर्शन में पीछे रहते हैं प्रशासन के विरोध में नहीं आते, अपने अध्यापकों को श्रद्धा और सम्मान देते हैं, ये उग्र युवा "चमम्चा", "तेलू", "चट्टू" और "गद्दार" कहते हैं । हाय-हाय तथा डाउन-डाउनको ये प्रशासन अधिकारियों के नैतिक पतन एवं दयनीय अवस्था की ओर संकेत करते हैं । आज अधिकारियों के लिए कुछ मनोवांछित न कर पाने की दशा में नपुंसक शब्द तथा प्रशासनिक स्थितियों के लिए असंतोष की स्थिति में रण्डी, छिनाल आदि असम्माननीय शब्दों का बराबर व्यवहार में इस्तेमाल हो रहा है ।"[48] ये शब्द प्रयोग युवकों की परिवर्तित मनःस्थिति के द्योतक हैं जिससे युवा संस्कृति का स्वरूप प्रकट होता है ।

फैशन के नाम पर कुछ भी ऊटपटांग पहनना नवीनता के लिए टुच्ची हरकतें करना, अपने आपको आधुनिक बताने के लिए कुछ भी कर गुज़रना, शराब पीना, बेहुदे तरीके से नृत्य करना, छोटे बड़ों का ख्याल न रखना, अपनी आर्थिक स्थिति को न समझना, उत्तेजक सिनेमा देखना, नाइट क्लब जाना, खेलों में सफलता के लिए बेइमानी करना, उत्साह और अहं के नाम पर विधि-विधान को तोड़ना, सरे बाज़ार नाटकीय प्रेम का प्रदर्शन करना । गन्दे व भौंडे चित्रों का संकलन करना आदि इनकी सभ्यता एवं संस्कृति का अंग बनता जा रहा है । यहां तक कि संबंधों व मर्यादा को व्यापारिक बनाकर अपनी सुख-सुविधा के साधन जुटाना भी इसी संस्कृति की विशेषता बनी हुई है ।

4. युवा पीढ़ी :

एक निश्चित कालावधि में रहनेवाले, एक निश्चित आयु सीमा के अन्तर्गत आनेवाले लोगों को एक पीढ़ी की संज्ञा दी जाती है । नालन्दा

विशाल हिन्दी शब्द सागर में पीढ़ी की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि "वंश परम्परा में किसी के बाप, दादे, परदादे आदि या बेटे, पोते और परपोते आदि के विचार से गणना क्रम में कोई स्थान, या किसी विशेष समय में होनेवाले व्यक्तियों की समष्टि (जेनरेशन) या किसी विशेष व्यक्ति या प्राणी सन्तति समुदाय।"[49] श्री रामचन्द्र वर्मा के मानक हिन्दी कोष में पीढी की परिभाषा इस तरह से की गयी है। "किसी जाति, देश या समाज के वे सब लोग जो किसी विशिष्ट काल में प्राय: कुछ आगे पीछे जन्म लेकर साथ ही साथ रहते हों या किसी विशिष्ट समय व सारा जन-समुदाय जिनकी अवस्था या वय में अधिक छोटाई, बढ़ाई न हो, एक पीढी के अन्तर्गत आते हैं।"[50] "औसतन एक पीढ़ी का समय तीस साल तक का होता है। नयी और पुरानी दोनों पीढियां समाज के अंग हैं। हर तीस साल के बाद एक नयी पीढ़ी आती है, जिसे युवा पीढ़ी का नाम दिया गया है। पुरानी पीढ़ी इस नयी पीढ़ी से कुछ इस तरह की आशायें रखती है कि ये नयी पीढ़ी उसके स्वीकारे हुए रास्ते को, विचार को अपनाकर जीवन का रास्ता तय करें।"[51] इस ऊहा-पोह के कारण इन दोनों पीढ़ियों में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण हर नयी पीढ़ी- पुरानी पीढ़ी का विरोध करती है और यही युवा पीढ़ी का चारित्रिक वैशिष्ट है। विरोध का कारण प्राय: परिवर्तन होता है। युवा पीढी की सामाजिक चेतना बहुत तीव्र गति के परिवर्तनों से जुड़े होते हुए भी अपने उपयुक्त नये सामाजिक मापदण्डों को तैयार करती है।"[52] इस परिवर्तन की आवश्यकता आज इसलिए भी बढती जा रही है कि युवा पीढ़ी अपने पूर्व पीढ़ी से अलग वातावरण व समय में साँस लेना सीखती है। उसका रोना, चिल्लाना, बोलना, उठना-बैठना आदि शारीरिक क्रिया व मानसिक क्रिया में एक नयी शैली होती है जो पुरानी पीढी से भिन्न होती है।

पीढ़ी मानसिक स्तर भेद का प्रतीक है । समाज के विकास क्रम में जो कालान्तर में मानसिक स्तर भेद पैदा होता है उसे पीढ़ी भेद के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त वर्ग सामाजिक स्तर का सूचक है, जो सामाजिक स्थितिगत स्तर-भेद को दर्शाता है ।

आज आधुनिक युवा पीढ़ी मानसिक स्तर-भेद की शिकार तो है ही सामाजिक स्तर-भेद की भी शिकार है । आज युवकों की स्थिति एक स्वतन्त्र पीढ़ी के रूप में नहीं अपितु एक स्वतन्त्र सामाजिक वर्ग के रूप में उभर रही है, जिसके परिणामस्वरूप उसके विचार, दृष्टि व आस्था को आधारहीन ठहरा दिया जाता है, इसलिए समाज के अन्य कमज़ोर वर्गों की भाँति इस विहीन, स्वतन्त्र सत्ताहीन युवा वर्ग का भी स्वार्थी सत्तावान, शक्तिशाली वर्गों द्वारा शोषण होता है । वह आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक शोषण का यन्त्र बना दिया जाता है । इसलिए युवा पीढ़ी और युवा वर्ग आधुनिक युवक के लिए दो अलग-अलग अर्थ रखते हैं ।

आधुनिक काल में हम जिस पीढ़ीभेद की चर्चा करते हैं, वह मानसिक स्तर भेद का ही सूचक नहीं है अपितु मानसिक प्रकृति व मानसिक संरचनागत भेद का ही सूचक है । अर्थात् वह दो पीढ़ियों के बीच जीवनबोध, मूल्यचेतना, आस्था व अस्तित्वबोध का अन्तर है । जीवन-बोध, मूल्य चेतना व अस्तित्व इन तीन आधारों पर पीढ़ी भेद उभरता है । आधुनिक समाज में मानसिक प्रकृति के स्तर पर पीढ़ी बड़े प्रखर रूप में उभर रही है ।

वस्तुत: युवा पीढ़ी का आधुनिक रूप औद्योगिक क्रान्ति की देन है । जिसका प्रादुर्भाव उसके स्वतन्त्र अस्तित्व व उसकी पृथक इकाई के लिए है । उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी में युवा पीढ़ी ने समाज में अपना एक निश्चित स्थान बनाने के प्रयत्न में पुरानी पीढ़ी के विरोध में

आन्दोलन शुरू कर दिया । इसका जन्म एकाएक नहीं हुआ बल्कि 1762 में फ्रेंच दार्शनिक रूसो ने पहली बार "युवा आदमी" की चर्चा की थी । प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में युवक की ऐसी स्वतंत्र स्थिति नहीं थी, जो औद्योगिकरण के बाद सामाजिक ढांचों में परिवर्तन आने लगा । पूंजीपति और श्रमिक वर्ग के मध्य, मध्य वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ । सामाजिक नियमों में परिवर्तन आये जीवन मूल्यों में बदलते मानवीय सम्बन्धों के अर्थ का प्रश्न विभाजन व सीमा रेखा को दर्शाने लगा । साथ ही श्रमिक व पूंजीपति को जोड़नेवाला यह मध्यवर्ग धीरे-धीरे अपना अस्तित्व जमाने लगा । ऐसी परिस्थितियों में समाज में कुछ अलग समस्यायें पैदा कर दी, जिसका संबंध एक नये वर्ग से (उम्र स्तर) जुड़ा और यह वर्ग है युवा वर्ग । युवा वर्ग वह वर्ग है जो न तो बच्चा है और न ही प्रौढ़ । उसकी समस्याएं, उसकी मान्यताएं, उसकी आशाएं नितान्त उसकी है । ये युवक अधिकांशत: आर्थिक रूप से पराधीन होते हैं । अपने पितृ वर्ग पर आधारित होते हुए भी उनकी परम्परा उनकी सनातन मान्यताओं एवं संस्कृति व संस्कारों का विरोध करते हैं । इनके पास नया कुछ करने की शक्ति होने के बावजूद साधन की कमी है । इस वर्ग का सारा संघर्ष अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए होता है । विद्रोही प्रवृत्ति के कारण ही समाज में अल्प संख्या में होते हुए युवा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

5. युवा आन्दोलन :

"युवा आन्दोलन बीसवीं शताब्दी का एक सामाजिक घटना चक्र है, जिसका आरंभ फ्रांसीसी क्रांसी क्रान्ति से हुआ ।"[53] डा० सागर अहलूवालिया के अनुसार युवा आन्दोलन विश्व युद्ध में युवा पीढ़ी के भाग लेने से प्रारंभ हुआ । जिसको यूरोप में फासिस्ट और कम्यूनिस्ट सरकारों से प्रोत्साहन व मार्गदर्शन प्राप्त हुआ ।"[54] प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषीका

से प्रभावित देशों में राजनैतिक अस्थिरता बढ़ी जिसके कारण युवा आन्दोलन पूर्ण रूप से सक्रिय हो उठा । उसका स्वर व उसकी मांग व्यक्तिगत धरातल से उठकर अनेक राजनीतिक दलों से सम्बद्ध हो गया । जिसका उपयोग नेता वर्ग ने बड़े ही स्वार्थ एवं निर्दयतापूर्वक किया है ।

युवा आन्दोलन युवा पीढ़ी का पुरानी या बुर्जुग पीढ़ी के प्रति विद्रोह का सूचक है । वह विद्रोह के द्वारा अपनी भावनाओं, मूल्यों जीवन दृष्टि (Way of life) व स्तर (Standard) को व्यक्त करती रही है । सभी युवा आन्दोलन की केन्द्रीय समस्या राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक तथा नैतिक व्यवस्था के प्रति असंतुष्टि है ।"[55] वह इस बनी बनायी व्यवस्था में परिवर्तन चाहती है । इस आन्दोलन की शर्त समाज व देश को अपनी आकांक्षाओं व अपने लिए अपने अनुसार एक नया मोड़ देकर नये रास्ते पर ले जाना है । वह परम्परा से चले आ रहे अनुपयोगी व भ्रष्ट कारणों को त्याग कर नयी अन्वेषित व्यवस्था में ढालने का प्रयत्न करती है । "यह आन्दोलन सिर्फ व्यवस्था से ही संबंधित नहीं होता बल्कि इसका प्रयत्न मानसिकता को बदलकर नये मूल्यों का सृजन करना भी रहा है ।"[56] इस भावना से प्रेरित प्राय: सभी देशों में समय-समय पर युवा आन्दोलन होते रहे हैं ।

5.1 जर्मनी युवा आन्दोलन :

जर्मनी में उन्नीसवीं शताब्दी में रूसों तथा उनके अनुयायी एलेनकी की शिशु स्वातन्त्र्य-संबंधी विचारधारा तक नीत्शे की आदर्शवादी अभिव्यक्तियों से प्रबुद्ध जर्मन युवक अत्यधिक प्रभावित हुए । उन्होंने जीवन के भौतिक पक्ष की अवहेलना कर तत्कालीन नैतिक एवं सामाजिक मानदण्डों तथा पुरानी पीढ़ी की राष्ट्रीय उपयोगितावादी नीति का विरोध किया । "सोशलिस्टयूथ इण्टरनेशनल" की एक बैठक सन् 1907 में स्टटगार्ट

में हुई जिसमें जर्मन भाषा-भाषी देशों के लगभग 50,000 युवकों ने भाग लिया ।"[57] युवा वर्ग की इस सक्रियता को देखते हुए । हिटलर ने जर्मनी के युवा-छात्रों को नाजीवाद के पोषण के लिए मुख्य साधन बनाया और अपना कार्यक्रम तेज़ किया जिसका परिणाम हिटलर की मौत और जर्मनी का विभाजन हुआ जो युवामानस को कुछ करने के सिवाय कुछ सोचने का भी मौका दिया । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विजेता राज्यों में जर्मनी को दो हिस्सों में विभाजित कर युवा आन्दोलन को कुछ समय के लिए समाप्त कर दिया । कुछ दिनों बाद सन् 1946 में पश्चिमी जर्मनी में "सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी" के संरक्षण में "एस॰ डी॰ एस॰"[58] का गठन हुआ । जिसमें युवा छात्रों की कोशिश विभक्त जर्मनी को एक करने की रही । लेकिन यह आन्दोलन शक्ति प्रदर्शन के अभाव में व्यग्र और निराश हो गया । सन् 1964 के "बर्कले-विद्रोह"[60] से जर्मनी के युवा छात्रों को प्रेरणा मिली और वियतनाम में हो रहे युद्ध के विरूद्ध बर्लिन में पहला आन्दोलन हुआ जिसे आशातीत सफलता तो नहीं मिली लेकिन उसका प्रभाव दूरगामी रहा ।

अप्रैल - मई 68 में पश्चिमी जर्मनी के छात्रों ने शिक्षण संस्थाओं में बढ़ती हुई नौकरशाही, स्वतन्त्रता में उत्तरोत्तर कमी एवं सत्तावादी शिक्षा व्यवस्था का विरोध किया । जिसका उद्देश्य विश्वविद्यालय शिक्षा में जनतांत्रीकरण एवं शैक्षिक प्रशासन में छात्रों का प्रतिनिधित्व था । इस आन्दोलन के सफल होते ही युवा छात्रों को यह भान हुआ कि जनतन्त्रीय शिक्षा केवल जनतंत्रीय समाज में ही संभव है तो उनके आन्दोलन का रूप राजनैतिक हो गया । फलस्वरूप युवा छात्र संयुक्त सरकार का विरोध करने लगे । सन् 1968 में अनेक और विश्वविद्यालयों के छात्रों ने भी जन प्रदर्शन शुरू कर दिये जिसमें तोड़-फोड़ हिंसा सभी कुछ शामिल था । ये प्रदर्शन विश्वविद्यालय की शैक्षिक नीतियों एवं निर्णयों के निर्धारण में छात्रों की साझेदारी की माँग कर रहे थे ।

जर्मन युवा-छात्रों को रोष विप्लव, आन्दोलन केवल शैक्षिक मसलों तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि दिनों दिन इसका संबंध विश्वव्यापी समस्याओं से जुड़ता गया । समाजवादी जर्मन छात्र के नेतृत्व में जर्मन छात्रों ने ईरान के शाह के जर्मनी आगमन तथा कथित आपात्कालीन नियम तथा वियतनाम युद्ध का विरोध किया ।

यों तो जर्मन युवा-आन्दोलन के अनेक सामाजिक व राजनैतिक कारण रहे हैं । इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक एकीकरण भी प्रमुख कारण रहा । पश्चिमी यूरोप के देशों की तरह जर्मनी में सांस्कृतिक एकीकरण नहीं हो पाया था । दर्शन व संगीत से प्रभावित होकर धर्म युद्धों के कारण समेक्यता नहीं थी । सामंतो और सैनिकशासन के कारण राष्ट्र में अस्थिरता व हलचल पैदा हो गयी । सभी वर्गों के लोग एक उन्नत संस्कृति के आकांक्षी हो उठे तथा उच्च वर्ग के लोग भौतिक विलासिता से ऊबकर पुरानी संस्कृति को दुहराने की प्रक्रिया से जुड़ने लगे । इसके साथ ही विश्व-विद्यालयों में बढ़ते शैक्षिक आन्दोलन तथा इससे उत्पन्न बेकारी की समस्या, शिक्षारत छात्रों को भविष्य के प्रति सशंकित करने लगी और वे निराश एवं कुण्ठित होकर तोड़-फोड़ और उग्र हिंसावादी आन्दोलनों में प्रवृत्त होने लगे । आज भविष्य की चिन्ता, समाज में व्याप्त अकेलापन तथा युद्ध व हथियारों की होड़ से व्याकुल व चिन्तित युवा अपना आक्रोश हिंसात्मक कार्यों के माध्यम में प्रदर्शित कर रहा है ।

5.2. फ्रांसी युवा आन्दोलन :

फ्रांस में नेपोलियन ने सन् 1800 में शिक्षा व्यवस्था का पुनर्संगठन किया, जिसकी विशेषता प्रशासनिक ढांचे का केन्द्रीयकरण था । इस केन्द्रीकरण का प्रयोजन राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना एवं पूरे देश के शिक्षा स्तर तथा उसकी विशिष्टता में एकरूपता लाना था । नेपोलियन शिक्षा और राज्य व्यवस्था में बार-बार परिवर्तन का विरोधी था । फलस्वरूप

फ्रांस की राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था और उसके प्रशासनिक ढांचे में कालान्तर में परिवर्तन आये । दो विश्वयुद्धों से परिवर्तित राजनैतिक स्थितियों, योरोप का वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक विकास, जनांककीय वृद्धि एवं राजनैतिक सुधारों से फ्रान्सीसी समाज में तेज़ी से परिवर्तन हुआ जिसमें शिक्षा का भी प्रसार हुआ । विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ी । यूरोप के दूसरे देशों के समान फ्रांस में भी अनेक संगठन बने । जैसे --

1. फ्रेंच छात्र राष्ट्रीय संघ[61]
2. राष्ट्रीय चिकित्सा छात्र परिषद् [62]
3. राष्ट्रीय छात्र-परिषद [63]
4. विश्वविद्यालय निर्देशक संघ [64]

यों तो फ्रांसी युवा वर्ग में असंतोष एवं क्षोभ बहुत पहले से ही उत्तरोत्तर बढ़ रहा था लेकिन मार्च-अप्रैल और मई सन् 1968 फ्रान्सीसी युवा आन्दोलन का महत्वपूर्ण समय है । किन्तु उसके उग्र रूप का प्रदर्शन पेरिस विश्वविद्यालय के छात्रों ने उस समय किया जब "नेशनल वियतनाम कमेटी" के कुछ वक्ताओं को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया । परिणामत: आग भड़की और छात्र आन्दोलन शुरू हो गया । इसका नेतृत्व कौनें बेनडिव कर रहा था । आन्दोलन का कारण, छात्रों को राजनैतिक फिल्में न दिखाना था, जिसमें हजारों को चोटे आयी तथा अनेक हिंसात्मक कार्य किये गये । पुलिस और छात्रों के संघर्ष में पुलिस ने दमन हेतु आंसू गैस, बम एवं ग्रेनेड का प्रयोग किया । पूरे फ्रांस में एक सामान्य हड़ताल हुई । पेरिस नगर में एक बहुत बड़ा प्रदर्शन हुआ । जिससे पूरा फ्रांस हिल उठा । डेनियल कानें बेनडिव के निर्वासन की बात को लेकर युवा छात्र तथा मजदूर वर्ग ने मिलकर नेशनल असेंबली (विधान सभा) के आगे नारे लगाये । जिसके परिणाम में तत्कालीन शिक्षा मंत्री को अपने पद से त्याग पत्र देना पड़ा ।

फ्रांस में तकनीकी प्रगति और शिक्षा प्रसार के साथ ही साथ युवकों में बेरोजगारी बढ़ी । "फाइनेन्शियल टाइम" के अनुसार मई, 1968 में फ्रांस के बेरोजगार युवा में 23% विद्यालयीन शिक्षा प्राप्त युवा थे । उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है ।"[65] अतः युवकों में नैराश्य का उत्पन्न होना स्वाभाविक था । इतना ही नहीं तकनीकी विकास व समय परिवर्तन ने फ्रांसीसी जीवन को यान्त्रिक जीवन में बदल दिया है । इस यान्त्रिक जीवन में माता-पिता के सम्पर्क, स्नेह और सहानुभूति के अभाव में युवा में भावात्मक गुण उत्पन्न नहीं हो सके । यही कारण है कि फ्रान्स के युवा छात्र अन्य देशों के युवकों के समान मनो वैज्ञानिक असन्तुलन का उत्पन्न होना स्वाभाविक है ।

5.3 रूसी युवा आन्दोलन :

इसी प्रकार का एक और आन्दोलन रूस में 1860 में हुआ था । इस आन्दोलन में प्रवर्तन थे पिसरे । इस आन्दोलन में मुख्य रूप से युवा तथा बुद्धिजीवी वर्ग शामिल था । उन्होंने अपने पिता तथा पीढ़ी की भावुकता और कलात्मकता के प्रति विद्रोह किया । लेकिन संगठित शक्ति और आन्दोलनों की सही भूमिका नहीं बना सकने के कारण यह आन्दोलन विफल हो गया और इसी की अगली कड़ी के रूप में सोवियत संघ में सन् 1918 में "काम्सोमोल" नामक संस्था का संगठन हुआ । जो संसार का सबसे बड़ा युवा संगठन है । इसका संगठन बोलशेविक क्रान्ति को सफल बनाने के उद्देश्य से किया गया था । आज भी इसके दो करोड़ युवा सदस्य हैं ।

द्वितीय विश्वयुद्ध, पूर्व एवं युद्धोत्तर सोवियत युवा की मनःस्थिति और अभिवृत्ति में अन्तर होना स्वाभाविक था क्योंकि युद्धोत्तर-कालीन युवा युद्ध के विध्वंसकारी वातावरण में पोषित है और स्टालिन

द्वारा नये समाज की रचना के परिवेश में दीक्षित है तथा उसने ख्रुश्चेव के शान्ति एवं सह-अस्तित्व के काल में शिक्षा प्राप्त की है । इस बदलती हुई मनोवृत्ति के बावजूद सोवियत संघ के युवक को ग्रेजुएट होने के लिए इस संगठन (कामसोमोल) से निर्धारित कार्य के पूर्ण समापना का प्रमाण-पत्र लेना पड़ता है । यह कार्यक्रम पाठेत्तर होता है । इसके अतिरिक्त यह संगठन अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन के प्रचार का एक सुंदर माध्यम बनके भी है । यद्यपि कामसोमोल संगठन की ओर से वर्ल्ड यूथ फेस्टिवल भी विश्व के विभिन्न शहरों में चलाया जाता है । जिसके आयोजक साम्यवादी युवक ही होते हैं । इसके आयोजन के स्वरूप तथा समय-समय पर बदलते हुए कार्यक्रम से साम्यवादी रूस की अंतर्राष्ट्रीय नीति की झलक मिलती है । यद्यपि इस फेस्टिवल की सांस्कृतिक और बौद्धिक पृष्ठभूमि स्वस्थ और सुंदर है परन्तु इसका उपयोग साम्यवाद के हित में किया जाता है । यही कारण है कि साम्यवादी पर्यावरण तथा कामसोमोल द्वारा नियोजित युवा-कार्यक्रम के अपरिवर्तित अनुदार वातावरण में साम्यवादी युवा-छात्र दुनिया की राजनीति एवं सामाजिक ढांचे में बदलती हुई स्थितियों तथा नये विचारों से आज प्रभावित होता प्रतीत होता है और वर्तमान पीढ़ी का युवा छात्र बाह्य नियंत्रण का विरोध कर रहा है उसके अन्त:करण में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की अभिलाषा है । यूं तो सोवियत युवा नियन्त्रित जीवन में पल रहा है किन्तु इस नियन्त्रण के कारण उसके मानस में अरुचि पैदा हो रही है । यह बात दूसरी है कि अभी उसकी मन:स्थिति सुषुप्त है किन्तु भविष्य में इसका स्पष्ट रूप कभी भी सामने आ सकता है ।

5.4. पूर्वी तथा दक्षिणी यूरोप और लाटिन अमेरिका :

इन देशों में जो आन्दोलन हुए वे राजनितिपरख होते हुए भी सामाजिक भ्रष्टाचार व परम्परा के विरोधी थे । राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए अनेक पहलुओं पर लड़ते हुए भी युवा छात्र विदेशी हस्तक्षेप को समर्थन नहीं देना चाहते थे । नेताओं के प्रति असंतुष्टी युवा आन्दोलन की तीव्रता प्रदान की ।

"युगोस्लाविया का सन् 1968 का छात्र आन्दोलन वहाँ की पच्चीस वर्षीय पुरानी साम्यवादी व्यवस्था के लिए चुनौती है । द्वितीय विश्व-युद्धोत्तर युवा पीढी अपनी वर्तमान परिस्थितियों से असंतुष्ट है । इस असंतोष के अनेक कारण हैं । आदर्शपूर्ण बड़े-बड़े वादे तथा समाज के व्यवस्था में अन्तर के कारण सामाजिक न्याय का न मिलना, बढ़ती हुई बेरोजगारी तथा दिनों दिन बढ़ती युद्ध की सम्भावना व उसकी भयानकता संबंधी समस्याओं ने युवा मानस को युद्ध और विद्रोह संबंधी समस्याओं ने युवा-मानस को क्षुब्ध और विद्रोही बना दिया है ।"[66] युवा-आन्दोलन की तीव्रता वहाँ के दैनन्दिनी क्रियाकलापों को प्रभावित करने लगी ।

इन आन्दोलनों की सामान्य विशेषता यह रही कि राजनीति में भाग लेने के अवसर कम होने के बावजूद उनका प्रभाव व्यापक रहा ।

उपनिवेशवादी शासन (colonialrule) के अन्तर्गत रहनेवाले देशों में जो भी युवा आन्दोलन हुए उसका उद्देश्य सामाजिक आर्थिक उन्नति था । ये आन्दोलन सामाजिक होते हुए भी राजनीति को पूर्ण रूप से प्रभावित करते रहे । समानता व स्वतंत्रता की बेचैनी इन युवा-आन्दोलन की मानसिकता थी । रूसी आन्दोलन का प्रभाव व्यापक होने लगा । जर्मनी के बाहरी देशों में इस आन्दोलनों का प्रभाव पड़ा । रूसी आन्दोलन पूर्ण रूप से युवा आन्दोलन न होने पर भी वह परम्परावाद, रूढ़िगत समाज

और स्थिर संस्कृति अधिराज्य शासन (आटोक्रेसी) और जमींदारी संबंधी आर्थिक व्यवस्था के विरोध में था । इस आन्दोलन ने न केवल रूस की युवा पीढ़ी बल्कि पूर्वी यूरोप के देशों के साथ जापान, चीन, वियतनाम के युवा आन्दोलनों को भी प्रभावित करके उन्हें तीव्रता प्रदान की ।

"सोशलिस्ट यूथ इण्टर नेशनल की एक बैठक सन् 1907 में स्टटगार्ट में हुई जिसमें जर्मन भाषा-भाषी देशों के लगभग 50,000 युवकों ने भाग लिया । सोशलिस्ट यूथ इण्टरनेशनल और इससे सम्बद्ध संगठनों के जर्मनी, फ्रान्स और आस्ट्रिया के वामपन्थी युवा-छात्रों ने प्रथम विश्वयुद्ध तथा इसके लिए आवश्यक सैनिकवादी प्रवृत्ति का विरोध किया ।"[67]

विश्वयुद्ध के पूर्व जो भी आन्दोलन हुए वे प्राय: असफल रहे । इन आन्दोलनों की असफलता के दो कारण माने जाते हैं । पहला ये आन्दोलन देश-विशेष के अन्तर्गत होने के कारण फ्यूडल (सामन्ती) व्यवस्था को नष्ट नहीं कर पाये और न ही व्यक्ति स्वतन्त्रता ही दिला पाने में समर्थ रहे । दूसरा कारण, अन्य आन्दोलनों की तरह रहे । दमन तथा अव्यवस्थितता, दिशाहीनता के कारण आन्दोलन को मजबूती नहीं प्रदान हुई । आन्दोलन का न तो कोई व्यापक सक्रिय आदर्श बन सका और न ही संगठन । आत्मकेन्द्रित दृष्टि और अनुभवहीनता आदि ने इस समय के आन्दोलनों को असफल कर दिया । दूसरे शब्दों में इस युवा मानस में विरोध तो था लेकिन शुरूआत करने के लिए कोई विशेष संकल्प, दृढ़ता तथा योजना नहीं थी । आन्दोलन को एक व्यापक रूप न दे पाने की वजह से आन्दोलनों को असफलता का मुंह देखना पड़ा ।

5.5 विश्व-युद्धोत्तर युवा आन्दोलन :

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संबंधित देशों में सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में एक जोरदार उथल-पुथल आ गया । यहां से एक ऐसा युग शुरू हुआ जिसमें हर देश में हर वर्ग के लोगों की नीयत राजनीति और अर्थ से जुड़ गयी । अमेरिका की जापान के प्रति की गयी कार्रवाई सारे संसार को एक अत्यधिक आधुनिक वैज्ञानिक दुनिया में पहुंचा दिया । व्यक्ति का अस्तित्व अचानक क्षीण क्षणिक हो उठा । अपने अस्तित्व का खतरा उसे अपने अधिकारों की तरफ प्रेरित करने लगा । इस भयंकर दुनिया के युवा वर्ग की मानसिकता एक नियोजित योजना के रूप में काम करने लगी । उसे अपने अस्तित्व व अधिकारों के लिए संघर्ष एक नये रूप में शुरू किया । ये युवा आन्दोलन वैयक्तिक स्तर से उठकर सम्पूर्णता के साथ सामाजिक कारणों से सम्बद्ध हो गये। ये राजनीतिक पार्टियों के लिए, देश के लिए तथा धर्म के लिए एक साधन बन गये ।समाज में इनका स्थान दृढ़तर होने लगा । राजनैतिक नेता द्वारा बुर्जग पीढी द्वारा इनकी मांगों को स्वीकार किया जाने लगा । राजनीतिक नेताओं द्वारा इनका प्रयोग राजनीति के एक शाखा के रूप में होने लगा । जिसे युवा शाखा (Youth wing) कहा गया ।

यूरोप के कई देशामें धर्म संबंधी और जाति संबंधी युवा-आन्दोलन अधिक होते रहे । फासिज्म और नेशनल सोशालिज्म का युवा वर्ग को समर्थन मिला था । जिनको हाथों में अधिकार आते ही उन्होंने युवा-वर्ग को लेकर सरकारे भी बनायीं । युद्ध के पूर्व होनेवाले युवा-आन्दोलनों की वैयक्तिकता के स्थान पर अब वैयक्तिकता के प्रति विरोध शुरू हो गया । अधिकार और अनुशासन का प्रश्न तेज़ी से उभरने लगा । ये नये आन्दोलन युद्ध के बाद उत्पन्न हुई परिस्थिति के परिणाम थे ।

मध्य वर्ग की आर्थिक असमानता और बिखराव, नैतिकता का पतन इन आन्दोलनों के कारण बने । इन्हीं कारणों से संबंधित एक और मूलभूत कारण था युवा वर्ग का आर्थिक स्वावलम्बन के आधार का न होना तथा राजनीति में अवसर न मिलना । बड़ों की निष्क्रियता और उपदेशवादी प्रवृत्तियों के विरोध में युवा आन्दोलन तीव्र हो गये । जर्मनी में होहर मिशन के नवयुवकों ने इसे आगे बढ़ाया । फ्रीडेंशूर जुगंताग नामक युवा संघ ने युद्ध के वाद स्वेच्छा और स्वतन्त्रता को प्रकट किया । वाल्टर होमर और नूड आल्वोन 1920 में फी मेमशेन नामक पत्रिका द्वारा युवकों में स्वतन्त्रता और मानवता के भाव जगाये थे । 1923 में यूगेन डोडरिशस को सलाह पर एक प्रकाशन निकाला जिसमें जर्मनी के युवा आन्दोलनों की चर्चा की जातीहै । अनेक युवा आन्दोलन मिलकर एक व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन के अंग बनते गये । रोमांटिक सोशलिज्म या टालस्टाय के अनार्किज्म, रिजोजियस और सेक्टेरियनिज्म आफ लिबर नेशनिलिज्म, इन सबने मिलकर जर्मनी में छोटे-छोटे युवा संघों की स्थापना की जिनका मुख्य उद्देश्य था राष्ट्रीय सामाजिक जीवन को पुर्नजीवित करना । यही प्रवृत्ति यहूदी युवा पीढ़ी में भी फैल गयी ।

युद्धोत्तर काल में अनेक देशों में नये शासक पुरानी व्यवस्था में नये परिवर्तन करने लगे, और इनके इस परिवर्तन में अनेक संघों के द्वारा समर्थन भी मिलने लगा । युवा पीढ़ी के इस योगदान के परिणामस्वरूप किशोर युवक भी युवा संघों से जुड़ने लगे, जिनका उद्देश्य स्कूल का विद्रोह तो नहीं बल्कि पुरानी पीढ़ी का विरोध था जो युवा पीढ़ी की दृष्टि को नहीं समझ सकी ।

कुछ देशों में युद्धकाल का उत्साह, त्याग जैसी राष्ट्रीय भावनाओं को प्रोत्साहित करने लगी । यह स्थिति वालकन देशों, लाटिन, अमेरिका, ओरिएंट और जाइनिस्ट मूमेंट की रही है । युद्ध के बाद के जर्मनी इटली

और सोवियत यूनियन के युवा आन्दोलन ने दूसरे देशों के फासिस्ट और कम्यूनिस्ट आन्दोलनों को प्रभावित किया जिसके कारण वे भी इसका अनुसरण करने लगे जिससे सैनिक शक्ति को बढ़ावा तथा वर्ण व मानवीय स्वेच्छावादिता का दमन होने लगा ।

इसी समय अमेरिका में स्वतन्त्र युवा आन्दोलन नये रूप से प्रारंभ हुआ । अन्तराष्ट्रीय जगत् में शक्ति वृद्धि की होड़ में आणविक परीक्षण तथा स्वचालित मिसाइल जैसे अन्य विध्वंसकारी सामरिक उपकरणों के विरोध में छात्रों ने अनेक प्रकार से अपना आक्रोश व्यक्त किया । "ओमाहा एक्शन प्रोजेक्ट" इसका ज्वलन्त उदाहरण है ।

दक्षिण अमेरिका के रंगभेद के मसले पर युवा छात्रों ने क्रांतिकारी कदम उठाया । हजारों युवा छात्रों ने प्रदर्शन किया । छात्रों ने सैन-फ्रान्सिसको से मास्को तक शक्ति यात्रा (Sanfrancisco to moscow Peace-March) अभियान में भाग लिया । सैनफ्रान्सिसको में छात्रों ने बिल आफ राइट्स और संविधान के उल्लंघन के विरोध में प्रदर्शन किया । यह एक प्रमुख परिवर्तन का युग है जहाँ युवा वर्ग हर मानवीय अत्याचारों के विरोध में आन्दोलन किये हैं । युवा पीढ़ी में पुरानी पीढ़ी के प्रति विरोध की भावना का उल्लेख रोडाल्फबानें ने अपनी पुस्तक "यूथ एंड लाइफ" में किया है । "द एज आफ दी डेमोक्रेटिक रिवोलोशन" में आर॰आर॰ पामर ने युवा पीढ़ी तथा पुरानी के बीच सांस्कृतिक तथा सामाजिक संघर्षों की चर्चा की है । साथ ही निम्न तथा उच्च कुलीन समाज के बीच युवा आदर्श को भी उल्लेखित किया है ।

सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट पार्टी युवा वर्ग को मान्यता देने लगी । अनेक युवा वर्ग जिनको समाज में उचित स्थान नहीं मिला था, जिनको सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक किसी प्रकार का आश्रय नहीं

मिला वे इन पार्टियों का आश्रय मांगने लगे । सोवियत में एशिया में युवा संगठन एक संस्था के रूप में चलने लगे । कहीं-कहीं पर युवा वर्ग को संघटित करनेवाली संस्थाओं का निर्माण भी हुआ और उससे संबंधित होना प्रतिष्ठा का सूचक बन गया ।

(क) यूरोप :

यूरोप के सभी देशों में युवा पीढ़ी विद्रोह करती रही । कभी-कभी यह विद्रोह शान्त रूप में हुआ तो कभी हिंसात्मक रूप धारण करता रहा है । अभी तक यही सोचा समझा जा रहा था कि युवा आन्दोलन विकासशील देशों का लक्षण है । औद्योगिक क्रान्ति जिन्दगी को मशीन स्थिर और अस्वाभाविक बना देती है जिसके परिणाम से युवा मानस अकेला कुंठित होता है और वह उन सब अप्राकृतिक व उससे उत्पन्न भयानक राजनीतिक वातावरण का विद्रोह करता है लेकिन 1964 में बर्कले में हुए युवा आन्दोलन ने यह स्पष्ट कर दिया कि पूर्ण विकसित देशों में भी युवा आक्रोश के पथ पर चल रहे हैं । अत्यधिक सम्पन्नता उनमें अशान्ति पैदा कर रही है ।

यूरोप के सभी देशों में युवा आन्दोलन हुए हैं । लन्दन, रोम, बर्लिन और स्टाकहोम आदि देशों की युवा पीढ़ी ने अर्थ-जर्जरित समाज से विद्रोह किया । इन विद्रोहों ने पुरानी शिक्षा पद्धति तथा जीवन पद्धति को चुनौती दी । साठोत्तरकालीन युवा आन्दोलन काफी व्यापक रहे हैं । अमेरिका से लेकर जर्मनी, इटली, फ्रान्स में छात्रों ने युवा-मज़दूरों को सी॰पी॰ और सी॰जी॰टी॰ के नेतृत्व में कारखानों पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया और वे काफी सफल भी रहे ।

जिन विषयों को लेकर यूरोप के अन्य देशों में आन्दोलन हुए वे आर्थिक या राजनीतिक क्षोभ नहीं बल्कि कुछ सामाजिक संस्थायें थीं । जैसे नशीली [illegible] का सेवन, विवाह पूर्व यौन संबंध छात्रावासों में समलैंगिक संबंध आदि । इन सामाजिक समस्याओं से उभरता युवा आन्दोलन, वियतनाम युद्ध का अन्ध समर्थन करनेवाली सरकार की गुलामी प्रवृत्ति का भी विरोध करने लगे । इस दिशा में रैडिकल स्टूडेंट्स मूमेंट्स में तीव्रता आने लगी । राजनीति में भाग लेने के साथ ही ये मूमेंट्स शिक्षा पद्धति में परिवर्तन का आग्रही बन गये ।

ब्रिटेन की युवा-पीढ़ी, इसके विद्रोह की प्रक्रिया और व्यापकता, पश्चिम यूरोप की युवा पीढ़ी, विशेष रूप से फ्रान्स और जर्मनी की युवा पीढ़ी से मिलती-जुलती है । विविध प्रकार के राष्ट्रीय छात्र संघ आपस में सम्पर्क अनुभव व दृष्टियों का आदान-प्रदान कर सामान्य मुद्दों पर संघर्ष के लिए अन्तर्राष्ट्रीय साम्यता धारण कर लेते हैं । वियतनाम युद्ध के विरोध में अमेरिका के छात्रों ने ही नहीं बल्कि फ्रांस और बेल्जियम के छात्रों ने भी 1968 के अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया था ।

पश्चिमी देशों के युवकों में अशान्ति पैदा होने के कुछ और भी कारण रहे हैं । औद्योगिक दृष्टि से अति समृद्ध देश जैसे जर्मनी इंग्लैंड और अमेरिका का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक उत्पादन कर लाभ कमाना रहा है । इस यांत्रिक जीवन से वहां की युवा पीढ़ी ऊब गयी, चिन्तनशील व सजग युवामानस मशीनों की गुलामी स्वीकार नहीं कर पाया । ऊब, दबाव व तनाव की परिस्थिति में उसको जीना मुश्किल लगने लगा । अत: स्वाभाविक था कि इस विषय को लेकर वहां के पीढ़ी मानस के बीच संघर्ष स्थिति पैदा हो गयी । यान्त्रिक और व्यापारिक दृष्टि रखनेवाली ~~बुजु~~ बुजुर्ग पीढ़ी और युवा व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता और ताजगी चाहनेवाले युवा मानस के बीच संघर्ष अनिवार्य हो गया, अत: यूरोप के युवक समय-समय पर भौतिक संस्कृति का विरोध कर बुजुर्ग पीढ़ी की मानसिकता को नकारते रहे ।

जर्मनी के युवकों ने सरकार की नीतियों के विरूद्ध, विशेष रूप से ईरान के शाह का समर्थन, आपातकालीन कानून और जर्मन सरकार की वियतनाम नीति के विरूद्ध "रैडिकल एस•जी•एस•ओ•" के नेतृत्व में राष्ट्रव्यापी आन्दोलन किया था, इसी के प्रभाव से 1965 में स्पेन में भी छात्र आन्दोलन उभरा, जिसमें छात्रों ने मजदूरों के आन्दोलनमें साथ दिया, विश्वविद्यालय में हुआ छात्र आन्दोलन, उस समय की स्थिति की ओर संकेत करते हुए सरकार की शासन पद्धति से क्रुद्ध स्पेनिश युवक सभी प्रकार के नियंत्रण का विरोध करने लगे ।

कैनडा में भी 1968 में "यंग ट्रेड यूनियन" का आन्दोलन चला था । वहां की युवा पीढ़ी का आन्दोलन मुख्य रूप से वियतनाम युद्ध के विरोध में था । कैनडा में "न्यू डोमोक्रेटिक यूथ" राडिकल यूथ की सबसे बड़ी संस्था है । 1963 से कैनडा युवा पीढ़ी विश्व के सबसे अधिक प्रति-क्रियावादी युवा पीढ़ी बन गयी । उसने आणविक शस्त्रों का विरोध किया और विश्वशान्ति को समर्थन दिया । समाजवाद व मार्क्सवाद से प्रभावित युवा पीढ़ी पूंजीपतियों के विरोध की भूमिका मजदूर वर्ग के साथ मिलकर तैयार करने लगी ।

1968 में रोम में विश्वविद्यालयों के छात्रों ने अपनी मांगों के लिए आन्दोलन करते हुए पुलिस से संघर्ष किया । जिसका नेतृत्व वाम-पंथी युवकों ने किया । यह आन्दोलन शिक्षा पद्धति में परिवर्तन के लिए था लेकिन इसके पीछे मूल कारण राजनीति ही रहा । इटली में शासक दल के नेतृत्व और युवा वर्ग के बीच नीति संबंधी मतभेद होने के कारण युवा वर्ग अपनी स्वतन्त्र सत्ता को जताने लगा ।

हंगरी के युवा आन्दोलन को वहां के बुद्धिजीवियों का समर्थन मिला, और वे राजनीति के अधिनायकवाद के विरूद्ध स्वच्छन्दता के लिए उठ खडे हुए । 1940 के बाद पैदा हुई इस पीढ़ी में समाज के प्रति अभिमान

या विश्वास का लोप हो गया था तथा विश्वविद्यालय के प्रशासन में सुधार का प्रश्न इनके लिए गौण बन गया ।

स्कैंडिनेविया को देशों में मतभेद के बावजूद विश्वविद्यालय की नीति निर्धारक समिति में छात्रों को प्रतिनिधित्व दिया गया । नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क और फिनलैंड में भी इस पद्धति को अपनाया गया । विद्यार्थियों को राजनीति राज या राष्ट्र से हटकर आपस के मामलों में घिर कर रह गयी ।

स्वीडन का छात्र संघ अपने देश में सांस्कृतिक परिवर्तन लाने के लिए परम्परा का विरोध करने लगा । फिनलैंड में "हेलसिनकी यूनियन ऑफ स्टूडेन्ट" नामक संघ किसी पार्टी से न बंधकर अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों और हितों को बढाने की कोशिश करता है । वह साहित्य कला तथा यौन संबंधी मामलों पर अपने स्वतन्त्र विचार रखता है । नार्वे का छात्र संघ बहुत संघर्षशील है । वह साहित्य, कला और सेक्स के साथ-साथ रूढ परम्पराओं का विरोध भी सक्रिय रूप से करता है । वियतनाम युद्ध के विरोध में उसकी तीव्र प्रक्रिया उसके मानस की विस्फोट था ।

यूरोप के प्रमुख देशों के इन संक्षिप्त युवा आन्दोलन को देखने से स्पष्ट होता है कि यूरोप की युवा पीढ़ी राजनीतिक रूप से बहुत अधिक सजग व जागरूक है । औद्योगिक विकास व भौतिक संस्कृति का विरोध करनेवाला यह युवा वर्ग चिन्तनशील और नवीनता का आग्रही है । बुजुर्ग पीढी व युवा पीढी का संघर्ष किसी एक निश्चित धरातल पर न होकर उन सभी क्षेत्रों में है जहां युवा मानस अप्राकृतिकता का अनुभव करता है । शिक्षा केन्द्रों से उगता हुआ आन्दोलन अपने आस-पास के सभी परिस्थितियों में फैलकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । वे आन्दोलन समय के साथ भागते इन्सानी नीयत को पकड़ने व उसे मानसिक स्तर पर

लाकर भावनाओं से जोड़कर विश्लेषित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। पीढ़ियों का संघर्ष इन्हीं भावना और भौतिकता के टकराव से शुरू हो जाता है। परन्तु अफसोस यह है कि सजग वह सक्रिय आग्रही युवा पार्टियों से कोई भी ऐसी पार्टी नहीं उभरी जो अपनी भावनाओं व नैतिकता को सही दिशानिर्देश कर अभिव्यक्ति दे सके। पुरानी पीढी की नीतियों से जूझता युवा नीतियों की सफलता और असफलता के बीच झूले सा झूलता रह गया। एक झटका देने के बाद परास्त होकर नयी पीढी पुरानी पीढी में परिवर्तित हो जाती है और आनेवाली नयी पीढी को एक नयी दिशा, एक नये मोर्चे के साथ संघर्षरत होना पड़ता है।

इन बदनीयतों के बावजूद युवा पीढी के इस संघर्ष को भुलाया नहीं जा सकता। उसके साहस व अस्तित्व को नकारने की ताकत अब पुरानी पीढी में घटती जा रही है। यह महसूस किया जाने लगा है कि यूरोप के देशों में जो भी जितने भी युवा आन्दोलन हुए उसका प्रभाव हर स्तर पर पड़ा। उनके द्वारा छेड़े गये आन्दोलन मात्र भावनात्मक नहीं बल्कि अप्राकृतिक भौतिकवादी अन्याय के प्रति प्राकृतिक भावनात्मक व न्याय व नवीनता के द्योतक हैं। विश्वशान्ति व मानव अस्तित्व की रक्षा उनके उद्देश्य रहे हैं।

(ख) अमेरिका :

यह एक समृद्धिशाली जनतान्त्रिक देश है। यहां के युवा-छात्र अन्य देशों के युवा छात्रों की तुलना में अधिक दिनों तक राजनैतिक प्रभावों से अलग रहे। लेकिन गत वर्षों में यहां पर भी अनेक युवा संगठन व युवा-विद्रोह हुए। "यंग मेन क्रिश्चियन एसोसियेशन" तथा "यंग वीमेन स्टूडेन्ट्स एसोसियशन", "यंग पीपुल सोशलिस्ट लीग", "स्टूडेन्ट्स पीस यूनियन", जैसे युवा संगठनों का कार्य-क्षेत्र समाजसेवा है। इस कार्य क्षेत्र में प्राय:

छात्र कल्याण, समाज एवं सामुदायिक सुधार, जातीय एकीकरण अवकाश का सदुपयोग एवं रोजगार सुलभ कराना रहा है । यहां के युवा संगठन वैसे ही बड़े हैं जैसे अमेरिका की शैक्षिक संस्थाएं यद्यपि इन संगठनों का जो रूप एवं क्रियाकलाप प्रभावशाली है, उनमें उन तत्वों का अभाव है जो उन्हें क्रान्तिकारी बना सकते हैं ।

सन् 1963 में वियतनाम युद्ध की भीषणता के साथ ही विद्यार्थियों की क्रियाशीलता में तेजी आयी । सफेद रंगवाले छात्रों को रंग-भेद दूर करने में असफलता मिली । इस असफलता के फलस्वरूप विद्यार्थियों में असंतोष व्याप्त हो गया । परिणाम यह हुआ कि सिर्फ छात्रों के प्रदर्शन की संख्या ही न बढ़ी वरन् उनके प्रदर्शन में उत्तरोत्तर उग्रता भी बढ़ती गयी । युवा छात्रों का विश्वास "रिपब्लिकन" व "डेमोक्रेटिक पार्टी", अमेरिका के शक्तिशाली राजनैतिक दल से उठ गया । उनकी दृष्टि में ये दल रूढ़िवादी एवं परम्परा के पोषक प्रतीत हुए ।

उन्होंने अपने संघर्ष के रूप को बदला और अब सीधी मुठभेड़ें Policy of confrontation की राजनीति करने लगे । सन् 1964 बर्कले छात्र विद्रोह, छात्र आन्दोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है क्योंकि इसका प्रभाव पाश्चात्य योरोपीय देशों के छात्र-आन्दोलन पर भी पड़ा । अमेरिका के वामपन्थी छात्रों में अधिक नैराश्य रहा जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक ढंग से की । वे छात्रों के लिए व्यक्ति स्वातन्त्र्य एवं शैक्षिक स्वतन्त्रता की मांग करने लगे । कुछ छात्रों ने पाठ्यक्रम को युग-चेतना की दृष्टि से पुराना तथा मस्तिष्क को घेरे में बांधनेवाला बतलाया और इसमें आमूल परिवर्तन की मांग करने लगे । "फ्रीडम राइट मूवमेण्ट" भी रंग-विभेद के फलस्वरूप शुरू हुआ । इस आन्दोलन के द्वारा युवा ने सार्वजनिक सुविधाओं में रंग-भेद नीति की समाप्ति पर बल दिया ।

समाप्ति पर बल दिया ।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में शक्ति-वृद्धि की होड़ में आणविक परीक्षण तथा स्वचालित मिसाइल जैसे अन्य विध्वंसकारी सामरिक उपकरणों के विरोध में छात्रों ने अनेक प्रकार से अपना आक्रोश व्यक्त किया । "ओमाहा एक्शन प्रोजेक्ट" इसका ज्वलंत उदाहरण है । युवा वर्ग द्वितीय विश्वयुद्ध की बर्बादियों से परिचित था । उसने वियतनाम युद्ध की भीषणता एवं विनाशकारी परिणामों से विक्षुब्ध एवं भावी युद्ध की बरबादी की कल्पना से भयभीत होकर लड़ाई बन्द करने एवं शान्ति स्थापित करने की मांग की । वाशिंगटन में पार्लियामेंट के सदस्यों को अपनी इस मांग से प्रभावित करने के लिए करीब आठ हज़ार छात्रों ने प्रदर्शन किया । इस संबंध में केण्ट के विश्वविद्यालय के तीन विद्यार्थियों को गोली मार दी गयी जो अमेरिका के इतिहास में अद्वितीय घटना है ।

अमेरिकी युवा का यह सोचना स्वाभाविक था कि वियतनाम युद्ध के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका नैतिक एवं राजनैतिक दृष्टि से संसार के चित से उतर गया है । अमेरिकी जनता दो हिस्सों में विभक्त हो गयी है - युद्ध समर्थक और शान्ति प्रिय । यद्यपि छात्र आन्दोलन में उधर मन्दी रही है फिर भी भविष्यवाणी करना इस विषय में संभव नहीं है । केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अमेरिकी युवा मुख्यत: वामपन्थी युवा-सीधी मुठभेड़ की नीतिवाला आन्दोलन विश्वविद्यालयीय क्षेत्रों से प्रारंभ होकर सामाजिक व्यवस्था और राजनैतिक प्रशासन से टकरा रहा है । कुछ स्थानों पर किशोरों ने यह नारा लगाया कि (If we are fit to fight and kill, we are fit to vate) "यदि हम लड़ने और मरने के लिए उपयुक्त हैं तो हम मतदान के लिए भी उपयुक्त है ।"

प्रत्येक दृष्टि से अमेरिका एक विकसित देश है । आर्थिक सम्पन्नता सुदृढ़ जनतंत्र और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य यहां की मुख्य विशेषताएं हैं । प्रश्न

यह उठता है कि ऐसे राष्ट्र के युवकों में नैराश्य, असंतोष और आक्रोश क्यों है । यों तो इसके उपर्युक्त कारण है लेकिन इसके अतिरिक्त -- "सुव्यवस्थित जनतन्त्रीय शासन व्यवस्था की स्वचालित प्रक्रिया में अमेरिकी युवा की जीवन-स्थितियों और उसके मनोभावों में तेजी से परिवर्तन हो रहा है किन्तु अमेरिकी समाज और उसकी संस्थाओं में परिवर्तन की गति मन्द है । फलत: यह परिवर्तन युवकों के मानसिक परिवर्तन के पीछे है।"[68]

हिप्पी युवक अमेरिका की वर्तमान मान्यताओं, नैतिक मूल्यों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का विरोध कर रहे हैं । कई अर्थों में इस विरोध में निरालापन है और मानव सभ्यता के इतिहास में इसका कोई समरूप उदाहरण नहीं मिलता ।

आज विकृत अमेरिकी युवाजन मातृभूमि तथा पैतृक सम्पत्ति को तिलांजलि देकर भारतवर्ष के धार्मिक नगरों और नेपाल की पहाड़ियों में फक्कड़-मस्त घूम रहे हैं । उनका रहन-सहन एवं वेश-भूषा से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके मन में अशान्ति है । वे शान्ति की प्राप्ति की ओर सहज प्राकृतिक जीवन की खोज में भटक रहे हैं । आज हम उन्हें कई नामों से सम्बोधित कर रहे हैं जैसे -- हिप्पी, इप्पी, बीटल आदि ।

(ग) <u>अफ्रीका :</u>

पिछले कुछ वर्षों से अफ्रीका के कई देशों में वहां की युवा पीढ़ी द्वारा हिंसात्मक, प्रतिक्रियाओं में अनुशासन भंग की अनेक घटनाएं हो रही हैं । इस विद्रोह का मूल कारण राजनीतिक नेताओं का पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण व व्यवहार है । अफ्रीका में अनेक युवा वर्ग जन-समुदाय के साथ संगठित होकर अफ्रीकी देशों की स्वतंत्रता के लिए कोशिश कर रहे हैं । ये उपनिवेश-वादी नीतियों का विरोध कर रहे हैं तथा मानवीय हितों व अपने

अधिकारों की मांगों को दिनों-दिन तेज़ी प्रदान कर रहे हैं । इन देशों के युवकों ने समाज में जागृति उत्पन्न करने के लिए साहित्य का भी प्रयोग किया है तथा स्वतन्त्रता का एकमात्र उद्देश्य रखकर सजातीय व विजातीयता के बीच बनी हुई खायी को पाटने की कोशिश की है । 1956 में अफ्रीकी युवा पीढ़ी ने गुप्त रूप से अनेक पत्रिकाएं प्रकाशित कर सामूहिक आन्दोलन के लिए आदेश प्रसारित करते रहे हैं । आन्दोलनों के दमन हेतु सत्ता और आन्दोलनकारियों के मध्य अनेक मुठभेड़ें हुई जिसमें छात्र तथा अध्यापक दोनों मारे गये । अफ्रीका के देशों में युवतियाँ स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह के पथ पर चलने में पीछे नहीं है । वे भी देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रही है । अफ्रीकी देशों के युवा वर्ग में सक्रियता, जागृति व तेज़ी जितनी अधिक दिखायी देती है उतनी अन्य देशों में नहीं प्राप्त होती ।

उत्तरी अफ्रीकी देशों में जैसे सूडान, ईजिप्त, लीबिया, ट्यूनीशिया और अलजीरिका जैसे देशों में आज राजनीतिक स्थिति डांवाडोल है और सामाजिक परिवर्तन चाहनेवाली युवा-पीढ़ी की समस्याएं भी बहुमुखी हैं । इन देशों में मानवीयता के लिए जितने भी युवा आन्दोलन हुए, उनको बाहरी एशियाई देशों से भी प्रोत्साहन मिला फलस्वरूप ट्यूनीशिया में सामाजिक आन्दोलन धीरे-धीरे उभकर चला तो अलजीरिया में यदा-कदा हिंसात्मक रूप भी धारण करता रहा । उन्हें आर्थिक चिन्ता न होने के कारण वे आर्थिक परेशानियों से मुक्त होकर सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों की ओर अधिक ध्यान दे पाते हैं और जीवन की गुणवत्ता के लिए अधिक तत्परता से संघर्षशील होते हैं ।

(घ) इंगलैण्ड :

इंग्लैण्ड में सन् 1940 के पूर्व प्राय: सभी युवा-संगठन ऐच्छिक संगठन (Voluntary organizations) के रूप में अस्तित्व में आये। सरकार तथा राजनैतिक दलों से इनका कोई संबंध नहीं था। 1942 ई० में सरकार ने एक राष्ट्रीय यूथ-समिति (National Youth Committee) बनाने का निश्चय किया, जिसका नाम आगे चलकर "युवा सलाहकार (परिषद्) सभा" (Youth Advisory Council) रखा गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त अन्य देशों की तरह इंग्लैण्ड में भी राजनैतिक दलों ने अपने राजनैतिक विचारों के प्रसार के लिए नवयुवकों का एक संगठन बनया, किन्तु इन युवा-संगठनों का कार्य राजनीति के साथ-साथ शैक्षिक और सामाजिक सुधार का भी रहा है। लेबर पार्टी का युवा संगठन "लीग आफ यूथ (The League of Youth) पार्टी नीति संबंधी ज्ञान का प्रसार, पार्टी के कार्यों के समर्थन और प्रचार के अतिरिक्त शैक्षिक और सामाजिक कार्यों को भी सम्पन्न करता रहा। "दि नेशनल लीग आफ यंग लिबरल्स" इंग्लैण्ड का सर्वाधिक प्रभावशाली युवा संगठन है। इस युवा संघठन के उद्देश्यों में राज्य की समस्याओं और राजनीति का व्यवस्थित ढंग से अध्ययन करना, युवा स्त्री तथा पुरुषों का एक ऐसा दल तैयार और प्रशिक्षित करना, जिनका जीवन-दृष्टि उदार एवं प्रगतिशील हो आदि है। इस संगठन के युवकों में सहयोग की भावना के साथ उत्साह, संयम साहस तथा कर्त्तव्यपरायणता भी है।

इंग्लैण्ड एक सम्पन्न देश है जहां विश्वविद्यालयीय छात्रों को सरलता से रोज़गार भी मिल जाता है। वहां का जनतन्त्र सशक्त होते हुए भी लचीला है।

इन सब चीजों के बावजूद युवा-छात्र, शैक्षिक, सुधारों तथा अनुदान के लिए यदा-कदा प्रदर्शन, हस्ताक्षर अभियान, विवाद, गोष्ठी

आदि के द्वारा अपनी मांगे बहुत समय से प्रस्तुत करते रहे, किन्तु 1966 ई० के पश्चात छात्रों के क्रियाकलापों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ । इसी वर्ष लन्दन में हल्का सा विरोध हुआ । कुछ ही समय में, शैक्षिक समस्याओं की सीमा से परे इंग्लैण्ड के युवा-छात्रों ने जातिभेद, नागरिकता, वियतनाम युद्ध संबंधी अपने राज्य की नीति आदि को लेकर अपना आक्रोश प्रदर्शित करना आरंभ किया । इसमें पुलिस से जमकर मुठभेड हुई जिसके परिणाम देखकर वहां के निवासी अवाक् रह गये । "इंग्लैण्ड" के इतिहास में यह एक अपने तरह की अद्वितीय घटना थी, जिसने देश की राजनीति में एक नया मोड ला दिया ।"[69]

आज इंग्लैण्ड में भी वही असंतोष, अनुशासनहीनता, आक्रोश, कुण्ठा दिखायी देती है जो जर्मनी अमेरिका तथा फ्रान्स के युवा-छात्रों में है । वे वर्तमान व्यवस्था से असंतुष्ट हैं । प्रौढों के समाज में प्रवेश कर कुछ परिवर्तन चाहते हैं लेकिन उनका समाज इन्हें प्रवेश नहीं देता क्योंकि प्रौढ़ युवा को युवा ही समझता है । उसके आक्रोश व असंतोष को क्षणिक आवेश समझकर उपेक्षित कर देता है । आज इंग्लैण्ड में युवा वर्ग विश्वविद्यालयीय शैक्षिक व्यवस्था में सुधार तथा सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर अपने महत्व को स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहा है ।

(ड) एशिया खण्ड : युवा आन्दोलन :

पश्चिमी देशों के युवा जागरण की हवा बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दिनों में पूर्वी देशों की तरफ बहकर आने लगी । परिणामत: एशियाई देशों के नवयुवकों ने स्वतंत्रता-संग्राम की लडाई उपनिवेशवादियों के खिलाफ छेड दी । अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के फलस्वरूप इन युवकों ने

आत्मबल का उत्थान हुआ । कम्यूनिस्ट चीन के बारे में पूर्ण जानकारी के अभाव में भी यह कहा जा सकता है कि वहाँ के आन्दोलनों में युवकों की प्रमुख भूमिका रही है । इण्डोनेशिया में पहली बार राष्ट्रपति सुकार्णो के मंत्रिमण्डल को लेकर इण्डोनेशिया की जनता की ओर से वहाँ के युवकों ने राष्ट्रव्यापी आन्दोलन किया था । छात्रों ने सुकार्णो को अपना प्रेसीडेण्ट मानने से इन्कार कर दिया । छात्रों का आन्दोलन चलता रहा । इण्डोनेशिया की "यूनाइटेड यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट एक्शन फ्रण्ट" के घात-प्रतिघात एवं विध्वंसात्मक कार्यों के फलस्वरूप डा0 सुकार्णो की सत्ता समाप्त हो गयी और सरकार को झुकना पड़ा । यहाँ छात्र-युवकों ने राष्ट्र में अनेक प्रकार के आर्थिक सुधारों को लागू करने में सहयोग दिया । यहाँ की सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि इण्डोनेशिया के छात्रों का आन्दोलन स्वस्थ, उद्देश्यपूर्ण तथा राष्ट्र एवं समाज के हित में रहा । इसी प्रकार सियोल (द0 कोरिया) में हुए सड़कों पर छात्रों के सम्मेलन ने वहाँ के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना को मुखरित किया । परिणामस्वरूप वे सिंग-मैनरी की सरकार को हटाने में सफल हो सके । नवोदित राष्ट्रों की समस्यायें वहाँ भी पैदा हुई जैसे शासन और संस्थागत भ्रष्टाचार, प्रशासनिक अकर्मण्यता, परिवर्तन-विरोधिता और परिवर्तन विरोधी भाव । 1967 में (पार्लियामेंट्री) संसदीय चुनाव के विरोध में कोरिया के छात्रों ने तीव्र आन्दोलन किये जिसके कारण सरकार को शैक्षिक संस्थाएं बन्द करनी पड़ी । छात्रों को गिरफ्तार भी किया गया । अनेक छात्र पुलिस संघर्ष में मारे गये । सियोल नेशनल युनिवर्सिटी में 1967 में दो सम्मेलन किये गये जो कैम्पस तक ही सीमित थे । परीक्षणों के लिए सरकार को छात्रों पर कड़े नियंत्रण भी लगाने पड़े ।

जापान की युवा पीढ़ी भी इस तरह के आन्दोलनों से अछूती न रह सकी । इधर जापान बड़ी तेज़ी से औद्योगिक विकास की तरफ बढ़ रहा था और युवक भी बड़ी लगन व कर्मठता के साथ कार्य कर रहे थे लेकिन

आत्मबल का उत्थान हुआ । कम्यूनिस्ट चीन के बारे में पूर्ण जानकारी के अभाव में भी यह कहा जा सकता है कि वहां के आन्दोलनों में युवकों की प्रमुख भूमिका रही है । इण्डोनेशिया में पहली बार राष्ट्रपति सुकार्णो के मंत्रिमण्डल को लेकर इण्डोनेशिया की जनता की ओर से वहां के युवकों ने राष्ट्रव्यापी आन्दोलन किया था । छात्रों ने सुकार्णो को अपना प्रेसीडेण्ट मानने से इन्कार कर दिया । छात्रों का आन्दोलन चलता रहा । इण्डोनेशिया की "यूनाइटेड यूनिवर्सिटी स्टुडेन्ट एक्शन फ्रण्ट" के घात-प्रतिघात एवं हिंसात्मक कार्यों के फलस्वरूप डा० सुकार्णो की सत्ता समाप्त हो गयी और सरकार को झुकना पड़ा । यहां छात्र-युवकों ने राष्ट्र में अनेक प्रकार के आर्थिक सुधारों को लागू करने में सहयोग दिया । यहां की सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि इण्डोनेशिया के छात्रों का आन्दोलन स्वस्थ, उद्देश्यपूर्ण तथा राष्ट्र एवं समाज के हित में रहा । इसी प्रकार सियोल (द० कोरिया) में हुए सड़कों पर छात्रों के सम्मेलन ने वहां के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना को मुखरित किया । परिणामस्वरूप वे सिंग-मेंडारा की सरकार को हटाने में सफल हो सके । नवोदित राष्ट्रों की समस्यायें वहां भी पैदा हुईं जैसे शासन और संस्थागत भ्रष्टाचार, प्रशासनिक अकर्मण्यता, परिवर्तन-विरोधिता और परिवर्तन विरोधी भाव । 1967 में (पार्लियामेंट्री) संसदीय चुनाव के विरोध में कोरिया के छात्रों ने तीव्र आन्दोलन किये जिसके कारण सरकार को शैक्षिक संस्थाएं बन्द करनी पड़ी । छात्रों को गिरफ्तार भी किया गया । अनेक छात्र पुलिस संघर्ष में मारे गये । सियोल नेशनल युनिवर्सिटी में 1967 में दो सम्मेलन किये गये जो कैम्पस तक ही सीमित थे । परीक्षणों के लिए सरकार को छात्रों पर कड़े नियंत्रण भी लगाने पड़े ।

जापान की युवा पीढ़ी भी इस तरह के आन्दोलनों से अछूती न रह सकी । इधर जापान बड़ी तेज़ी से औद्योगिक विकास की तरफ बढ़ रहा था और युवक भी बड़ी लगन व कर्मठता के साथ कार्य कर रहे थे लेकिन

अचानक उनकी व्यवस्था के प्रति असंतोष पैदा हो गया । सड़के जापानी युवाओं से भरी नज़र आने लगी कहीं-कहीं हिंसात्मक कार्य भी होने लगे । इन युवकों का असंतोष विश्वविद्यालयीय शिक्षा की एकरसता के ऊब से पैदा हुआ आक्रोश था । इस विषय को लेकर वे अमेरिका से अपने देश के संबंध के बारे में प्रश्न भी करते हैं । इन्होंने वियतनाम युद्ध में अमेरिकी हस्तक्षेप का जमकर विरोध किया जो हिंसात्मक भी हो गया था ।

दक्षिणी वियतनाम में स्कूल और कालेज के छात्रों ने भी विरोध किया । वे जानते थे कि उनके इस विद्रोह का सरकारी तन्त्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा लेकिन वे विरोध करे बिना नहीं रह सके । वे कठिन परिस्थितियों का सामना करके अपने भविष्य के निर्माण के लिए आतुर थे । इन युवकों व छात्रों में कुछ धार्मिक, कुछ सामाजिक, तथा राजनैतिक संस्थाओं से संबंधित थे लेकिन सभी का उद्देश्य देश व समाज की बिगडी हुई हालत को सुधारना था । यह वह पीढी है जो युद्ध की आग व धुएं में जन्मी तथा विध्वंसात्मक परिस्थितियों में पली थी इन्होंने देश के पतन के साथ सगे-संबंधियों को बेरहमी से खत्म होते देखा था । उन्होंने भ्रष्ट समाज द्वारा अपने ऊपर होते अत्याचार को भोगा और इस बात को महसूस किया था कि यदि जीना है तो चुप बैठना हितकर नहीं है, और चुप का मतलब है मृत्यु । इन विचारों को ध्यान में रखकर 1961 में उन्होंने "दि नेशनल वालंटरी सर्विस" की स्थापना कर गावों में बसे किसानों की सेवा करने का व्रत लिया । धीरे-धीरे यह संस्था राष्ट्रव्यापी संस्था बनती गयी, जो वियतनामी युवकों का अत्यन्त सुसंगठित संघ है । ये छात्र पूर्ण रूप से राष्ट्र-हितवादी थे । अपने आदर्शों के लिए प्राणों को बलि देने के लिए भी तैयार थे । वियतनाम में यही एक संस्था है जो पूर्ण रूप से सामाजिक है, जिसने बाहरी सरकारी राजनीतिक दल तथा

धार्मिक संस्थाओं का जमकर विरोध किया और किसी को ओर न झुककर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाये रखा ।

टर्की में युवा-आन्दोलन 1960 के बाद दिखायी देते हैं जिन्होंने विश्वविद्यालयों में शिक्षा पद्धति में परिवर्तन के लिए आन्दोलन किये थे । इसको लेकर परीक्षाओं का बहिष्कार किया गया । 1988 में हुआ आन्दोलन शुद्ध रूप से शैक्षिक आन्दोलन था जिसमें राजनीति का प्रवेश नाममात्र को भी न था ।

पाकिस्तान में भी युवा आन्दोलन हुए । वहाँ के युवकों ने अपने आन्दोलनों द्वारा अयूब खाँ को राष्ट्रपति पद से हटाया था । उनकी माँगों में अभिव्यक्ति-स्वतन्त्रता प्रमुख थी । इसके अतिरिक्त भुट्टो जैसे नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में भी उनके आन्दोलन को जनसमर्थन मिला था । आज भी पाकिस्तानी युवक प्रजातांत्रिक-शासन के लिए ज़िआउल हक के खिलाफ आन्दोलन कर रहे हैं ।

पूर्वी पाकिस्तान के मुक्ति संग्राम में वहाँ के युवा-वर्ग की प्रमुख भूमिका थी । उन्होंने अपनी मुक्ति के लिए सेवा संगठित कर पश्चिमी पाकिस्तान से अलग होने के लिए निरन्तर संघर्ष किया और फलस्वरूप 1971 में उनके आदर्शों के अनुरूप भारत ने विश्व के नक्शे पर एक नये राष्ट्र को जन्म दिया जिसे आज बंगला देश के नाम से जाना जाने लगा है ।

ईरान के शाह को पदच्युत करके खुमैनी को अधिकार दिलाने में ईरान के युवकों ने पूर्ण सहयोग दिया । शाह के शासनकाल में ईरान में पाश्चात्यीकरण अधिक हुआ । राष्ट्र में भ्रष्टाचार व नौकरशाही का बोलबाला हो गया था । अतः शाह के पाश्चात्यीकरण की नीति द्वारा इस्लामी परम्परा के उन्मूलन के विरोध में वहाँ के पुरोहित वर्ग के

प्रमुख सदस्य खुमैनी ईरान के शाह को देश से निकाल देने में सफल हो गये ।

ईरान और ईराक जो आज भी युद्ध लड़ रहे हैं उसका विरोध वहाँ का युवा वर्ग कर रहा है ।

5.6. भारतीय युवा आन्दोलन :

सही तौर पर भारत में युवा आन्दोलन न तो कभी हुआ है और न ही इसकी कोई केन्द्रीय भूमिका रही है । आज़ादी से पूर्व युवा जागरण की जो भी प्रक्रिया चली उसका सीधा लक्ष्य आज़ाद भारत की स्थापना थी न कि युवा अस्तित्व की आकांक्षा । गाँधी जी के सम्पर्क में आये युवा वर्ग ने आजादी हासिल करने के लिए जो भी कार्य किये वे सब ब्रिटिश सरकार को हटाने के लिये थे । उसमें उसका निजी स्वार्थ नहीं था । इस लड़ाई या संघर्ष में पीढ़ी के अन्तराल से उत्पन्न मानसिक समस्या का न तो कोई प्रश्न बनता था और न ही उसकी आवश्यकता । इस समय जितने भी युवा-संघों की स्थापना हुई वे सभी राजनीति से जुड़े थे और आजादी की लड़ाई को पूरी जनता से जोड़ना चाहते थे ।

युवामानस की यह विशेषता होती है कि उसमें ग्रहण-त्याग की शक्ति अन्य की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है । इसके साथ ही उसमें प्रतिक्रियाशीलता भी उतनी ही तीव्र व विस्फोटक होती है । सामाजिक संदर्भ में यह विस्फोट या आन्दोलन उसके दबे हुए असंतोष को ही प्रकट करता है । युवा-वर्ग समाज का सबसे अधिक उग्र और मुखर अंग है । साठोत्तरकालीन भारतीय परिवेश में युवा-स्थिति और उसका असंतोष सबसे अधिक प्रमाणित होता है । स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारत में मोह भंग असंतोष, आक्रोश को जन्म देनेवाली जो घटनायें घटी उसका

युवा-मानस पर सबसे अधिक प्रभाव हुआ । भारत-पाकिस्तान का संबंध (विभाजन), पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता तथा पाकिस्तान व चीनी आक्रमणों ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत सरकार बूढ़ी हो चुकी है । नयी कूटनीतियों को समझने की क्षमता उसने खो दी है, वह शासन के अनुपयुक्त है और इतिहास बन गयी है । ये सारी बातें युवा असंतोष में जन्मे आन्दोलनों में दिखायी देती हैं । मोह-भंग की स्थिति युवा वर्ग के साथ नहीं घटी लेकिन जो स्थिति उत्पन्न हुई उससे युवा-वर्ग अपने अस्तित्व की माँग करने लगा । सरकार व शासन की कमजोरियों की तरफ उंगली दिखाने लगा । कालेजों व विश्वविद्यालयों में शैक्षिक व्यवस्था व भ्रष्ट कर्मचारियों के बीच संघर्ष हिंसात्मक हो गये । ये परिस्थितियां एक ऐसा प्रश्न बन गयीं जिसके उत्तर में पुरानी संस्कृति से अलग हटकर युवा-संस्कृति का जन्म हुआ । युवा वर्ग अपनी पुरानी पीढ़ी के सामने हमेशा नासमझ व बच्चा कहलाने की बात का विद्रोह किया, वे अपने आपको बच्चा या नासमझ न मानकर चिन्तनशील, शक्तिशाली वर्ग के रूप में परिचय देने लगे । पुरानी व नयी पीढ़ी का यह संघर्ष किसी एक मोर्चे पर न होकर जीवन के हर पहलू से जुड़ गया । इसमें सबसे पहला संघर्ष अस्तित्व के लिए था क्योंकि जीने के लिए अस्तित्व का संघर्ष ज़रूरी है । युवा-वर्ग का संघर्ष दिनों-दिन बढ़ता गया और नित नये आन्दोलन शुरू होते गये हैं ।

स्वतंत्रता के बाद से आज तक के तीन दशकों की काल-सीमा में कितने ही आन्दोलन हर दिन युवा वर्ग की एक नयी समस्या को लेकर सत्ता या समाज के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करते रहे हैं । ऐसे समस्यागत युवा आन्दोलनों के सहयात्री भारत के हर कोने में, हर घर में व्याप्त हैं । प्रत्येक युवक व युवती इन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक प्रणालियों से असंतुष्ट है लेकिन फिर भी यह सारा आन्दोलन या तो घरों की चारदीवारी में बंद है या फिर किताबों तथा

पत्रिकाओं में । युवा आन्दोलनों का ऐसा सक्रिय व गुणात्मक रूप आज तक देखने को नहीं मिला जिसका कोई नतीजा मिला हो । सम्पूर्ण युवा-आन्दोलन अभी तक अपनी भूमिका तैयार करने में ही लगा है । आज युवा अस्तित्व को जाने-अनजाने स्वीकृति तो मिलने लगी है लेकिन इस बुर्जग पीढ़ी ने इसके साथ चूहा-बिल्ली का खेल खेलना नहीं छोड़ा । आज भी सत्ता-रूढ़ पीढ़ी कभी समाज का, कभी अर्थ का तो कभी परिवार का भय दिखाकर युवा-शक्ति का शोषण करती हुई अपने बुढ़ापे के लिए लाठी तैयार करने से नहीं चूकती । युवा मानस की इस विसंगति को न तो यह बूढ़ी सरकार समझ पाती है और न ही बूढ़ा पिता । परिणामतः युवा कुण्ठित, क्षुब्ध असंतुष्ट व आक्रोशित हो जाता है । उसकी स्थिति सिर्फ आवाज बुलन्द करनेवाले बम के समान हो गयी है ।

युवा-आन्दोलन की सफलता तभी संभव है जब वह कोरी भावुकता को त्याग कर प्रणालीबद्ध तरीके से इन बूढ़ी मान्यताओं पर प्रहार करे । आपसी प्रतिबद्धता व उचित मार्गदर्शन होने की वजह से ही समय-समय पर (घर व बाहर) उठता हुआ यह आन्दोलन बिखर कर विफल हो जाता है । भारतीय स्वतन्त्रता के पूर्व व पश्चात् के युवा-आन्दोलनों की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वतंत्रता पूर्व गांधी जी जैसे नेता उस समय के युवकों को संघटित करने में कुछ हद तक सफल हो पाये थे । स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रीय लक्ष्यों का अभाव नहीं था बल्कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का लक्ष्य तब भी बना हुआ था । परन्तु स्वतन्त्रता के बाद कदाचित् ऐसी कोई केन्द्रीय शक्ति नहीं उभर सकी, जो सम्पूर्ण भारतीय युवा-शक्ति को संघठित कर उसकी उर्जा को उपयोगी बनाये । इस शक्ति की उपेक्षा शासक वर्ग ने की जिससे वे शासन कार्य में असफल रहे । उपेक्षित होकर यह वर्ग कुछ दिनों के लिए दब भी गया लेकिन साठोत्तर काल में

समय-समय पर इधर-उधर छुट-पुट आन्दोलन के रूप में यही युवा शक्ति उभरती गयी । संभवतः भारतीय कांग्रेस पार्टी के प्रथम विभाजन के बाद युवा शक्ति के महत्व की ओर नेताओं का ध्यान गया और उसके बाद तो प्रत्येक दल युवा वर्ग को अपने दल में संघटित करने लगा । यह संघटन चुनाव में अपनी जीत के लिए इन राजनैतिक दलों द्वारा किया गया । यह भी एक प्रकार से युवा वर्ग का शोषण ही था । लेकिन इसके परिणाम में युवा-वर्ग को इन नेताओं की कमजोरियों व मक्कारी का पता चल गया जिससे युवा विद्रोह को कानूनी रूप में उभारने में मदद मिली है ।

आज यह देखा जा सकता है कि तीन दशकों के बीच जो भी युवा आन्दोलन उभरे उसका प्रभाव रेखांकित होने लगा । शोषण तो हुआ है और हो रहा है लेकिन इसके बावजूद युवा वर्ग के आन्दोलनों को अनदेखा नहीं किया जा सकता । कमजोरियां इधर भी है और उधर भी, लेकिन इसके बावजूद आज युवा वर्ग अपने अधिकारों के प्रति ज्यादा जागरूक व सतर्क है उसका काम बहुत बड़ा ही नहीं कठिन है । जो समय की मांग करता है । घर और बाहर दोनों ही मोर्चों पर लड़ती यह युवा पीढ़ी आशा व निराशा के बीच झूल रही है लेकिन भविष्य का सुनहरा सपना इसकी आंखों में धुंधला नहीं पड़ा है । इसीसे लगता है कि वह दिन ज़रूर आयेगा जब यह बूढ़ा समाज व सरकार परास्त होकर गिर जायेगी और युवा वर्ग अपने सम्पूर्ण शक्ति एवं चिन्तन के साथ सुनहरे सपनों को साकार कर लेगा ।

6. भारतीय युवा आन्दोलनों में संघों की भूमिका :

भारतीय युवा आन्दोलन की बात भी बहुत पुरानी नहीं बल्कि नया-नया ही है जो कुछ वर्षों से चर्चा का विषय बनी हुई है । सन् 1900

तक युवा छात्रों के कई संगठन अस्तित्व में आ चुके थे जिनका कार्यक्षेत्र प्राय: शिक्षा प्रसार तथा समाज-सुधार तक सीमित था । राजनीति उनसे परे थी । एक ब्रितानी पर्यवेक्षक का कहना है कि -- "विद्यालयों और महाविद्यालयों के छात्रों के व्यवहार में हंगामा और अनुशासनहीनता के लक्षण तब तक दिखायी नहीं पड़े थे, जब तक कि राष्ट्रीय आन्दोलन में राजनैतिक एवं जातीय सरगर्मी नहीं आयी ।"[70]

"भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस" की स्थापना सन् 1885 में हो चुकी थी । लगभग एक दशक तक कांग्रेस के नरम दलवालों की नीति श्री अरविन्द के वाद, प्रतिवाद और प्रार्थना की थी । इस नीति से युवक ऊब चुका था और उसका विरोधी बन गया था । सूरत में सन् 1906 में हुए कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात् भारतीय युवक अधिक उग्र हो उठा । "स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का नारा तिलक ने दिया और युवकों में साहस, त्याग तथा बलिदान की भावना को जाग्रत किया । इन युवकों में से अनेक आतंकपूर्ण कार्यों में लग गये । सरकारी प्रतिवेदन के अनुसार 1907 से 1917 के बीच हुई बंगाल क्रान्ति में अपराध करनेवाले छात्रों की संख्या 50% थी । इन क्रांतिकारियों में भगतसिंह, सावरकर, आजाद, खुदीराम बोस आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

सन् 1920 के पश्चात् राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथ में आ गया और यहीं से सही रूप में युवा आन्दोलन ने एक नया मोड़ लिया । जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र, पटेल, राजेन्द्र बाबू और श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे युवकों के नेतृत्व में भारतीय युवक असहयोग, अहिंसा और सत्याग्रह का व्रत लेकर जन सम्पर्क में आये । युवा-छात्रों ने नये नेतृत्व से प्रेरित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रखर बनाया । इसी दौरान पूरे देश में बिखरे हुए अनेक छात्र-संगठन "अखिल भारतीय विद्यार्थी संघ" के रूप में संगठित हो गये । सन् 1936 में इस संघ की पहली

सभा की अध्यक्षता लखनऊ में श्री जवाहर लाल नेहरू और श्री मुहम्मद अली जिन्ना ने की, यह संघ आरंभ में उग्र और घोर राष्ट्रवादी था और दो वर्षों में ही इसकी सदस्य संख्या 50 हजार तक पहुंच गयी । यह संघ शैक्षणिक और राष्ट्रीय मसलों पर विचार करने के लिए एक पत्रिका का प्रकाशन भी करता था ।

दुर्भाग्य कहेंगे कि इसी समय जिन्ना ने भारत भूमि पर मुस्लिम राज्य के औचित्य का प्रश्न उठाया और मुस्लिम लीग जैसे साम्प्रदायिक दल की स्थापना की । फलत: मुस्लिम छात्रों ने अलग होकर "अखिल भारतीय मुस्लिम छात्र संघ" का निर्माण किया । उन्होंने देश की स्वतंत्रता की मांग न कर अपने अधिकारों की बात की और देश के खण्डित होने तक यही स्थिति बनायी रखी ।

इन आन्दोलनों को देखकर यह साफ जाहिर होता है कि इनका संबंध सीधा राजनीति से था जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार को हटाकर स्वदेशी सरकार की स्थापना करना था । इन आन्दोलनों का संबंध न तो सामाजिक सुधार से था और न ही शिक्षा व्यवस्था से । युवकों में अपने अध्यापकों के प्रति सम्मान का भाव था और समाज अथवा प्रशासन भी छात्र को छात्र ही समझता था । सच तो यह है कि युवा-शक्ति पहली बार एक प्रमुख ताकत के रूप में उभर कर सामने आयी । लेकिन उसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं था । केवल देश की आज़ादी का एकमात्र लक्ष्य उसके सामने था जिसके लिए वह संघर्ष कर रही थी । युवा वर्ग यह मानता था कि आज़ादी के बाद सब कुछ ठीक हो जायेगा । इसकी आंखों में भविष्य के प्रति सुनहरे सपने पल रहे थे, जो उसे कुछ कर गुज़रने को प्रेरित कर रहे थे । इन सपनों पर पहला वज्रपात देशके विभाजन के रूप में हुआ जो उसे स्तम्भित कर दिया । उसका चेतनाशून्य हो जाना

तथा विभाजन के दर्द ने युवा वर्ग की मानसिकता को और अधिक तोड़कर रख दिया । स्वतंत्रता के मोह ने देश-विभाजन के दर्द को कुछ सीमा तक सोख लिया लेकिन वही टूटन और घुटन स्वतंत्रता के वर्षों में शासन की असफलता के विरुद्ध युवा आन्दोलनों में प्रगाढ रूप से दिखायी देती है ।

भारतीय युवा-जागरण की प्रक्रिया में सन् 1942 के "भारत छोड़ो" आन्दोलन का अपना विशेष महत्व है । छात्रों और युवकों ने महाविद्यालय और कारखाने छोड़कर इस आन्दोलन को प्रखर बनाया । यह आन्दोलन इतना प्रखर था कि राजनीति से सर्वथा उदासीन रहनेवाले युवकों ने भी इसमें प्रत्यक्ष भाग लिया । इसमें हिंसात्मक व विनाशी कार्य कर युवकों ने सरकारी इमारतों पर राष्ट्रीय-ध्वज फहराने जैसे साहसिक कार्य भी किया ।

यों तो युवा संगठनों की संख्या दर्जनों से अधिक है ।[71] किंतु उनमें से वे ही सक्रिय हैं जिनका संबंध राजनैतिक दलों से है । अखिल "भारतीय छात्र-संघ", जिसका संगठन सन् 1936 में हुआ था, चार वर्ष के बाद साम्यवादियों के नियंत्रण में आ गया । सन् 1955 में इस संगठन के एक लाख सदस्य हो गये किन्तु जहां साम्यवादी दल थे वहां इसका प्रचार नहीं के बराबर रहा ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय युवा-जागरण भले ही बीसवीं शताब्दी की क्रान्ति हो, लेकिन धीरे-धीरे इसका हाथ घर से बाहर शैक्षिक संस्थाओं से लेकर राजनीति तक पहुंच गया है । समय-समय पर अनेक संघों का निर्माण होता रहता है जो परिस्थितियों के साथ अपना कार्य करते रहते हैं । कभी ये युवा संघ देश की सुरक्षा व आजादी के लिए लड़े, कभी भ्रष्ट कर्मचारियों के खिलाफ, कभी सरकार का विरोध किया । इसके साथ-साथ आये दिन व्यक्तिगत स्वतंत्रता व अस्तित्व के लिए संगठित

होकर ये संघ संघर्ष करते रहते हैं । इन संघों का सबसे बड़ी उपलब्धि युवा वर्ग को संगठित करना व हर अन्याय का विरोध करना है । साथ ही विदेशों में हो रहे युवा-जागरण की गतिविधियों का हवाला देते रहना है । इसके विपरीत इन संघों में अनेक कमजोरियाँ भी पैदा होती जा रही है जिसमें प्रमुख यह है कि ये संघ तो स्वयं राजनीतिक गतिविधियों से अपने आप को जोड़ चुके हैं और छात्र नेता छात्रों के हितों की उपेक्षा कर उन्हें गुमराह कर रहे हैं । युवा-संघ के नाम पर युवकों की शक्ति का प्रयोग राजनीतिज्ञ या नेता अपने निजी हितों में करके उन्हें कमज़ोर तथा सही दिशा में सोचने की ताकत को नष्ट कर अपना अन्धा गुलाम तैयार करते हैं । दोहरी नीति पर चलते ये युवा संघ आज के परिवेश में युवाओं के हितों की रक्षा के आड़ में उनका शोषण कर रहे हैं और भ्रष्ट राजनीति को बढ़ावा देते हैं । फीस में वृद्धि, प्रवेश में अड़चन, अध्यापकों के वेतन में कमी छात्र संघों के अधिकारों में कमी, प्राविधिक तथा तकनीकी संस्थाओं को मान्यता न देना आदि के विरूद्ध आन्दोलन किया । सन् 1966 में उत्तर भारत, मुख्यत: बिहार और उत्तर प्रदेश में छात्रों ने जमकर प्रदर्शन किया ।

"अखिल भारतीय कांग्रेस समिति" ने सन् 1949 में "यूथ कांग्रेस छात्र संगठन" की स्थापना की । इसका उद्देश्य महत्वाकांक्षी नवयुवक नेताओं को राजनैतिक मंच पर लाना था, किन्तु यह संगठन अधिक लोगों को आकृष्ट नहीं कर सका । साम्यवादी विचारधारा के कांग्रेसी नेताओं ने उससे अलग होकर अथवा एक अलग दल स्थापित किया, जो सन् 1952 के आम चुनाव के बाद संयुक्त समाजवादी दल में बदल गया । इस दल ने सन् 1953 में "समाजवादी युवक सभा" का संगठन किया । यह समाजवादी दल बिहार, लखनऊ, इलाहाबाद, गोरखपुर आदि की शैक्षि संस्थाओं में उग्र रूप से प्रदर्शन किया जिसमें पुलिस के साथ पथराव भी शामिल है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य राजनीतिक दल जैसे "फारवर्ड ब्लाक" "क्रान्तिकारी समाजवादी दल" भी युवा छात्रों में अपना स्थान बनाये हुए हैं किंतु वे विशेष सफल नहीं है । इसी तरह अनेक विश्वविद्यालयों में छात्र संघ बने और ये समय-समय पर अपनी असंतुष्टि को जलूस तथा दंगों के माध्यम से प्रदर्शित करते रहे । इनके प्रदर्शनों की मांगें अक्सर शैक्षिक व्यवस्था में परिवर्तन से लेकर सरकार व ~~xxxxx~~ राजनीति की पहुंच तक की होती है । ये छात्र कर्मचारियों के अपमान से लेकर पुलिस से मुठभेड तक करने से नहीं चूकते, जिसमें अनेक मारे जाते हैं तथा विश्वविद्यालय जलाये जाते हैं ।

7. भारतीय युवा पीढ़ी व मानस :

उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में हुई विश्वव्यापी उथल-पुथल ने भारत में भी, विशेषकर स्वातन्त्र्योत्तर काल में, विशेषप्रकार की युवा पीढी को जन्म दिया, जो एक नया जागरण एवं आन्दोलन की भूमिका लेकर समकालीन भारतीय समाज को पूरी तरह झकझोर रही है । भारतीय युवा पीढ़ी व मानस से अभिप्राय उस पीढ़ी से है जो स्वतंत्रता के बाद जन्मी और साठोत्तर काल में जवान होकर विश्व राजनीति, सांस्कृतिक व आर्थिक विकास की गतिविधियों को देखकर अपने अधिकारों के प्रति प्रबुद्ध और जागरूक हुई । इस पीढ़ी का सामना उन स्वतन्त्रता सेनानियों से नहीं हुआ जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिए प्रमुख भूमिका निभायी थी । इस स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी का उन व्यक्तियों से सम्पर्क नहीं हुआ जो मानवीय मूल्यों को रूढियों के आवरण से हटाकर, पुराने ग्रन्थों व साहित्य के नये संदर्भों में व्याख्यायित करके मानवीय हितों की रक्षा की थी, जिन्होंने गर्व से जीने का संदेश दिया और राष्ट्र की सुरक्षा के

के लिए फांसी के फन्दे को अपनाया था बल्कि इस सत्तालोलुप राजनेताओं की पीढ़ी से सामना हुआ जो स्वतन्त्रता का फल अर्थात् सत्ता भोगनेवाली थी जिसने कुर्सी की खातिर सारे मानवीय मूल्यों को तिलांजलि दे दी थी । इस सत्ताधारी, भ्रष्ट, बुर्जग पीढ़ी के लिए युवा-मानस में कभी आक्रोश और विद्रोह उभरता है तो कभी हताशा व कुंठा की भावना, जिसको वह नाना प्रकार के ज्ञात-अज्ञात कारणों द्वारा भुलाने की चेष्टा करता रहती है । इस युवा-पीढ़ी की प्रकृति को (साठोत्तरी) इस समय के साहित्य में भली प्रकार देखा व समझा जा सकता है । विसंगति के बीच जीता यह युवा वर्ग कभी घर में आक्रोश प्रदर्शित करता है तो कभी समाज में । इस पीढ़ी का मानस विद्रोही व आक्रोशी है ।

8. युवा मानस व अकेलेपन की प्रक्रिया :

औद्योगिक क्रान्ति से पहले व्यक्ति के पास अकेलेपन जैसी न तो पीड़ा थी और न ही इसकी प्रक्रिया । जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह दिन भर कार्य में लगा रहता था, शाम को घर आकर अपने परिवार से मिलता तथा सुख से चैन की नींद सोता था। लेकिन व्यक्ति की अदम्य महत्वाकांक्षाओं ने औद्योगिक ज्ञान व तकनीकी, वैज्ञानिक विकास करके उसका सुख-चैन आधुनिक मशीनों की जटिलता में होम कर दिया है ।

औद्योगिक क्रान्ति मानव जीवन में कुछ इस तरह से प्रविष्ट हुई, जिसमें जीवन का ... ही बदल गया । व्यक्ति उद्योगों का गुलाम हो गया । जीवन की आवश्यकताओं से अधिक उसने भौतिक वस्तुओं का उत्पादन किया । श्रम व समय की बचत बढ़ गयी । भौतिक वस्तुओं को अत्यधिक महत्व मिलने लगा । मानवता व मानवीय संबंध तिरस्कृत हो गये/ भौतिकता के पीछे भागता ... व मानव नहीं बल्कि उद्योगों का एक

यन्त्र बन गया है उसका मन व मस्तिष्क विद्युत की भांति गतिशील व क्षणों में सुख पाने व ढूंढनेवाले हो गये । जीवन की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के उपरान्त उसके पास जो श्रम व समय शेष रहा उसने उससे ऐसे कर्म करवाये जिससे उसके अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया । घातक हथियारों की महत्वाकांक्षाओं से महायुद्धों का सूत्रपात हुआ, जिनसे मानव जाति को समाप्त होने में मिनटभर का समय भी नहीं लगता । अस्तित्व का खतरा सभी को समान रूप से सताने लगा, नैतिकता व समानता की भावना इन महायुद्धों में जल गयी है । "गत महायुद्धों की विभिषिका में मनुष्य के तनमन को ऐसा पराजित किया कि उसे न तो सनातम मूल्यों में विश्वास रहा और न ही आदर्शों की पवित्रता में ईमादनारी में आज वह अकेला है या अकेला रहने के लिए मजबूर है । पुरूषार्थ, लक्ष्य और न्याय, आदर्श, ईश्वर, लोक और राष्ट्र में से कोई भी एक आधार उसके पास नहीं है।[72] यह आधारविहिन मानव अकेला हो गया है । "सार्त्र" का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति एक लघु ईश्वर है । भय व शंका से ग्रस्त ऐशो आराम की दुनिया उसे अन्दर तक खोखला व बदरंग कर चुकी है । अपने बनाये जाल में प्रत्येक व्यक्ति फंसा है लेकिन अपनी-अपनी सीमाओं में अकेला एक का अस्तित्व दूसरे के लिए खतरे का सूचक है । "मनुष्य भीड़ में अकेला है, यह उसकी नियति है ।"[73]

सामाजिक,आर्थिक, राजनैतिक, वैयक्तिक, तकनीकी आदि क्षेत्रों में इतनी तेज़ी से परिवर्तन हुए जिसके फलस्वरूप संबंधों को जबरदस्त झटका लगा । चारों ओर की भीड़ में खोया हुआ व्यक्ति फिर अपनी वास्तविक स्थिति व नियति को समझने की चेष्टा करने लगा, ऐसे समय में मध्यवर्ग की स्थिति अत्यन्त नाजुक हो गई, उसे अपने अस्तित्व के प्रति खतरा दिखायी देने लगा । स्वभावतः बदलते हुए आयामों की प्रतिक्रिया में मर्यादा व मूल्य बदलने लगे, पुराने मूल्य व मान्यताएं सन्देहात्मक

हो गई । प्रत्येक व्यक्ति के लिए आत्म रक्षा का प्रश्न प्रमुख हो गया, क्योंकि पहला संघर्ष जिन्दा रहने के लिए ही होता है । समाज में रहते हुए भी वह भयाक्रांत है । महानगरीय जीवन की भीड़-भाड़ और तेज़ी में यह भावना और भी अधिक तीव्र रूप में उत्पन्न हो गयी है । निर्वैयक्तिक औचित्य बोध में विश्वास नहीं रहा । सभी अपने-अपने अकेले व अजनबीपन को ढोते हुए मौत का इन्तजार कर रहे हैं -- उस मृत्यु का जो कभी भी, किसी भी समय आ सकती है । पुराने मूल्यों का विघटन व नये मूल्यों का निर्माण न होने की प्रक्रिया में व्यक्ति का चरित्र कमज़ोर हो गया है । जीवन बिखरा-बिखरा व टुकड़े-टुकड़े में विभक्त हो गया है । संयुक्त परिवार के बिखराव, व सम्पन्नता की होड़ आदि विघटनकारी स्वार्थी तत्व व्यक्ति को व्यक्ति के आपसी सम्पर्क से दूर हटाकर यंत्रों (यंत्रवत् जीवन) से जोड़ चुके हैं । परिवार, समाज, नैतिक आचरण व युवक-युवतियों के आचरण आदि से यह स्पष्ट दिखायी देने लगा है कि व्यक्ति का सम्पर्क किस हद तक टूट चुका है । प्रेम व यौन संबंधों की परिभाषा बदल चुकी है। चारों ओर एक तनाव सा पैदा हो गया । संसारव्यापी भौतिकता, वैज्ञानिकता और तकनीकी प्रगति, औद्योगिक विकास, वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था, अस्तित्ववादी धारा तथा मनोविश्लेषण शास्त्र आदि सभी ने मिलकर व्यक्ति के अस्तित्व को छोटा व नपुंसक बना दिया है । भावों व विचारों का संघर्ष जीवन के संघर्ष को बढ़ा दे रहा है । स्वतंत्रता उसके लिए अर्थहीन बन गयी है । सामर्थ्यहीनता की स्थिति में वह जीवन की रिक्तता व अकेलेपन को महसूस करने लगा है । भौतिक सम्पन्नता के बीच अकेला मनुष्य मानो अपने आप से अपरिचित, अजनबी हो गया है । अकेला इस अर्थ में कि वह संबंधों की इस दुनिया में रहकर भी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में असमर्थ है, तो अजनबी इन अर्थों में कि वह जानता है कि वह जो कुछ कर रहा है उसका प्रभाव उसके लिए घातक हो सकता है फिर भी वह उसको छोड़ नहीं सकता

व्यवस्था उसको इस बुरी तरह जकड़ चुकी है, ऐसा करने के लिए इजाजत नहीं देती ।

आज का व्यक्ति शून्य की उस स्थिति से गुज़र रहा है जहां या तो वह स्वयं वस्तुओं से दूर होता नज़र आता है या वस्तुएं स्वयं उससे दूर होती जा रही है । इन दोनों ही हालात में व्यक्ति अकेला है । सुख व दुख का अनुभव भी वह अकेले भोगने के लिए अभिशप्त है । सच तो यह है कि -- "आज के व्यक्ति के जीवन की सबसे बड़ी ट्रैजेडी उसका अकेलापन है जो उसकी नियति बनकर उस पर हावी हो गया है । बदलती हुई इन परिस्थितियों के अनुरूप यदि वह स्वयं को नहीं ढाल पाया तो उसका सारा जीवन अपने मन के कोनों से लड़ने में ही व्यतीत हो जाता है ।"[74]

अकेलेपन की इस नियति ने व्यक्ति को अजनबी बना दिया है । आज वह अपनों के बीच सारी सुविधाओं से लदे होने के उपरान्त भी अपरिचितता महसूस करने लगा है । अस्तित्व की सत्ता उसके लिए प्यार, मुहब्बत व संबंधों की मिठास से सर्वोपरि है । जिसकी रक्षा वह अपनों से काटकर भी करने को तैयार है । "मैं" का प्रश्न उसके मान से जुड़ा है । उसके जीवन की नैतिकता व व्यवस्था का दर्शन "मैं" को केन्द्र में रखकर ही बनता बिगड़ता है । यह "मैं" उसका अहं है जिसे "ईगो" कहा गया है। यह अहंवादी व्यक्ति समाज नहीं बना सकता है - टूटना इसे स्वीकार है लेकिन किसी से जुड़ना कठिन । जबकि वह जानता है कि अकेला व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास तक नहीं कर सकता, समाज उसके लिए आवश्यक है ।

आज औद्योगिक विकास व असंतुलित आर्थिक विकास ने व्यक्ति के चिन्तन व समाज से संबंधित हर पहलू को उलट-पुलट कर रख दिया है । ऐसी अवस्था में जहां मनुष्य मात्र साधन है साध्य नहीं, युवा पीढ़ी के साथ अकेलेपन की प्रक्रिया तेज़ी से बढ़ती जा रही है । अमीरी व गरीबी में पैदा

हुआ युवा वर्ग का मानस यह समझ नहीं पाता कि आखिर वह कौन सा बिन्दु है जहां से उसका अकेलापन शुरू होता है जिसकी सीमाओं में वह अजनबीपन तक पहुंचता है । आज विकसित विकासशील व सभी देशों के युवक अपने आपको अकेला महसूस करने लगे हैं । उनका अस्तित्व व उनके कार्य बड़ों की नज़र में संदेहास्पद अर्थात् गुनाह बनता जा रहा है । भौतिक सुविधाओं से सम्पन्न होने के बावजूद वह अकेला है । जीवन का लक्ष्य उसके सामने से हटता नज़र आ रहा है । संबंधों की गरमी, जो जीवन का आनन्द है, खतम हो गयी है । लक्ष्य का अभाव व मौके की तलाश में उसका जीवन अकेला व अजनबी सा हो गया है । भौतिक विकास के सामने व्यक्तित्व-विकास रूक-सा गया है । समय व शक्ति का शेष रहना उसकी व्यर्थता का बोध कराती है । ऐसे समाज व देश में पैदा हुई यह युवा पीढ़ी यदि अजनबी व अकेलेपन की प्रक्रिया से गुज़र रही है तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

आधुनिक उपकरणों व एशो-आराम में जीती जिन्दगियां अपनी बनायी हुई सीमाओं को तोड़ने का साहस खो चुकी है । इज्जत का संबंध पैसे से है और इसको पाने की दौड़ में भागता परिवार, देश व राष्ट्र मानवी-संबंधों व हितों की उपेक्षा करने लगा है । पुरानी पीढ़ी की अपनी विशेष प्रतिस्पर्धा है तो नयी पीढ़ी की अपनी अलग और इस प्रतिस्पर्धा में हर व्यक्ति डरा-सहमा हुआ व अकेला है । वह अपने इस अकेलेपन की पूर्ति अनेक अच्छे-बुरे कर्मों के द्वारा करने को विवश है । ऐसे वातावरण में युवामानस विक्षिप्तसा - कहीं आशावादी तो कहीं निराशाओं से घिरा अपने जीवन को अपनी तरह से विश्लेषित करता है ।

घर एक ऐसा खोह बन गया है जिससे भौतिक सुविधाओं के सिवाय उसे रागात्मक सुख नहीं मिल पा रहा है जिसकी तलाश वह नशीले पदार्थों के सेवन में करता है । अपने को आधुनिक व पूर्ण सम्पन्न घोषित करनेवाले माता-पिता अपने बच्चों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क को आवश्यक नहीं समझते

हैं । युवा भावनाओं को बेवकूफी या नासमझी की संज्ञा देनेवाले माता-पिता उन्हें ऊंचे, महंगे व प्रसिद्ध होस्टलों में भेजकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं । टेलिफोन व टेलिग्राम द्वारा बधाई संदेश भेजकर ये अभिभावक अपने आपको धन्य समझने लगे हैं । आया की गोद में पला व बढ़ा हुआ उच्च वर्ग का युवक प्यार व मां-बाप के सम्पर्क के लिए तरसता व घुटता जा रहा है क्योंकि -- "आधुनिक संसार में अधिकतर पिता इतने व्यस्त रहते हैं कि वे अपने बच्चों को अधिक समय ही नहीं दे पाते । सवेरे उन्हें कार्य पर जाने के लिए तैयार होना पड़ता है, इसलिए वे बच्चों के साथ हंस-बोल नहीं सकते और संध्या समय जब वे घर लौटते हैं तो बच्चे सो रहे होते हैं । माताओं को पार्टी, क्लब व खरीददारी से ही समय नहीं मिलता कि वे बच्चों के साथ बैठकर अपनी ममता और कुछ अच्छी शिक्षा उन्हें दे सके ।" माता-पिता के अभाव में गुमराह होने का मूल कारण यह अकेलापन ही है, इस अकेलेपन की पूर्ति वे अनेक मादक द्रव्यों से करते हैं । फैशन के नाम पर "अश्लील हरकतें" इनमें इसीलिए आती हैं कि बड़ों में औचित्य की विकृति भावना होती है ।"[75]

मध्यवर्गीय युवक का अकेलापन सम्पन्नता की दौड़ में शामिल होने की वजह से पैसा व प्यार में तालमेल न बैठा पाने के कारण आता है । "आधुनिक युग में प्रत्येक मध्यवर्गीय परिवार पर मंडरानेवाले आर्थिक संकट ने सभी प्रकार के परम्परागत मूल्यों को तोड़कर रख दिया है ।"[76] मूल्य का यह टूटना युवा व्यक्ति के लिए संत्रास पैदा कर दिया है । इन मूल्यों के टूटने से युवा वर्ग में किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति उत्पन्न हो गई है । आज तक जिसे वह अच्छा समझता था, जिसमें उसकी आस्था थी, उनके टूटने से उसमें जीवन के प्रति भय का निर्माण हो जाता है । पारम्परिक संस्कारों से जुड़ा मध्यवर्गीय युवक यह समझ ही नहीं पाता कि पवित्र व सुखद जान पड़नेवाली इस दुनिया व संबंधों में इतनी विचित्रता व अपवित्रता कब व कैसे

आ गयी ? सहज लगनेवाला जीवन इतना कठिन व बदरंग कैसे हो गया ? मोहभंग की यह स्थिति उसे अकेलेपन की सीमा में जकड़ लेती है । आर्थिक विकास का असंतुलन उसकी सारी नैतिकता को धाराशायी कर देती है । डिग्रियों का हकदार (डिग्रीधारी) यह युवा वर्ग बेरोजगारी व भ्रष्ट प्रशासन का शिकार है । घर में संबंधों का बदलाव और बाहर पूंजीपतियों के दलाल जीवन के प्रति जुगुप्सा पैदा कर देते हैं । अकेलेपन व अजनबीपन की इस प्रक्रिया के दौरान वह न तो संबंधों व नैतिकता को निभा पाता है और न ही खुलकर विद्रोह कर सकता है । अन्दर ही अन्दर एक ऐसी दुनिया की सृष्टि करता चलता है जो उसे अन्धकार की तरफ ले जाती है और "प्रत्येक आत्महत्या अन्धकार से ही शुरू होती है"[77]

निम्न वर्ग के युवक को अकेलेपन व अजनबीपन की प्रक्रिया उतनी नहीं सताती । उसका जीवन आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति में ही समाप्त हो जाता है । संबंधों का गाढापन इनके लिए न तो अधिक मीठा है और न ही अधिक फीका । संबंधों की स्थिरता पेट की पूर्ति पर निर्भर करती है । उनके पास न तो इतना समय है और न ही शक्ति शेष है जो इस अकेलेपन व अजनबीपन जैसे अमीरों के दर्शन पर विचार कर सके । अधिकार तक के लिए लड़ने का साहस साम्यवादी देश के लोगों की तरह पूंजीवादी देशों की तरह जुटा पाना इनके लिए मुश्किल होता है ।

सच तो यह है कि अकेलेपन या अजनबीपन का दर्शन अमीर देशों का दर्शन है । भौतिक सुविधाओं से डूबे हुए व्यक्ति के पास इस पर विचारने की बुद्धि व समय होता है । अमेरिका जैसे देशों में अकेलेपन व अजनबीपन का अत्यधिक बोलबाला है । माता-पिता की छत्र-छाया से अलग युवा वर्ग इस दौड़ती जिन्दगी व विनाशक हथियारों को देखकर उन्हें अपने अस्तित्व की क्षणभंगुरता का अहसास होने लगा है । संबंधों का जहां कोई अर्थ नहीं है,

पैसा उस समाज का देवता है तो प्रेम खाली समय की पूर्ति का माध्यम । ऐसे समाज में युवा वर्ग और अधिक अकेला हो गया है, उसके हाथ में न तो घर रहा है और न ही व्यवस्था । अपनी असफलता व सफलता को जानने-पहचानने की दृष्टि का वह स्वयं न्यायाधीश है । जीवन का लक्ष्य उसके लिए शून्य हो गया है । यही कारण है कि वह अकेलेपन को भरने के लिए कम उम्र से ही डेटिंग, मादक पदार्थों का सेवन, उत्तेजक नृत्य व संगीत, सेक्स आदि का आदी हो जाता है । जंगलों में भटकना व समाज विरोधी कार्यों के माध्यम से वह अपने अकेलेपन की पूर्ति व आक्रोश को अभिव्यक्त करता है । लेकिन इसके विपरित विकासशील देशों में अकेलेपन व अजनबीपन की यह प्रक्रिया बहुत ही धीमी व परिवर्तित रूप में पनप रही है । पारम्परिक संस्कारों व वर्गीय-विभाजन के स्तर पर समान होने के बावजूद अकेला व्यक्ति अलग-अलग परिस्थितियों में रहकर भी एक ही लक्ष्य की तरफ बढ़ रहा है ।

इस मशीनी जिन्दगी में व्यक्ति दूसरों को काटने में पलभर की भी देरी नहीं लगाता । भावों के सम्प्रेषण के अभाव व पीडा में व्यक्ति गूंगा हो गया है । शब्दों की दलाली उसे अखरने लगी है । कितनी ही बातें वह अपने साथवालों से कहने की इच्छा रखने के बावजूद शब्द व समय के अभाव में कह नहीं पाता । अभिव्यक्ति की यह इच्छा सीमा उसके अपने अस्तित्व से भी सीमित हो गयी है । अपनों का रिश्ता व्यवसायिक हो गया है । भावनाओं को सुनने-समझने की समर्थता मशीनों की आवाज में घुट गयी है, भावनाओं को आज बेवकुफी का दर्जा हासिल हो गया है । प्रेम के पुजारी मजनू-लैला, हीर-रांझा, रोमियो-जुलियट के नाम से सम्बोधित होने लगे हैं जो सामाजिक स्तर पर एक भद्दी गाली से कम नहीं हैं । प्रेम की गर्मी समाप्त हो गयी है । व्यक्ति दिनों-दिन भावनाओं से दूर होकर बुद्धिशाली कहलाने में गौरव महसूस करने लगा है । बुद्धि के झगड़े व लफड़े उसे प्रिय लगने लगे हैं । ऐसे में यदि व्यक्ति अकेला और अजनबी

हो जाये तो दोष उसका नहीं बल्कि दोष उसका है जो उससे उसके जीने का हक छीनता है, बच्चा व नादान जैसे सम्बोधनों के माध्यम से उसके अहं व अधिकार को पराजित करता है । युवा वर्ग कह कर उसका मजाक उड़ा रहा है । यदि ऐसे समय में वह अपनी उपेक्षा से प्रताड़ित होकर मयखानों की तलाश व स्वप्नलोक की कल्पना में कुछ समय के लिए डूबने की कोशिश करता है तो उसे गुमराह करार देना व उसको सजा देना उचित नहीं है ।

आज खुले रूप में साफ जाहिर है कि युवा मानस समाज में व्याप्त इन परिस्थितियों को जहां स्वीकार नहीं कर पाता, वहीं वह खत्म हो जाता है और यदि वह स्वीकार कर लेता है तो कम से कम सामाजिक स्तर पर बना रहता है, बस । ऐसी भीषण कष्टदायी परिस्थिति व्यक्ति को दोहरा जीवन जीने के लिए बाध्य करती है । एक कुदरती चेहरे के पीछे अनेकों चेहरों का होना समय व परिस्थिति की मांग बन गयी है, जिसके पीछे व्यक्ति थका, भयाक्रान्त व संत्रासग्रस्त है । फैशन व कपड़ों का शौक उसे उसकी असफलताओं निराशाओं को सहने में मदद करने लगे हैं ।

"जीवन के इस एकाकीपन और उससे उत्पन्न संत्रास को अनुभव के स्तर पर ही समझा जा सकता है ।"[78] अनुभवविहीन व्यक्ति इसको समझने की शक्ति नहीं रखता । कहीं न कहीं किसी स्तर पर यह एकाकीपन आज सभी में व्याप्त हो गया है । अपने महफिल में हर व्यक्ति अकेला है । वह अपनी व्यक्तिगत जान पहचान के लिए तरह-तरह से करवटें बदलने की कोशिश करता है । "हर आदमी हर दिन, हर वक्त झूठ और फरेब से छला जाता है । जहां आदमी दरअसल आदमी नहीं रह जाता ।"[79]

आज का युवा वर्ग रोजगार की तलाश में घर से निष्कासित होकर सड़कों पर बे अर्थ भटक रहा है । विषम परिस्थितियों ने उसे जीने व मरने के बीच लाकर खड़ा कर दिया है, जहां वह उत्तरदायित्वों से भागता है तो लक्ष्य खो जाता है और जब तक लक्ष्य की ओर वापस आता है तब तक

जीवन ही समाप्त हो जाता है । अपने आप से वह कभी कालेज पहुंचता है तो वहां से निराशाओं की गठरी लिए घर, और वह भी उस घर में जहां उसके लिए सभी अपने हैं लेकिन अपरिचित । बुजुर्गों की विरासत, कायरता, पारम्परिक संस्कारिता व कमज़ोर प्रतिनिधित्व को ढोता युवा अपने ही घर में गैर है और अपने ही लोगों में अपरिचित और अनजाना ।

9. युवा आक्रोश, घृणा, अपराध व भविष्य बोध :

आन्दोलन या विद्रोह कभी भी सामूहिक कुंठा का परिणाम होता है और कुंठा की प्रतिक्रिया घृणा और अपराध की भावना है । कुंठा-ग्रस्त व्यक्ति अपराध कार्य के द्वारा कुंठा की भावना से मुक्ति पाने का प्रयास करता है । नवयुवक देशों की शिक्षा प्रणाली की दिशाहीनता और व्यर्थता के शिकार हो चुके हैं । समाज उनके सामने कोई आदर्श प्रस्तुत करने में असफल रहा है । फलस्वरूप आज का सामान्य युवक आस्थाहीन हो गया है उसके सामने इस बात की चिंता नहीं है कि समाज उसके किसी कार्य को अच्छा समझेगा या बुरा । आज पूरे समाज में नैतिकता की स्थिति अपने समापन की सीमा पर पहुंच चुकी है । आज का युवक जिन्दगी की लड़ाई लड़ने के लिए अपने आपको काफी असमर्थ महसूस कर रहा है । विद्यालयों की सारी शिक्षा-दीक्षा उसके जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने में समर्थ नहीं बना पायी है । फलस्वरूप विश्वविद्यालयों से बाहर आते ही बाहरी दुनिया की कठोर वास्तविकता उसे परास्त कर देती है । विद्यालयी पाठ्यक्रम में जिन आदर्शों को वह पढ़कर, रंगीन सपनों को लेकर बाहर आते ही उसका मोहभंग होता है । आदर्शों की सारी प्रतिमाएं टूटकर बिखर जाती है और जीवन-लड़ाई में वह अकेला असहाय महसूस करने लगता है । ऐसी परिस्थिति में उसका मानस समाज, व्यवस्था, व विश्वासों के प्रति आस्थावान नहीं रह जाता । टूटता विश्वास, आक्रोश घृणा व अपराध में बदल जाता है । कोई भी मूल्य शेष नहीं बच पाता । इस स्थिति में

उनका भविष्य अंधकार गुमनाम सा हो जाता है । भविष्य बोध एक गुफा बन जाती है जिस तक पहुंचना मुश्किल व उद्देश्यहीन जान पड़ने लगता है ।

विकसित और विकासमान देशों में सामान्यत: और भारत में विशेषत: युवा अशान्ति पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि किशोर और युवा के सम्वेग भावना एवं वृत्ति और उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन स्थितियां ही उनके वर्तमान अशान्ति, युयुत्सा तथा विद्रोह के लिए एक लंबी सीमा तक प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कारण है । विकासमान देशों में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था भी युवकों की निराशा व कुंठा का कारण है क्योंकि वे समय व आर्थिक परिवर्तनों के साथ बदल नहीं सके । जबकि भारत और एशिया के अन्य अविकसित देशों में वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की स्थिति संक्रमण की है । तेज़ी से आधुनिकता की ओर बढ़ते देश पूरी तरह से अपनी परम्पराओं को छोड़ नहीं पाते हैं । नवीन मूल्यों व आदर्शों की प्रतिष्ठा स्थापित नहीं हो पायी है । यह एक रिक्तता की दशा है । इस रिक्तता के कारण युवकों के व्यक्तित्व का अस्थिर और असंगठित हो जाना स्वाभाविक है । परिणामत: युवा की अनियमतता, विश्रृंखलित प्रतिक्रिया, विभिन्न जीवन स्थितियों में अकल्पनीय आचरण असम्भावित नहीं है ।

आज के विकासमान देशों में से बहुत से देश वर्षों तक गुलाम रह चुके हैं । ऐसे देशों का लक्ष्य पहले देश की स्वतन्त्रता थी । इसके लिए उन्होंने देश में जन एकता, देशभक्ति की भावना पैदा की और अपने लक्ष्य तक पहुंचे लेकिन लक्ष्य की प्राप्ति के उपरान्त वह राष्ट्रीय एकता, देशभक्ति समाप्त हो गयी और स्थान पर खंडित दलगत, जातिगत, धर्मगत, भाषागत, प्रादेशिक, आंचलिक स्वार्थों ने ज़ोर पकड़ा और इस पृथकतावादी प्रवृत्ति का युवकों पर बुरा प्रभाव पड़ा । पदों की महत्ता बढ़ने लगी । देश का

लक्ष्य बदल गया । एक व्यापक राष्ट्रीय उद्देश्य के अभाव में युवाओं को सही दिशा नहीं मिल सकी । वे पतवारविहीन नौका के समान देश में गुमराह हो गये । प्रौढ़ समाज ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद योजनाओं का सिलसिला शुरू किया । जिसमें युवा वर्ग उपेक्षित हो गया । इन योजनाओं में कहीं युवा वर्ग की प्रतिष्ठा व उससे संबंधित समस्याओं को नहीं रखा गया । युवा कल्याण संबंधी तत्थ्यों पर सरकार ने ध्यान नहीं दिया । स्वतन्त्रता सेनानी न होने की वजह से उन्हें स्वतन्त्रता का फल भी प्राप्त न हो सका । समाज व राष्ट्र में अपनी उपेक्षित स्थिति को जीते हुए युवा वर्ग का दिग्भ्रमित होना आश्चर्य नहीं है ।

आधुनिकीकरण के फलस्वरूप विकासमान समाज में भौतिक उपलब्धियों को जुटाना ही जीवन का उद्देश्य हो गया है । भौतिक दृष्टि व्यक्ति तथा समूह दोनों के लिए ज़रूरी बन गयी है । "भौतिकता प्रतिस्पर्धा मतभेद की जननी है । समाज मुद्रा अभिमुख होता जा रहा है ।"[80] सामाजिक प्रतिष्ठा पैसे से जुड़ चुका है और इसी के चपेट में आकर युवा वर्ग कभी आक्रोशी हो उठता है तो कभी घृणा व अपराध कर बैठता है । भारत जैसे जनतंत्रात्मक देश में समाजवादी मूल्यों तथा वाणिज्यीकृत संचार व्यवस्था (रेडियो, टेलीविजन, पत्र-पत्रिकायें) के कारण सामान्य जन की आकांक्षाओं में समानता आ गयी है । सभी उच्च आकांक्षाएं रखने लगे हैं किन्तु इनकी पूर्ति के साधन सीमित लोगों को ही उपलब्ध हैं । यह कथन युवकों पर पूरी तरह फिट बैठता है । समानता के स्तर पर विषमता उन्हें कुण्ठीत व अपराध की ओर ले जाती है जिन्हें वे पा नहीं सकते, उसे मांगने से ज्यादा छीन लेने का विश्वास आक्रोशी प्रवृत्ति को ही उजागर करती है ।

आधुनिकी, ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी विस्तार का प्रभाव जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ने लगा है । आज का युवा इन तकनीक प्रभाव से ज्यादा प्रभावित है । उसमें ज्ञान, योग्यता, आलोचना तथा उनके विचार

और कार्य में वैज्ञानिकयुग की झलक है । पुस्तक भ्रमण व संचार के माध्यम से ग्रामीण सामान्य रूप से शहरी वेश-भूषा, आधुनिकी रहन-सहन को तेज़ी से अपनाते जा रहे हैं और आधुनिक बनने व कहलाने की अभिलाषा तीव्र होती जा रही है । किन्तु सीमित साधनों के कारण उनकी ये इच्छा पूरी न हो पाती । परिणामत: अतृप्त महत्वाकांक्षाएं उनमें निराश, कुंठा, क्षोभ व विद्रोह भर देती है । इसके विपरित पूर्ण विकसित देशों में कुंठा निराशा क्षोभ व विद्रोह भौतिक आकांक्षाओं के कारण नहीं बल्कि मानसिक शान्ति के लिए उत्पन्न होता है । दिनों-दिन बढ़ता युद्धों का भय, विनाशक, भयंकर हथियारों व दौड़ती जिन्दगी के ऊब से पैदा होते हैं ।

"पारम्परिक समाज में युवा की भूमिका नहीं के बराबर थी लेकिन आधुनिकीकरण की वर्तमान प्रक्रिया में विज्ञान और तकनीक ने ऐसी भूमिकायें प्रस्तुत की है, जिनके निर्वाह के लिए युवा ही उपयुक्त है । आधुनिक युवा अपनी शक्ति, सम्भावना और सार्थकता से परिचित है, किन्तु प्रौढ़ समाज युवकों की ऊर्जा को नहीं पहचानता और इसीलिए अन्तर पीढी संघर्ष (Intergenerational conflict) का जन्म होता है ।"81

आज हमारे देश में सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू में परंपरा और परिवर्तन, प्राचीनता और आधुनिकता में द्वन्द्व है । अग्रज पीढ़ी परम्परा से प्रतिष्ठित जीवन शैली की समर्थ है तो युवा पीढी आधुनिक, चमचमाता, ऐशो आराम की जीवन शैली की । फलत: जीवन साथी के चुनाव, उठने बैठने के तौर-तरीके, व्यवसाय का चयन, पारिवारिक स्वरूप, अवकाश, बिताने के ढंग, विवाहपूर्ण पवित्रता तथा यौन व्यवहार सभी प्रसंगों को लेकर इन दोनों पीढियों में रस्साकसी हो रही है । "पीढियों का अन्तर विकर्षण का [illegible] ता है ।"82 समाज की रचना और उसकी कुछ संस्थाओं में यु[illegible] चाहता है लेकिन प्रौढ उसे अपरिपक्व समझते हैं, जिसके प्र[illegible] में युवा छात्र की इच्छायें तृप्ति के अवसर न मिलने से कुण्ठीत हो जाती हैं । अभिभावकों के पूरानपंथी व आधुनिक

समाज की आवश्यकताओं में मेल नहीं खाती । यही कारण है कि भारतीय समाज के युवकों का आचरण प्रौढों की आलोचना और निन्दा का विषय बन जाती है । यह आलोचना व निन्दा युवकों का मार्गदर्शन न कराकर उन्हें आक्रोशी बना देती है । बहुतायत इसी आक्रोश के वशीभूत घर में अशान्ति फैल जाती है और युवक घर छोड़कर कहीं अनजाने जगह चला जाता है ।

आधुनिक नगरों में आर्थिक आवश्यकताओं के बोझ से दबा हुआ समाज विभिन्न प्रकार के धन्धों, व्यवसायों व उप-व्यवसायों में उस प्रकार व्यस्त हो गया है कि अपनी सन्तानों को वह स्नेह, सुरक्षा तथा संपर्क आदि नहीं दे पाता । जो पारम्परिक समाज में सरलता से प्राप्त हो जाता था । माता-पिता व बालक के बीच भावात्मक संबंधों का लुप्त होना आधुनिकी समाज की आवश्यक शर्त है । इस भावनात्मक रिक्तता के कारण युवा आधुनिकता की तरफ तेज़ी से कम उम्र से ही आकर्षित हो जाते हैं । इसके परिणाम में वे अच्छे बूरे का निर्णय नहीं कर पाते और अपराधी बन जाते हैं । साथ ही पीढियों में सन्देह, संकोच और विचार-वैषम्य उत्पन्न हो जाता है जो स्थिति को बदतर बना देती है । परिवार में विचार-विमर्श की सीमा में उपेक्षित युवा प्राय: कुण्ठीत व विद्रोह विध्वंसक बन जाता है । अस्तित्व प्रदर्शन का वह एक ही मार्ग उचित समझता है ।

यह भी स्वीकार करना होगा कि यदि समाज के प्रौढ़ व्यक्ति अनुशासनहीन, अशान्त, स्वार्थी, अवसरवादी, पद-लोलुप होंगे तो उसका प्रभाव युवा और युवा अशान्ति पर पडेगा, दल-बदल रूपी नेताओं ने अपना सम्मान घटाया है । अपितु किशोर के मन पर भी उसका दुष्प्रभाव कम नहीं पड़ता । वयस्क आचरण के पतन की दशा में किशोरों के मन में घृणा फैलने से रोका नहीं जा सकता । जनसंख्या की वृद्धि व शिक्षा के प्रसार की नीति के कारण छात्रों की संख्या निरन्तर बढती चली जा रही है । नये विद्यालयों में सहायक शिक्षक सामग्री, साज-सज्जा, भवन की कमी छात्रों

की संख्या में असाधारण वृद्धि, प्राध्यापकों की व्यवसायिक अदक्षता, छात्र व अध्यापक के रागात्मक संबंधों का अभाव आदि के कारण शैक्षिक स्तर दिनों दिन गिरता जा रहा है । शिक्षा मूल्य की वृद्धि की स्थिति गरीबों का शोषण करने लगी है ।

विश्वविद्यालयों का एक अपना ही रंग है । दिनों-दिन मार-पीट अनुशासनहीनता व हड़तालों ने शिक्षा का अर्थ बदल दिया है । लेक्चरर व रीडर भीरू बन गये हैं । उन्हें जितनी चिंता अपने वेतन की होती है उतनी पढ़ाने की नहीं और तो और इनमें चमचे पालने और गुंडागर्दी का नया शौक पैदा हो गया है । छात्रों के साथ भेद भाव रखनेवाले अध्यापक छात्रों में कुंठा, घृणा व आक्रोश को अत्यधिक बढ़ावा देते हैं । यांत्रिक कार्य-विधि के नाते आधुनिक शिक्षा निष्प्राण हो गयी है । छात्रों को दी जानेवाली उपाधियों की संख्या जितनी ही बढ़ती जा रही है उसी अनुपात में रोजगार की दृष्टि से उपाधियों की उपयोगिता घटती जा रही है । अत: विश्वविद्यालयों के छात्र अपने भविष्य को अनिश्चित और अन्धकारपूर्ण अनुभव करते हैं । संदिग्ध भविष्य कभी अनुशासन की डोर में बांध नहीं सकता ।

हमारे विश्वविद्यालय अपने उसी पुराने ढांचे व व्यवस्था तथा कार्यक्रम को बनाये हुए हैं जिनको उन्होंने आज से सौ वर्ष पहले बनाया था । समाज के साथ बिलकुल नहीं बदले । उनकी प्रत्येक गतिविधि जैसे, परीक्षा प्रणाली, पारम्परिक पाठ्यक्रम, आज्ञाकारिता, विनयशीलता, गत्यात्मकता का अभाव, शिक्षण और प्रशासनिक अधिकारियों का वर्गीकरण, रूढिगत नियम, प्रयोग व शोध में साम्राज्यवादी स्वार्थ और नौकरशाही की गंध मिलती है जो प्रगतिशील व जनतन्त्रीय छात्रों को दबाने के लिए काफी है।

स्कूलों, कालेजों व विश्वविद्यालयों के प्रांगण में सभी प्रकार के छात्रों का आगमन व समान व्यवहार एकसा मिलता । उस उद्देश्यों के पीछे विषमता का भंवर व्यापक होता है । परिणामत: उच्च व निम्न वर्ग के

बीच भेदभाव स्पष्ट उभरकर आ जाता है । होता यह है कि जब निम्न वर्ग का युवक उच्च वर्ग के युवकों की ऐयाशी व रहन-सहन को निकटता से देखता व परखता है तो उसमें कुंठा घर कर जाती है । वह यह मानने को तैयार नहीं होता कि उसकी गरीबी शाप है, बल्कि वह इन अमीरों को अपना शोषक मान बैठता है । उसकी कुंठा व अपराध करने के लिए प्रेरित करने लगती है । साथ ही स्वार्थ में डूबे अध्यापक वकर्मचारी वर्गों का भेद प्रदर्शन उसे विद्रोही बना देता है ।

खेल-कूद, व्यायाम मनोरंजन केन्द्र तथा उचित होस्टल, मेस व ग्रन्थालय, वाचनालय के अभाव में भी छात्रों को क्रुद्ध कर देते हैं ।

शिक्षा का संबंध दिनों-दिन रोजगार से दूर होता जा रहा है और उतनी ही मात्रा में डिग्री ग्रहण कर छात्र रोजगार के लिए भटक रहे हैं । प्रशासन व व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार युवकों के मनोबल तोड़ने में जरा भी हिचक महसूस नहीं करती है । बुनियादी आवश्यकताओं के अभाव में नौकरी की तलाश में जब युवा दर-दर की ठोकरें खाता है तो उसका दिलोदिमाग सुन्न हो जाता है । उसे सरकार व समाज कोई सान्त्वना व धीरज बंधा नहीं पाती वह या तो टूट कर बिखर जाता है या फिर अनेश्वर की जिम्मेदारी को समझते हुए राष्ट्र विरोधी कार्य करने के लिए उग्र हो जाता है । भ्रष्ट नेताओं का ऐशोआराम उसे अपने शरीर पर कोड़े की भांति चुभता है जिसकी प्रतिक्रिया में वह कभी प्रशासनिक अधिकारियों का गला दबा देता है तो कभी प्रधान मंत्री का खून ।

"व्यवस्था के शिखर पर बैठकर जग का मुजरा लेनेवाले और .. सुविधा के लिहाज से उनका सुर मिलानेवाले लोगों के लिए बहुत आसान है कि सारे अशुभ और आशंकित का दोष युवाओं के सिर मढ़ दिया जाय, लेकिन नौकरियों के अभाव का शून्य पैदा करके युवा दिमागों को सुन्न करने की जिम्मेदारी किसकी है, कॉलेज विश्वविद्यालयों के लड़कों को चुनाव

में इस्तेमाल करने के बाद उनकी राजनीतिक दिलचस्पियों को धिक्कार के चश्मे से देखनेवालों को शर्म क्यों नहीं आती ? इन्हें कौन बतलायेगा कि भारतीय युवा की पहली जरूरत फिलहाल वालीबाल, कत्थक, बांसुरी या भारत दर्शन की रेल यात्रा नहीं, नौकरी है या वह दिशा है जो उन्हें असामाजिक होने के कोप से बचाये ।"[83]

यह कहना गलत है कि युवा विवेकहीन है, तोड़-फोड़ व उपद्रव इसका प्रमाण है । सच तो यह है कि आज का युवक बहुत ही समझदार हो गया है, व्यवस्था कहाँ उसके खिलाफ षड्यन्त्र रच रही है उसे इसकी खबर मिल चुकी है । नेता व अभिनेताओं का चरित्र व उनकी करतूतें अब उससे छुपी नहीं रही है । आदर्शों के आड़े स्वार्थों की पहचान तीव्र हो गयी है। कारण कि वह शासन व व्यवस्था के प्रति उसका मोह नहीं रहा । अन्याय व भ्रष्टाचार की ओर अंगुली उठाने की हिम्मत धीरे-धीरे जुटाने लगा है जिसकी उपेक्षा करने की ताकत अब व्यवस्था व शासन में नहीं रही । उसकी मांगों पर बिना ध्यान दिये शासन का बना रहना संभव नहीं रहा है । शान्ति ऊर्जा व दिमागी प्रौढ़ता व निश्चित उद्देश्य से ही इन्कलाब आता है और ये सारी शान्ति आज के युवा में मौजूद है । अत: उसका भविष्य उज्ज्वल है । इसके लिए लड़ाई जारी है, जारी रहेगी । आज व्यक्तिगत स्तर पर है तो कल सामूहिक स्तर पर होगी । "नयी पीढ़ी बहुत समझदार है इशारों से बात समझती है, मगर शर्त है कि उसे सही समझाया और बताया जाये ।"[84]

"क्या दिया तुमने ? महज जयहिन्द
फक्त फाकाकशी, आंकडे, बस आसमानी आंकड़े
और गुत्थम गुत्थई राशन की खड़ी कतारे
बेरोजगारी -- "

-- कैलाश प्रसाद चौरसिया

"जब भी मैंने उनसे कहा कि देश शासन और राशन ....
उन्होंने मुझे रोक दिया है,
अक्सर वे मुझे अपराध के असली मुकाम पर
अंगूली रखने से मना करते हैं ।"[85]

-- धूमिल

क्योंकि "यदि जीवन में आस्था नहीं रखी जाए तो वर्तमान और भविष्य के आगे प्राणार्पण के सिवा और कोई विकल्प नहीं रह जायेगा -- हमें इस सत्य की पूजा अर्चना करनी होगी जबकि यह भी एक सत्य अलग से है कि निराशा और असफलता शनै: शनै: हमारी प्राणशक्ति का शोषण करती रहती है और कुछ लोगों का अन्तत: मृत्युपथ का यात्री बनना पड़ता है, समय से पूर्व ।"[86]

प्रथम अध्याय

संदर्भ सूची

1. धर्मयुग - युवा विशेषांक, नवंबर, 1983, पृ॰ 6

2. Adult Psychology - P.11, Bischoj Leojord,
   New York, Harper & Row 1976

3.

4. Interpreting Personality Theories - P.15,
   βischoj L.Jung

5. " A youth is defined as a person from the age of Adolescence to full maturity. As a collective term youth refers especially to young persons in high school and college age ". P.3, Aspirations of Indian Youth - Sudarshan Kumari

6. - वही - प॰ 3

7. " To make the adolescent period even more difficult the phase is viewed by many adults as a period of maladjustment to home and society ". - Understanding Adolescence - James F.Adams, P.3

8. बाल मनोविज्ञान - बाल विकास - डॉ० प्रीति वर्मा, पृ॰ 378

9. At the time when the child begins to feel less need for the security of familial supervision and protection; at the time when his physicalogical and harmonal development begin to approximate adult maturity; and lastly at the time when his psychological maturity moves him in the direction of becoming responsible in society. - P.3 - Understanding Adolescence - James F.Adams

10. Chronologically, adolescent youth group is made up of persons 12-24 years of age, psychologically of those terminating a prolong period of infancy, sociologically of those who are trying to bridge the gap between dependent childhood and self-sufficient adulthood - Landis -1952, Adolescence and Youth, Megraw-Hill Book Company, New York.

11. हिंदी शब्द सागर - डॉ० श्याम सुंदर दास - पृ० 425

12. Youth in Revolt, Sagar Ahluwalia, P.3.

13. The period of Adolescence as second birth of an individual the birth into adulthood in which many psychological changes take place with increased emotional awareness and deep seated spiritual and idealistic developments - Aspirations of Indian Youth, Sudershan Kumari, P.4

14. बाल मनोविज्ञान : बाल विकास - डॉ० प्रीति वर्मा, डॉ० डी एन श्रीवास्तव, पृ० 381

15. - वही - पृ० 377

16. बालमनोविज्ञान : बाल विकास - डॉ० प्रीति वर्मा, डॉ० डी०एन० श्रीवास्तव, पृ० 387

17. बालमनोविज्ञान : बाल विकास - डा० प्रीति वर्मा, डा० डी॰एन॰ श्रीवास्तव, पृ॰ 388

18. Adolescence has been considered from a variety of viewpoints. In the main, these viewpoints have approached the subject from a consideration of physicalogical and harmonal development, social influences, economic determination or emotional development. - Understanding of Adolescence; Second edition, James F.Adams, P.25

19. Psychology of Adolescence, T.Jersild, P.574

20. For a large number of young people this is a period of stress and strain. There is a marked aggeessiveness; the authority of adults, the values established at home are challenged and questioned, constructiveness, inventiveness, hero-worship, romance and adventure, sensitiveness and sense of human sympathy are the main characteristics of this age. - Aspirations of Indian Youth, P.5, Sudershan Kumari

21. - वही -

22. समाज मनोविज्ञान - हंसराज भाटिया - पृ॰ 161

23. Social development is the process by which an individual is led to develop actual behaviour according to the standards of his group.

24. बाल मनोविज्ञान : बाल विकास - डा० प्रीति वर्मा, डा० श्रीवास्तव - पृ॰ 175

25· Young people in modern society are constructively subjected to confusion of values all round them. There is a vast difference between the values taught at home and in the scriptures and the values taught outside the home by the educational institutions, the press, the radio and the political organisations which lay emphasis on democratic values and social justice.

Aspirations of Indian Youth, S.Kumari, P.6

26· अमेरिका सभ्यता - मेक्स मर्नर - 1963, पृ· 206

27· हिंदी उपन्यास के तीन दशक - पृ· 424

28· विद्रोह और साहित्य पृ· 101

29· - वही - पृ· 66

30· जब समाज के सबसे उच्च वर्ग में भ्रष्टाचार की प्रतिष्ठा है तब छोटे लोगों से शुद्ध रहने की आशा नहीं की जा सकती - अमेरिकी सभ्यता - मर्क्स लर्नर - पृ· 244

32· विद्रोह और साहित्य - पृ· 42

33· आधुनिक वात्सायन - डा० विजेन्द्र नारायण सिंह - पृ· 4

34· Cinemas are the most common way of spending free time among the modern youths. The cinema habit among the youths is practically universal. The chief theme emerging among the modern youths is that love and romance. The scenes of adventure, travel,happy life, wealth and luxury, etc. attract the minds of youth. Even the poor people too want to have things of luxury which they do not have.- Youth in Modern Society, L.S.Mehra? P.125 to 126

35• रघुवीर सिन्हा, साक्षात्कार, सितंबर-नवंबर, 1979
"शहरी युवा की दिशाहीनता और आक्रोश" पृ• 117

36• मिथक, कुमार विमल

37• The young people in India are very much emotionally dependent on their parents. They completely lack what is known as emancipation from parents is psychology. They generally avoid independent judgment and decision-making. They hardly have any ego ideal whom they should emulate. - P.10, Aspirations of Indian Youth, S.Kumari

38• "अमेरिका में युवक को उन्नति के अवसर जितने अधिक मिलते हैं, उतनी ही महत्वाकांक्षा भी उनमें है, पर इसी के साथ चिन्ता और व्यग्रता और विफल होने पर व्यक्तित्व का टूटना भी उतना ही अधिक होता है।"
अमेरिकी सभ्यता - मैक्स लर्नर - पृ• 204

39• It is the expression of our nature in our modes of living and thinking in our everyday intercourse in art, in literature, in religion, in recreation and engagement - Macluer and Page, Mac Millan & Co. Ltd., London, P.490

40• " Culture is that complex whale which includes knowledge, belief, art, morals, law, customs and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society" - E.B.Tylor, Primitive Culture.

41• The fullest development of human potential, enjoy of life and tolerance of human frailty are all parts of the counter-culture message - Understanding Adolescence, S.E. Edition - James F.Adams, P.353

42. अमेरिकी सभ्यता - मेक्स लर्नर - 1963
पृ॰ 204 से 215

43. भारतीय युवा आक्रोश - प्रो० सत्यदेव सिंह - पृ॰ 34

44. The young have been always restive and looking for a change, or something new. Social changes and reformations have come into being due to the zeal and efforts of the young. The old mostly are conservative and sticky, always opposed to change and deluding the young in its own senile interest. Society has been held in a steel frame of customs, conventions and moral codes by tyrannical elders who never suffered any swerve.elders. the accepted norms. The protests of the young gap was minimal and imperceptible. Mirror, July, 1984, P.35.

45. The young have their own preferences, the jazz and disco in music. Dress in contrast colours. Pant and the guru shirt, the jeans and the jersey or the unisix wear flowing hair, unruly beard and beads around the neck are the insignia of the angry youth. They can easily pass off for a twentieth century fakir, neo-guru or a modern mystic. - Mirror, July, 1984, P.35

46. The modern youth sometime uses code language. Under the impact of western culture and civilization, a person having ideas of the olden times often pulled up by his friends 'Deshi', 'Magheiya' and 'Lurkat' are the terms used by some of the yough of today while addressing someone who is not modern in his outlooks and ideas - Youth in Modern Society, P.113, L.S.Mehra.

47. अमेरिकी सभ्यता - मेक्स लर्नर - पृ. 9 से 12

48. भारतीय युवा आक्रोश - प्रो० सत्यदेव सिंह - पृ. 37

49. नलन्दा विशाल शब्द सागर - श्री नवल जी - पृ. 848

50. मानक हिंदी कोष - श्री रामचन्द्र, पृ. - चौथा भाग

51. The young and old are all port of a social cycle. A generation comes up every 30 years or so. Every father will expect his son of follow the accepted view and ways unless he himself is a radical and retains the fire. In case the son is expresed to new thoughts and ideas, he is very likely to move away from tradition, - Mirror. July, 1994 P. 39.

52. In all countries, it is youth, who have more radically influenced by social changes.

Mirror. July, 1984 P. 39

53. भारतीय युवा आक्रोश - सत्यदेव सिंह - पृ. 1

54. Youth movement was the term used ofter warld war I for organized youth groups who began to seek political influence through various planned compaigns. In Europe fasist and communist Governments often directed youth movement. Some of these allained considerable power.

Youth in Revolt P. 13
Sager Ahlewa

55. आज का विद्रोह युद्ध की घोषणा नहीं है तथाकथित विश्वास के प्रति अविश्वास ... घोषणा है ।
विद्रोह और सा... - पृ. 66

56• परम्परा कितनी भी शक्तिशाली और जीवंत क्यों न हो बदलते हुए जीवन के लिए अनुपयोगी हो सकती है ।
पृ• 160

57• Tyler G: The International Socialist youth Movement, American Socialist quarterly, New York Wenter 1933 P. 32
उद्धृत - भारतीय युवा आक्रोश - पृ• 1

58• S.D.S. "Sozialiotischen Deutschen Studentonbudd"

60• The Berkeley Revolt, Calijornia

61• The National Union of French Students.

62• National Association of Medical Students.

63• The National Student Association.

64• The Union of Universily Instructors.

65• भारतीय युवा आक्रोश - सत्यदेव सिंह - पृ• 6

66• -"- पृ• 19

67• Tyler, G: The International Socialist Youth Movement, American Socialist Quarterly, New York, Winter. 1933. P.32

68• भारतीय युवा आक्रोश - सत्यदेव सिंह - पृ• 12

69• भारतीय युवा आक्रोश में उद्धरित - सत्यदेव सिंह - पृ• 7
" This incident was not only unprecedented in the history of England, it marked a turning point in the politics of the Country. "
B.Das Gupta. Students politics in the West Frontier, Calcutta, Sept. 14, 1968 P.8.

70• A History of the student Movement in India, Dinker - Sakrikar, Bombay, 1946, P. 33.

71• भारत युवक समाज 2• यूथ कांग्रेस 3• समाजवादी युवाजन सभा, 4• नेशनल यूथ आर्गनाइजेशन 5• वर्ल्ड यूनिवर्सिटी सर्विस, 6• इण्डियन असेम्बली यूथ 7• यूथ हास्टेल एसोसिएशन 8• भारत स्काउट एण्ड गाइड्स व स्टूडेण्टस एण्ड यूथ केम्प प्रोग्राम आफ भारत सेवक समाज 10• सर्विस सिविल इण्टर नेशनल, दि यंगमैन क्रिश्चियन एसोसिएशन 12• कांग्रेस सेवा दल, 13• भारत सेवा दल 14• इण्डियन यूथ फेडरेशन 15• अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद 16• आल इण्डिया राष्ट्रीय सेवक संघ ।

72• अस्तित्ववाद - तात्विक विवेचन - पृ• 58

73• - वही - पृ• 279

74• - वही - पृ• 226

75• विवाह और नैतिकता - बर्ट्रेंड रसेल - पृ• 70

76• अस्तित्ववाद - तात्त्विक विवेचन - पृ• 206

77• विद्रोह और साहित्य - सम्पादक - नरेन्द्र मोहन देवेन्द्र इस्सर - पृ• 83

78. अस्तित्ववाद - तात्विक विवेचन - पृ.

79. विद्रोह और साहित्य - पृ. 124

80. भारतीय युवा आक्रोश - पृ. 67

81. - वही - पृ. 68

82. शिक्षा और संस्कृति - जैनेन्द्र कुमार - पृ. 44

83. रविवार - जनसत्ता - 3 फरवरी, 1985 - पृ. 1

84. धर्मयुग - 8 जुलाई, 1984, पृ. 11

85. संसद से सड़क तक - धूमिल - प.

86. रिहर्सल - हिमांशु श्रीवास्तव - पृ. 226

दूसरा अध्याय

कथित दशक के प्रमुख उपन्यासों का एक सर्वेक्षण :

युवामानस के संदर्भ में :

उपन्यास समाज तथा व्यक्ति के बाह्याभ्यान्तर की अनुभव सम्पदा को उसकी समस्त वास्तविकता, परिवेशगत जीवन्तता तथा ऐतिहासिकता से जोड़कर प्रस्तुत करता है । ऐसी स्थिति में जो युग जितना ही जटिल, आवेगपूर्ण, संवेदनशील तथा परिवर्तन के आग्रह के प्रति प्रतिश्रुत होता है, उस युग की रचना उसी अनुपात में विद्रोही हो जाती है या रूढ़ि और परम्परा के उन मूल्यों के खिलाफ अपने पक्ष को सुदृढ करती है जो सामाजिक संदर्भ में कहीं नहीं जुड़ते । अत: विद्रोह का शाश्वत मूल्य अपने समसामयिक संदर्भ में उपयोगी परिवर्तन लाने के लिए विद्रोह के नये हथियारों का चयन करता है । विद्रोही मानव नये मूल्यों का समर्थक होता है । विद्रोह करने की शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्राय: युवा व्यक्ति में ही अधिक मिलती है । आदर्शों, सामाजिक व्यवस्था व संस्कार पर प्रहार करनेवाला युवा मानस जब अपने जीवन के लिए संघर्ष करता है तो उसके सामने गत पीढ़ी की मजबूरी, समय की उलझन व पारम्परिक भावों का बाधक रूप में उभरना अपरिहार्य है जिन्हें वह परास्त करने की कोशिश में स्वयं टूटता हुआ पुरानी मान्यताओं और विचारों को समय के परिप्रेक्ष्य में तोड़ता-मरोड़ता हुआ पुरानी, बजुर्ग पीढ़ी से बगावत कर बैठता है । "मनुष्य जब दासता की मनोवृत्ति से उबरने के

लिए प्रयत्नशील होता है और समानता की मनोवृत्ति पर अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर संघर्षरत होता है, तभी विद्रोह की नींव पड़ती है । अधिकारों के प्रति सजगता, संघर्षशील प्रवृत्ति और मुक्ति-कामना विद्रोह की आधारभूत विशेषताएं हैं । इस संघर्षशील और मुक्ति-कामना को तंत्र की भयावह शक्ति से टकराना पड़ता है और इस टकराहट के दौरान ही यातना जन्म लेती है जो विद्रोह को वैयक्तिक से सामूहिक बना देती है ।"[1] यह कथ्य अपनी सम्पूर्णता के साथ आज के विद्रोही मानस को आत्मसात् किये हुए है ।

0 आठवां दशक और उपन्यास :

आठवें दशक के उपन्यास-लेखन में विशेषकर विद्रोही मानस की पहचान को उकेरा गया है । युवा-वर्ग को उसकी लगभग समस्त समस्याओं के साथ आधारभूत धरातल पर चित्रित करने की कोशिश की गयी है । ऐसा भी नहीं कि कोई ऐसी "विशेष बात" जो इस दशक के उपन्यासों में कही गयी हो और वह छठे या सातवें दशक में नहीं लिखी हो बल्कि फर्क बस इतना है कि जो बात पिछले दशकों में गौण, बीजरूप में, सुस्त व खामोश थी वही युगीन विचारधारा के अनुकूल स्पष्ट और कहीं-कहीं गहरे बदलाव के साथ इस दशक में उभरी है । अन्तरण संबंध व परिस्थितियां जो उपेक्षित थीं, इस दशक में यथार्थ से जुड़कर सार्थक हो गयी हैं । "निश्चय ही आठवें दशक का लेखन अधिक आक्रमक सामाजिक जीवन की विसंगतियों के कारण आक्रोश से भरा हुआ तथा युवा-पीढ़ी की जुझारू मानसिकता और उस मानसिकता को तोड़ने वाली सत्ता के विभिन्न चेहरों की पहचान में सजग और सतर्क है । इसका आक्रमक होना स्वाभाविक भी है । जब पूरा समाज नये क्षितिज के निर्माण की तमन्ना के कुचले जाने से आक्रोश से भरा हुआ ही नहीं बल्कि आक्रमक भी हो गया है तब उस दशक के लेखन की कोई दूसरी नियति हो भी नहीं सकती।"[2] आठवें दशक का परिवेश इस बात का साक्षी है कि उस समय भारतीय राजनीति का क्या रूप था । टामस मान् के अनुसार चूंकि मानव-नियति अपने आपको

राजनीतिक शब्दावली में प्रकट करती है, हम हमारे सोच को राजनीति से अलग नहीं कर सकते ।

इस दशक का लेखन अनुभव के प्रामाणिक यथार्थ से नियोजित है, जो विचारों की प्रगति का द्योतक है । आज का पाठक न तो बनावटी या काल्पनिक भाषा या कथानक का आग्रह करता है न ही लेखक ऐसी रचना के सृजन की इच्छा ही रखता है । यह समय की मांग है और इसी की पूर्ति करनेवाली रचना साहित्याकाश की उच्चता ग्रहण करती है । नारी के विभिन्न आयामों को आधुनिक युग के बदलते परिवेश में रेखांकित करने का प्रयास आठवें दशक के उपन्यासों में नारी की समस्या शारीरिक तृप्ति, भोग्या या दासी की नहीं बल्कि आज के संदर्भ में बदलते हुए अनुभव की व्यथा-कथा है । नैतिक जामा पहनने या पहनाने की कला आधुनिक नारी के लिए अनुपयुक्त हो गयी है । नितान्त व्यक्तिवादी उपन्यासों के भीतर भी कहीं न कहीं व्यक्ति और सामाजिक परिवेश का द्वन्द मिलता है । युवा पीढ़ी व बजुर्ग पीढ़ी का संघर्ष घर से लेकर बाहर (व्यवसाय) तक निरंतर जारी है । सामाजिक जड़ता मानवीय सम्बन्धों और स्थितियों को ही अपरिवर्तनीय अवस्थाओं में लाकर खड़ी करती है । यही क्रिया-प्रतिक्रिया किसी न किसी रूप में इस दशक के लेखन की कथा-वस्तु बन गयी है । अकेलापन, संत्रास, कुण्ठा और सत्ता की स्थितियों के बीच असंगतियां, निर्वासन आदि के नारे स्वयं ही आठवें दशक की परिस्थिति में जुझारू प्रवृत्ति में परिवर्तित होकर उग्र हो गये हैं । अतः आठवें दशक का लेखन अपनी गति के लिये नहीं बल्कि अपनी स्थितियों के लिए महत्वपूर्ण है । "कथ्य और घटनाक्रम की भारतीय वास्तविकता को उपन्यासकार न केवल देख समझ रहा है बल्कि इसके जीने की प्रतिक्रिया को भी इसी स्पष्टता के साथ सामने ला खड़ा कर रहा है । इस दृष्टि से निश्चय ही समकालीन उपन्यास तीस वर्षों में आज़ाद भारत की तमाम स्थितियों और अन्तर्विरोधों के दस्तावेज हैं । सही है कि इसमें कुछ छोटे और कुछ बड़े हैं, कुछ केन्द्रीय और कुछ क्षेत्रीय हैं । कुछ महानगरों की तरह जटिल हैं और कुछ मज़दूर-जिन्दगियों की तरह सरल और संगठित हैं ।"[3]

प्रगति शब्द हर दशक या यह कहें कि हर क्षण अपने अर्थ को बदल रहा है । जहाँ भी जिस किसी भी वस्तु को माध्यम बनाकर यदि इस शब्द का अर्थ खोजें तो यही परिणाम हाथ लगेगा कि प्रगति के परोक्ष में निर्माण नहीं अपितु विनाश की महाकाया विकसित हो रही है । मशीनी युग ने मानव के हाड़ को भी मशीनीकृत कर दिया है । स्थिति इस स्तर तक भी पहुंच चुकी है कि प्रकृति रचित मानव और मानव सृजित मशीन में मूल्यांकन की दृष्टि से मशीन उससे बहुत आगे है । आधुनिक जीवन के खौफनाक, दमघोटू अकेलेपन ने मानव को जब-जब ऊब पैदा किया तब-तब यही मानव अपने अस्त होते हुए अस्तित्व के लिए संघर्ष करता रहा । इस प्रक्रिया में आठवें दशक के साहित्यकारों का भी अपना विशेष योगदान रहा है । "इस दशक का साहित्यकार मानव अस्तित्व के लिये एक भयानक आत्म-संघर्ष प्रकट करता है तथा उसमें एक संघर्ष चेतना भी देखी जा सकती है ।"[4]

भारत के स्वतंत्र होने के बाद एक स्वतंत्र मानस का जो मोह जनता में अंकुरित हुआ था वे सत्ता के हस्तान्तरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सका । अंग्रेजी शासकों और भारतीय शासकों की नीतियों में ऐसा कोई विशेष फर्क महसूस नहीं हो पाया जिससे यह जाना जा सके कि हम एक स्वतंत्र देश के निवासी हैं । नये सिरे से देश का विकास होने के बावजूद भारतीय मानस आज भी उसी त्रासदी से ग्रस्त है जो विकास पूर्व थी । राजनीति कुछ ही नेताओं के हाथ का खिलौना भर रह गयी । ऐसे में मोह-भंग, कुण्ठा, निराशा, विद्रोह आदि आक्रोशी विचारों को उपजने का अनुकूल वातावरण मिलता गया और लगभग सातवें दशक के बाद आज तक इनकी फसल अपनी पूर्ण समृद्धि लिये लहलहा रही है । "ये दो बातें मोहभंग की स्थिति हैं, जिससे लोकमानस भी त्रस्त हो उठा है । सत्ताईस वर्षों की आज़ादी के उपरान्त आज देश एक त्रासद मोड़ पर खड़ा है । राजनीतिक मान-मूल्य धाराशायी हो गये हैं । अतः आठवें दशक में पहले की निरीहता आत्महीनता, दब्बूपन, निरस्तता के स्वर सक्रिय आक्रोश, घृणा-आक्रमकता, तीखे-तराशे व्यंग्य में बदल गये हैं ।"[5] हिंदी साहित्य की लगभग हर विधा

में राजनीति के इस आक्रोश को व्यक्त किया गया है । घृणा और कुण्ठा से आक्रान्त निम्न वर्ग भी राजनेताओं को अपने स्तर की अश्लील या भद्दी गाली देने से भी बाज नहीं आता । यह वर्ग भी इन नेताओं की करतूतों से अनभिज्ञ नहीं है, जब जगदम्बा प्रसाद दीक्षित के उपन्यास "मुरदाघर" का एक पात्र यह कहता है कि -- "तुम लोग चोर .....सब के सब चोर ..... तुम चोर ..... साला तुम्हारा मिनिस्टर लोग चोर ..... साला तुम सबका पइसा खाता ..... ।"[6] ये संवाद भारत की भ्रष्ट राजनीति और टुच्चे राजनीतिज्ञों का पर्दाफाश करने के लिए काफी है ।

इस तरह स्पष्ट है कि इस आठवें दशक का लेखन अपने आप में सशक्त व नवीन जीवन-मूल्यों का आग्रही है । इस दशक के उपन्यासों में युवा को पिछले दशकों की अपेक्षा ज्यादा केन्द्रीय भूमिका मिली है जिसे आगे कुछ चुने हुए उपन्यासों के विश्लेषण के माध्यम से देखा व समझा जा सकता है ।

आठवें दशक के चुने हुए उपन्यास : एक अनुशीलन :

1. अपना मोर्चा - काशीनाथ सिंह

आज़ादी के आस-पास पैदा होनेवाली वह पीढ़ी जो आज युवा कहलाती है कालेजों और विश्वविद्यालयों में पढ़ती हुई किस प्रकार अपने असंतोष, आक्रोश, दु:ख-दर्द और अकेलेपन के साथ मौजूदा व्यवस्था के खिलाफ लड़ रही है, , यही उपन्यास का कथ्य है । सुविधा ही नहीं सार्थकता के लिए भी सन् 1967 ईसवी में संपूर्ण उत्तर भारत में होनेवाले भाषा आंदोलन को, जिसका नेतृत्व पूर्वी उत्तर प्रदेश के छात्र नेताओं ने किया था । "अपना मोर्चा" की भूमिका में लिखा गया है कि -- "यह पहला वक्त था जब छात्र शक्ति एक महत्वपूर्ण मसले पर संघटित होकर उतर सकी थी ।"[7]

कथाकार के लिए "अपना मोर्चा" के छात्र और उनका आन्दोलन मात्र तमाशा नहीं उनके जीवन के अनिवार्य अंग हैं । उपन्यास में प्रारंभ से अंत तक विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाले छात्रों की शिक्षा के प्रति असंतोष व उसके कारण को बताया गया है । विश्वविद्यालय में पढ़नेवाले छात्रों के प्रति आम लोगों की धारणा आवारा, मूर्ख, लफंगे, कामचोर की है । लेखक यही बात उपन्यास में ज्वान के माध्यम से व्यक्त करता है । छात्र पढ़ाई के प्रति इसलिए श्रद्धा नहीं दिखाते हैं कि मौजूद शिक्षा उनके जीवन के वास्तविक प्रश्नों का समाधान नहीं प्रस्तुत कर पाती है । छात्र अपने भविष्य के प्रति आशावान नहीं है । वे समाज में फैले अत्याचार, भूख, गरीबी जैसे अपने वास्तविक जीवन की समस्याओं का समाधान ढूंढने में व्यस्त हैं । ये प्रश्न उन्होंने बराबर परेशान करते रहते हैं । उनकी मुख्य समस्या रोज़गार की है । ऐसी शिक्षा जो रोटी नहीं दे सकती उसको प्राप्त करने से क्या फ़ायदा, अध्यापक तो पढ़ायेंगे ही, क्योंकि उन्हें वेतन मिलता है । परन्तु हमें क्या मिलता है सिवाय परेशानियों के । छात्रों की अनुशासनहीनता, आवारापन, लफंगापन तथा कामचोरी के पीछे मानसिक अशान्ति छिपी हुई है । आक्रोश, मानसिक हलचल, दिशाहीनता आदि सबकी अंतिम परिणति युवा आन्दोलन है । वे अपने असंतोष को व्यक्त करना चाहते हैं । व्यवस्था के विरोध में कुछ करने की आतुरता कुछ ज्यादा हो जाती है और इसी जल्द-बाजी में छात्र अपने आन्दोलन को सही दिशा नहीं दे पाते और न ही सही नेता का चुनाव ही कर पाते हैं । राजनीतिक नेता छात्रों की इसी स्थिति का उपयोग करने का प्रयत्न करते हैं । फलत: आन्दोलन का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में चला जाता है जो छूट या सुविधा के लिए आन्दोलन करते हैं । ये नेता दिशा-हीन छात्रों को गलत राह पर ले जाते हैं और अपने स्वार्थी भावनाओं को सर्वोपरि रखते हैं । यही कारण है कि अपने पैसों पर छात्र मीटिंग करवाते हैं । आन्दोलन का विषय भी ये ही स्वार्थी नेता तय करते हैं । गरीब शोषित युवक जो आन्दोलन करने के योग्य नहीं हैं, इससे दूर अपनी पढ़ाई अपने भविष्य के प्रति चिन्तित हैं । पहले छात्र आन्दोलन का विषय होता है "अंग्रेज़ी भाषा का विरोध, जो छात्रों की मूल समस्या से जुदा है ।" राष्ट्र

की समस्या भाषा नहीं है क्योंकि कोई न कोई भाषा सभी के पास है। लेकिन कपडे, मकान व रोटी सभी को नहीं मिलता। इसके बारे में आन्दोलन करना चाहिए। आन्दोलन उन्हें करना चाहिए जिन्हें गरज हो। लेकिन जिन्हें गरज है वे चुप बैठे हैं और जिनको नहीं है वे आगे हैं। आन्दोलन तीव्र रूप से सड़कों पर शोर मचाता हुआ चलता है। आन्दोलन में खेतों की फसल नष्ट होती है जिससे कृषक नाराज होते हैं। दूसरी तरफ अनुशासन और शांति के नाम पर पुलिस जुलूस को अपने मोर्चे पर ले जाकर छात्रों की जमकर पिटाई करती हैं। कईयों को गिरफ्तार करती हैं। कोई भी भागते हुए छात्रों की सहायता नहीं करता, क्योंकि लोगों की नज़र में ये छात्र आवारा, लफंगे व कमजोर हैं "ये लड़के आज होते हैं और कल उड़ जाते हैं। इनका भरोसा क्या ? फिर क्यों फंसे इस झंझट में।"

अपने आन्दोलन की इस घोर पराजय को देखकर युवक हताश हो जाते हैं उनको अब एक सही मार्गदर्शक नेता की तलाश है। ऐसी स्थिति में एक राजू नामक युवक सामने आता है और इस बार का आन्दोलन पिछली बार की तरह असफल नहीं बल्कि सुनियोजित योजना के अनुसार चलता है। विषय, भाषा ही है लेकिन उसकी व्याख्या अलग है। भाषा अर्थ हिंदी या अँग्रेज़ी नहीं, भाषा का अर्थ हिंदी या अँग्रेजी नहीं, भाषा का अर्थ जीने की पद्धति, जीने का ढंग, जनता की भाषा, जनतांत्रिक अधिकारों की भाषा, आज़ादी की भाषा, व्यवसाय की भाषा तथा आजादी और सुखी जिन्दगी की हक की भाषा है।

लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से देश में समय-समय पर होनेवाले छात्र आन्दोलनों की दिशाहीनता का चित्रण किया है। विश्वविद्यालयों में अधिकारियों तथा अध्यापकों के बाध्यतारहित और स्वार्थभरे व्यवहार का चित्रण भी विश्वविद्यालयों की वस्तुस्थिति का द्योतक है। प्रोफेसर ऐसे बुद्धिजीवियों के प्रतीक हैं जिनको समाज में सही पहचान नहीं है। सत्ता अपने बल और अधिकार से उनको दबाकर अपमानित कर रही है। अंत में

वे भी अपने कलम के बल पर मोर्चा लेने का निश्चय करते हैं । वे यह बताना चाहते हैं कि कलम में कितनी शक्ति है ।

2. रेत की मछली : कान्ता भारती

"रेत की मछली" शीर्षक से ही उपन्यास की थीम स्पष्ट हो जाती है । यह सभी जानते व मानते हैं कि मछली पानी में रहती है रेत में नहीं। यदि उसे पानी से निकाल कर रेत में डाल दिया जाए तो वह तड़प कर मर जाएगी और ठीक यही स्थिति नायिका की होती है ।

इस उपन्यास के पात्र शोभन कुंतल व मीनल हैं जो युवा हैं । मीनल और कुंतल में प्रेम विवाह है लेकिन विवाह से पूर्व मीनल और शोभन का परस्पर आकर्षण है और यह आकर्षण विवाहोपरान्त कायम है । कुन्तल दिनोदिन इस गहराते हुए आकर्षण के परिणाम को झेलने में असमर्थ हो जाती है और स्वयं को इस जानलेवा परिधि से अलग कर लेती है । उसका अलग होना भी एक विद्रोह है जिसका प्रभाव शोभन व मीनल पर उल्टा पड़ता है । ममेरी बहन मीनल शोभन के साथ खुला रहने लगती है जबकि कुन्तल का स्तर व हैसियत मात्र नौकरानी की हो जाती है । अपने अधिकारों की लड़ाई कुन्तल हार जाती है उसे न तो शोभन मिलता है और न ही घर । उसे स्वयं अपना जीवन रेत पर पड़ी मछली सादृश्य महसूस होता है ।

इस उपन्यास में लेखिका ने अपने निजी अनुभवों को चित्रित किया है जिसमें शरीर भोग अनावश्यक रूप से विस्तार में उभरा है । मीनल शोभन की ममेरी बहन है लेकिन उसका शोभन के साथ संबंध प्रेमी-प्रिया का है । लेखिका ने इस संबंध-व्यापार के पीछे की मानसिकता को नहीं उभारा है । साथ ही उपन्यास का नायक एक बीमार प्रकृति का युवक है जो संबंधों की पवित्रता को गंदला देता है । भोग के आगे संबंध का प्रतीक मूल्य शून्य

हो गया है । कुन्तल एक कमज़ोर औरत के रूप में सामने आती है । बार-बार अपमानित होकर भी पति की छाया के लिए लालायित रहती है जो उसे अन्त तक मिलता भी नहीं है । मिलता है उसे विधवा आश्रम । यहाँ तक कि उससे उसकी संतान भी अलग कर दी जाती है । इस उपन्यास में युवा प्रवृत्तियों को ज्यादा स्थान नहीं मिला है । भोग व यश का दर्शन सर्वोपरि है । यद्यपि शीर्षक अधिक व्यंजनात्मक और प्रभावोत्पादक है । रेत पर मछली जी नहीं सकती, दाम्पत्य जीवन अविश्वास से झुलस जाता है । रेत में कंटीले झाड़ ही उत्पन्न होते हैं, विश्वास की निरन्तर अवहेलना में व्यक्ति भी अपनी जीवन शक्ति खो बैठता है ।

3. रूकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा

यह भारतीय आधुनिक नारी की कथा है । पारम्परिक संस्कारों से ग्रस्त भारतीय आधुनिक नारी के संघर्षों का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । राधिका एक खूबसूरत खाते-पीते परिवार की स्वतंत्र विचारोंवाली युवती है । लेकिन भारतीय संस्कारों से मुक्त नहीं है । पिता का विरोध कर वह डेन नामक विदेशी युवक से संबंध जोड़ लेती है और विदेश चली जाती है । विदेशी संस्कारोंवाला डेन शीघ्र ही राधिका से ऊब जाता है । पिता से विद्रोह करके वह डेन से शादी तो कर लेती है लेकिन पितृ संरक्षण की भावना से अपने आपको मुक्त नहीं कर पाती । डेन में वह अपना बिछड़ा पिता ढूंढती है जिसे डेन स्वीकार नहीं कर पाता । डेन कुछ ही दिन साथ रहने के उपरान्त राधिका की इस प्रवृत्ति को समझ लेता है और स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है कि -- राधिका तुम मुझमें अपना पिता ढूंढ रही हो, वही पिता जिसको त्रास देने के लिए तुम मेरे साथ चली आयी थी । परन्तु मैं तुम्हारी पिता की जगह स्थापित नहीं होना चाहता । मैं तो स्वतंत्र व्यक्ति हूं ..... तुममें अपना खोया हुआ यौवन ढूंढता हूं । अपनी पत्नी के छोड़कर चले जाने की कडवाहट को धोना

चाहता था, पर शायद हम दोनों सफल नहीं हो सके । राधिका की की मन:स्थिति से उसका मित्र मनीष भी परिचित है । वह राधिका से स्पष्ट कहता है कि तुम पुरूष में प्रेमी नहीं अपना पिता ढूंढती हो । जीवन के संघर्षमय क्षण में डैन ने तुम्हें संभाला, तुम कृतज्ञता में उसके साथ रहने लगी और अब अक्षय देखभाल कर रहा है तो तुम शायद उससे शादी कर लो । क्योंकि तुम जीवन में लंगर चाहती हो, उसे पूरी तरह स्वीकार करने को तैयार नहीं । किन्तु एक बार फिर वह अक्षय को छोड़कर मनीष के साथ होकर पिता को एक बार फिर आघात पहुंचाती है ।

यह उपन्यास कल्चर शाक को भी दर्शाता है । राधिका जो कि परम्परागत संस्कारों से ग्रस्त है, पिता की दूसरी शादी को स्वीकार नहीं कर पाती । विद्या जो उसकी दूसरी मां है, विवाह से पूर्व राधिका का अन्तरंग सहेली थी और वह बाप-बेटी के मानसिक तनाव को अपने ऊपर झेलती है । राधिका एक तरफ पिता से पूर्ण वात्सल्य प्रेम चाहती है तो दूसरी तरफ पिता की स्थिति को न समझकर डैन, अक्षय, व मनीष को अपनाकर पिता का विरोध ी करती है परन्तु इन सभी में अपने पिता को ही देखना चाहती है । पर पिता की स्थिति कहीं नहीं मिलती है ।

इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या पितृ संरक्षण की है । समयगति में बहता हुआ युवामन एक तरफ आधुनिक संस्कारों के प्रति उन्मुख होते वहीं दूसरी ओर अपने परिवेशगत संस्कारों में इतना धंसा हुआ है कि निकलने की कोशिश में और धंसता हुआ कुण्ठित हो जाता है । राधिका के साथ यही प्रक्रिया घटित होती है । अलगाव व अकेलेपन की प्रक्रिया में राधिका आत्मकेन्द्रित हो जाती है ।

४. सीमाएं टूटती हैं : श्रीलाल शुक्ल

इस उपन्यास के विद्रोही शीर्षक से यह आभास होना स्वाभाविक है कि इसमें सामाजिक विसंगतियों व अन्तरंग मर्यादाओं का विघटन प्रस्तुत

किया गया होगा । परन्तु पढ़ने पर कहीं ऐसा नहीं लगता । सभी विसंगतियाँ यथास्थिति में अपनी सीमाएं बनाए हुए है । रचनात्मक स्तर पर किसी सीमा के टूटने का आभास नहीं होता है ।

इस उपन्यास को डा० विनोद ने देह संकट का उपन्यास माना है । इसके प्रमुख तीन पात्र है । चांद, विमल और चांद के पिता का दोस्त विमल चांद व विमल एक साथ पढते व काम करते हैं । परन्तु एक दूसरे को चाहकर भी नफरत पैदा करना चाहते हैं । चांद एक पढ़ी-लिखी समझदार लड़की है लेकिन उसका संबंध उसके पिता के दोस्त से है जो उम्र में उसके पिता के समान हैं । उच्च मध्यवर्गीय संस्कार होने के नाते घर के अन्य सदस्य इस संबंध का विरोध करते हैं । छोटा भाई ज्यादा उत्तेजित रहता है । तमाम विरोधों के बावजूद भी इनके संबंध सघन हैं । कोलाहल को नकारते हुए इनका संबंध शारीरिक ही है, आत्मीय नहीं हो पाता । आत्मीयता के बगैर जीवन में ठहराव आ जाना स्वाभाविक है । अत: चांद व विमल का भोगी मन चाहकर भी इस ठहराव को रोक नहीं पाते और न ही संबंध रक्षित हो पाते हैं । चांद की शरीर की गहराई में उतर कर भी विमल मन की गहराई में नहीं उतर पाता और न ही साथ दे पाता है । ऐसा संबंध शीघ्र ही टूट जाता है । चांद इस भावास्थिति को समझ नहीं पाती है । आधुनिक सभ्यता की स्वीकृति व निषेध के हासिए पर निर्मित मान्यताओं को स्वीकारनेवाली चांद प्रेम में धोखा खाती है । धोखा खाकर भी चांद अमर्यादित व विचलित नहीं होती, उसका आत्मविश्वास तथा चरित्र स्थिर सा है । चांद का प्रेमी विमल जो कि उसे बहुत चाहता है, जब उसे चांद के फैसले का पता चलता है तो थोडा विचलित हो जाता है । परन्तु शीघ्र ही स्थिति को समझ जाता है । उसने कहीं भी किसी प्रकार का दबाव चांद पर नहीं डाला है । चांद स्वतंत्र विचारोंवाली है अपने जीवन के बारे में निर्णय स्वयं लेती है जो कि सार्थकता से परे है । परिणाम भी स्वयं झेलने के लिए तैयार है । उसे किसी की सहानुभूति या हमदर्दी की आवश्यकता नहीं है । मध्यमवर्गीय आत्मा की तरह चांद की आत्मा भी विभाजित है । अजनबीपन की प्रवृत्तियों से ग्रस्त ।

5. तीसरा आदमी : कमलेश्वर

"तीसरा आदमी" की धारती महानगरीय है, जहां सिर छुपाने का प्रश्न व्यक्ति के सांसों के साथ उठता व गिरता है । इस उपन्यास का प्रश्न पति-पत्नी के बीच पैदा हुआ वह तीसरा आदमी है जो परिस्थितियों व संस्कार के संयोग से पैदा हुआ है । उपन्यास की कहानी तीन पात्रों के बीच घूमती है । तीसरा आदमी सुमन्त है जो दिल्ली में रहता है । उसके यहां उसके चाचा का लड़का तथा उसकी पत्नी आकर रहने लगते हैं । मकान की व्यवस्था न होने के कारण ये तीनों एक ही कमरे में रहने लगते हैं परन्तु कुछ ही दिनों के बाद सुमन्त पति-पत्नी के बीच तीसरा आदमी के रूप में उभरता है । सुमन्त कई तरह से अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहता है परन्तु वह सफल नहीं हो पाता और फलत: आत्महत्या कर लेता है । दाम्पत्ति के बीच किसी तीसरे का आगमन कोई नयी बात नहीं है । जिन परिस्थितियों में यह तीसरा आदमी आता है वह पूरा का पूरा महानगर में बढ़ता आबादी व पुरातन संस्कारों की देन है । ऐसा नहीं है कि सुमन्त की आत्महत्या समस्या का समाधान है, बल्कि सुमन्त की आत्महत्या नायक के अन्दर पश्चाताप, घुटन, अन्धकार व अनजाने भय का प्रादुर्भाव पैदा कर जाता है । यह उपन्यास पूरी तरह से मध्यवर्गीय युवा पीढी की विवशताओं को लेकर चलता है । लेखक की दृष्टि में प्रत्येक मध्यवर्गीय दाम्पत्य जीवन के बीच तीसरे का अस्तित्व विद्यमान रहता है । इसका कारण सामाजिक आर्थिक या पुरापन्थी ही क्यों न हो, इस उपन्यास को पढ़ने से एक प्रश्न बराबर उठता है कि क्या सुमन्त और चित्रा दोषी हैं या आज भी नारी पुरूष के शोषण की शिकार है जिसमें पैतृक अधिकार लिप्सा सबसे प्रखर रूप में है ।

एक तरफ पत्नी को अपनी सम्पत्ति समझता हुआ पुरूष उसकी सुरक्षा करता है तो वहीं उसकी यह प्रवृत्ति इतनी उग्र हो जाती है कि वह उसकी सुरक्षा के आड़े उसको असुरक्षित ही नहीं बल्कि उसका मनोबल इस कदर तोड़ देता है कि उसके आगे का विकल्प शून्य हो जाता है । इस उपन्यास की

समस्या बाहरी है परन्तु इसकी चोट अन्दर पहुंचती है । सुमन्त जो रिश्ता निभाता है उसकी कीमत वह अपनी जान देकर भी पूरा नहीं कर पाता है ।

6· नरक दर नरक : ममता कालिया

निराशा, कडवाहट और अस्मिता के संकट के वातावरण में व्यक्ति का रागात्मक और आत्मीय संबंध लगभग निरर्थक हो जाता है । यही इस उपन्यास का कथ्य है । पारिवारिक विघटन गहराता हुआ असंतोष, बढती हुई निराशा व यांत्रिक परिधि में टूटता हुआ मानवीय मूल्य जैसे जीवित प्रश्नों को इस उपन्यास में स्थान मिला है ।

उपन्यास का नायक जगन निर्भीक और संघर्षशील स्वभाव का व्यक्ति है । वह जुझारू परिस्थितियों के तेवर को अधिक तीखा और रचनात्मक बनाना चाहता है । वह एक कालेज में प्राध्यापक है और कालेज व्यवस्था की गलत नीति और सुविधाभोगी परिस्थितियों का विरोध कर एक नया परिवेश रचना चाहता है । अत: व्यवस्था से संघर्ष करने के कारण उसे कालेज से निकाल दिया जाता है और नरक की धारा यहीं से फूटती है । कालेज से निकाले जाने के बाद उसका साहसी मन झुंझलाहट और आकुलता से भर उठता है । उसके सामने सबसे पहले रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या मुंह खोले खड़ी हो जाती है । वह इसकी तलाश में निकल पड़ता है । व्यवस्था का संघर्ष ठंडा होकर रोटी के संघर्ष में बदल जाता है । यहां एक बात साफ हो जाती है कि कोई या कैसा भी संघर्ष खाली पेट नहीं किया जा सकता । भरे पेटवाले भी इस व्यवस्था में संघर्ष की बात सोच सकते हैं । आर्थिक संकट संघर्ष की धारा को ही नहीं मोड़ते बल्कि उषा और जगन जिन्होंने बड़े अरमानों से प्रेम-विवाह रचाया है, के बीच दरार पैदा कर देते हैं । इन विरोधी परिस्थितियों के सामने दाम्पत्य कसाव में धीरे-धीरे ढीलापन आने लगता

है । दोनों आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर हैं और उनके बीच बढ़ते हुए तनाव को आर्थिक तनाव उत्तेजित करता है । डॉ० विनोद सिंह के शब्दों में -- "ममता कालिया का यह उपन्यास इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इसमें संबंधों के रहस्य और शुद्ध मानसिक आधार के बदले एक ठोस और वास्तविक परिस्थिति के भीतर संघर्ष करती और टूटती हुई इकाईयों का सादा किंतु मार्मिक स्वरूप खड़ा किया गया है ।"[8] जगन इलाहाबाद में एक प्रेस खरीद लेता है और प्रेस संचालन में उसे सफलता भी मिलती है । आर्थिक संकट से मुक्त होकर जगन साम्प्रदायिक दंगे में फंस जाता है । यह बात और है कि जगन को लेखिका का साथ है और वह जब-जब संकट से घिरता है, लेखिका उसे संकटसे उबार लेती है । लेखिका की छाया में जगन समस्याओं से मुक्ति तो पाता है लेकिन उसके अन्दर आज के युवक की समस्या का जमाव बना रहता है ।

7. रिहर्सल : हिमांशु श्रीवास्तव

इस उपन्यास में पूरी तरह से मध्यवर्गीय पीड़ा को उभारा गया है । "रिहर्सल" में एक ऐसे परिवार की व्यथा-कथा चित्रित है जो आर्थिक अभावों के बीच पिस रहा है और अभावों से लड़ने की कोशिश रीना करती है । रीना एक संवेदनशील रेडियो आर्टिस्ट है । उसके अन्दर अपने परिवार के प्रति जितनी भावुकता है, उतनी ही बाहरी स्थितियों के प्रति घृणा है । रेडियो से प्राप्त धन उसके परिवार के भरण-पोषण के लिए अपर्याप्त है । काफी बड़ा परिवार, शहर की जिन्दगी, किराये का मकान, भाई-बहनों की शिक्षा, सात जनों का भोजन, कपड़ा तथा पिता का मदिरापान सभी कुछ उसे लेकर चलना पड़ता है । घर में कुछ हो या न हो पिता को दारू अवश्य चाहिए । दारू के लिए पिता अपनी बड़ी बेटी की इज्जत को खुद ही बेचता है और चाहता है कि रीना भी उसी रास्ते पर चले । रीना ऐसा नहीं करती, वह शक्ति भर इन तमाम अन्दर व बाहर की परिस्थितियों से अकेले ही

जूझती है । घर से बाहर तक सभी की वासना भरी नज़र उसे घूरती रहती है । उसके सम्पर्क में जो भी पुरूष आता है उसकी निगाहें रीना के देह पर ही ठहरती है । घर की हालत दिनों-दिन बिगड़ती चली जाती है और बाहर से समझौता नहीं कर पाने के कारण रीना स्वयं टूटकर बिखर जाती है, उसका रिहर्सल असफल हो जाता है । हार उसको जड़ता के धरातल पर ले जाती है जहाँ एक बार गिरने पर पुन: दुबारा खड़ा नहीं हुआ जा सकता है ।

इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि रीना हमारी जानी पहचानी लड़की है । उसे अपने चरित्र की रक्षा करने के लिए उन तमाम तकलीफों को झेलना पड़ता है जो जीवन को विषाक्त करते हैं । आज के दूषित वातावरण में नारी को अपने स्त्रीत्व की रक्षा करने के लिए अपने अस्तित्व की बलि देनी पड़ रही है । स्व की चेतना आज खो रही है । परन्तु रीना उसी स्व के प्रति अत्यधिक सचेत नज़र आती है । यह अलग बात है कि वह इस कारण से जिन्दगी की भाग-दौड़ में पिछड़ जाती है । वह मांस खानेवाले पुरूष समाज से सौदा करना नहीं जानती, जबकि उसका पिता उसके हाथ पीले करने के बजाय सौदा करना चाहता है, क्योंकि उसके लिए जीवन ही एक सौदा है ।

8. लाल पीली जमीन : गोविन्द मिश्र

यह एक सशक्त उपन्यास है जिसके केन्द्र में युवा केशव है । वह गांव से भागकर शिक्षा व सुरक्षा के लिए अपनी माता-पिता के साथ शहर की गंदिया बस्ती में रहता है । यहाँ उसका पूरा परिवार नैतिक गिरावट की चपेट में आ जाता है और अन्त में केशव का पिता नगर की बढ़ती आवारागर्दी और नंगई से तंग आकर वापस गांव भाग जाने का फैसला कर लेता है । केशव के पिता द्वारा लिये गये इस फैसले के पीछे

जो व्यथा व दर्द है, वह पूरे समाज की व्यथा है । केशव और उसके पिता पर ग्राम का प्रभाव ज्यादा है और उसी प्रभाव के कारण उसके मन में नैतिक प्रश्न उठते हैं । वास्तव में वे नगर की मानसिकता को अपने अन्दर पचा नहीं पाते हैं । उनका सीधापन तथा दब्बूपन उन चित्रों को और चटक करने में प्रयोजनीय होता है जिनमें बस्ती के नागरिक, अभिभावक और उनकी पारम्परिक गुण्डई - नंगई एक जीवन मूल्य के रूप में अंगीकृत हो जीवित है ।

इस उपन्यास में सबसे ज्यादा ध्वस्त होती नैतिकता के ही परिदृश्य प्रमुख हैं । उपन्यास का बाल साक्षी केशव अपनी आँखों ही अपनी मां की काम-लीला देखता है । मां उसको तथाकथित मामा, काका आदि का बहाना बनाकर बाहर खेलने के लिए भेजती रहती है । बड़े और शान्ति बरसात में रोमान्सरत हैं, केशव और छबि आँख-मिचौली खेलते बैलों को बांधनेवाले घर में उलझे हुए हैं । केशव कभी मालती की और आकर्षित होता है जो उम्र में उससे बड़ी है तो कभी-कभी छबि से । मन्दिर का पुजारी नारायण और यादव जी की लड़की छबि में रोमांस अलग चलता रहता है । शैलजा को लेकर कल्लू पहलवान और केलाश में गहरी प्रतिस्पर्द्धा है । शन्नो और लोखोटिया की चर्चा गर्म है । केशव की बहन और पंडित का संबंध अलग झंझट पैदा कर दिया है । ऐसा लगता है कि नगर की इस बस्ती की नीयत ही गुण्डई है । अचानक छवि को लेकर सुरेश और पुजारी में ठन जाती है और सुरेश छुरे की नोंक पर छवि को मंदिर में नंगा कर देता है । शैलजा उधर कल्लू के साथ भाग जाती है और पिटाई कैलाश की होती है । पिटाई के बाद कैलाश तमंचा से लैस होकर गुण्डई की अव्वल लाइन को अपनाता है ।

ध्यान देनेवाले तत्व ये हैं कि आलोच्य कृति के प्रमुख पात्र केशव बड़े, कल्लू, कैलाश, लोखोडिया, सुरेश, शिवमंगल, महेश, कल्लन, शिवराम

अशरफ, माथुर और साहेब आदि सभी छात्र हैं। बिलकुल युवा और किशोर। इस प्रकार सहज रूप में लिखी गयी यह कृति नयी युवा-छात्र पीढी की भटकान को मौलिक रूप में प्रस्तुत करती है। शिक्षा के नाम पर छात्र [illegible] दादागिरी करते हैं। जखीरे के मैदान में ये आवारा लड़के सांड-भैसों के सदृश्य लड़ते है। शिवमंगल की पार्टी कैलास को पीटती है। कल्लन और शिवराम जैसे लड़के पालतू जीव तीतर लडाते-लडाते स्वयं लड़ने लगते हैं। शिवमंगल मास्टर कैलास को भी नहीं छोड़ता जो पूरे उपन्यास में एक मात्र भले आदमी हैं। छुरे, तमचे, चाकू और गुप्ती लेकर चलनेवाले सिर-फिरे छात्रों के आगे मास्टरों की कुछ नहीं चलती। घरों की लडाईयाँ गली में और कालेज की लड़ाईयाँ खुले सड़कों पर लड़ी जाती है। गुप्त संगठन साहसिक कार्य और आतंक की बराबर आहट मिलती रहती हैं। पार्टी मजबूत करना, लड़की फँसाना यही इन छात्रों का पुरूषार्थ है। अखाडेबाजी के पैंतरे, बनती-बिगड़ती पार्टियों का क्रम प्रारंभ से अन्त तक चलता है। कुल मिलाकर केशव पूरे उपन्यास का एक मूक द्रष्टा व भोक्ता है। वह कमज़ोर, अपेक्षित ठिगना और दब्बू लड़का है और एक लम्बी उमर तक आँख मिचौली खेलता है।

डॉ० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर का कहना है कि "लाल-पीली जमीन" में पैदा हुआ प्राय: हर व्यक्ति उखड़ने के लिए गिरने के पहले जीवन के रूप में खडखडाहट करने की विवशता लिए ही पैदा हुआ है। असहाय, यंत्रणामय करूणा, कराहें समस्त उपन्यास में व्याप्त हैं। शक्ति और अत्याचार करने की सामर्थ्य का बोध देनेवाले व्यक्ति भी कहीं भीतर ही भीतर अवश्य पीड़ा के ही प्रस्फुटन हैं।"[9] "लाल पीली ज़मीन" का पूरा विश्व जंगली, हिंसक, भयावह और मूल्यहीन होने पर भी कहीं भी भडकीला नहीं है ..... लडकियों को जवानी प्राप्त होने के पहले ही घर की चारदीवारी में केद किया जाता है या विवाह की बेड़ियों में विकास के पहले ही उन्हें बांध दिया जाता है क्योंकि वहां इतने सांड फिरते रहते हैं कि आम आदमी अपनी लडकी तेरह चौदह में ही ब्याहकर निबटा देने की सोचता है।"[10] स्त्री-

जीवन की भयानक नियति शांति, मालती, छवि, शैलजा के माध्यम से इतनी शक्तिपूर्ण ढंग से व्यंजित की गयी है । अन्तर्मुख होकर विचार करनेवाला पुरूष भी अपने पुरूष होने को कोसता है ।

9· चितकोबरा : मृदुला गर्ग

जब कोई रचना सामाजिक जीवन के यथार्थ की अपेक्षा व्यक्ति-यथार्थ पर रचित हो तो वह अपने चारों तरफ सीमा रेखा खींच गहराई में उतर कलात्मक सृष्टि करती है । सामाजिक जीवन के यथार्थ में कटी हुई बौद्धिकता खीज पैदा करती है । परन्तु इस बौद्धिक बुनावट को रसात्मक बनाने के लिए व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं को व्यापकता मिलती है, तब वह लेखन सेक्स से आक्रान्त हो जाता है । "चितकोबरा" भी एक ऐसा लेखन है ।

मनु महेश की पत्नी है तथा वह दो बच्चों की मां है । वह महेश को बेहद चाहती है । महेश की प्रत्येक इच्छा ही मनु की अपनी इच्छा हो जाती है । स्वाभाविक है कि मनु भी महेश से ऐसी ही अपेक्षा करती है । महेश मनु की प्रतिबद्धता से कटा हुआ रहता है । कई स्थल पर वह स्वीकारता है कि मनु किसी दूसरे पुरूष को चाहे, यह उसे स्वीकार नहीं है । लेकिन वह स्वयं किसी दूसरी नारी को पा लेने की आकांक्षा से भरा हुआ है । "विवाह के बंधन में मेरा विश्वास नहीं है ।" यह छोटा सा वाक्य मनु के भीतर तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है । वह अपने जीवन की सार्थकता के लिए किसी तीसरे की खोज का प्रयास आरंभ करती है । रिचर्ड उसके जीवन में तीसरा बनकर आता है । रिचर्ड क्रियात्मक स्तर पर शून्य सा है । मनु के इस मानसिक बदलाव को देखकर महेश फिर मनु के पास आ जाता है । "मेरे साथ बड़ी भारी विडम्बना घट गयी है मनु । उसने कहा, शायद ठीक उसी समय जब तुमने मुझे प्यार करना बंद कर दिया .....

में तुम्हें प्यार करने लगा । मनु महेश के आकर्षण में ही बंधी है । उसने अपने शारीरिक आवेगों को लेकर जितनी कल्पनायें बुनी हैं उनमें महेश ही उपस्थित है। इसलिए वह महेश को पुन: पाकर खुश हो जाती है ।

10• बीमार शहर : राजेन्द्र अवस्थी

व्यवस्था मानव की भाव सत्ता और रचनात्मक ऊर्जा को नियंत्रित करना चाहती है । नियंत्रण से व्यवस्था सबल होती है और उसकी विरोधी प्रवत्तियां दुर्बल हो जाती हैं । इससे अलग पूंजीवादी व्यवस्था का नियंत्रण, शक्ति व संकल्प कठोर होता है । यही कारण है कि व्यवस्था में व्यक्ति की अस्मिता का संकट अधिक तीखा और यंत्रणादायक बन जाता है । ऐसी स्थिति में मानव-चेतना और मूल्य प्राणहीन बन जाते हैं । व्यक्ति अपने कटघरे में ही कभी ऊपर तो कभी नीचे चढ़-उतर कर नितान्त वैयक्तिक आदर्शों का सृजन करता है । "बीमार शहर" इसी तरह नितान्त वैयक्तिक आदर्शों व पूंजीवादी तंत्र में फंसे व्यक्ति का एकालाप है ।

महानगरीय सभ्यता में पूजीवादी व्यवस्था का प्रभाव दिनोंदिन अधिक गहराता जा रहा है । इसीलिए महानगरों में मानवीय रिश्ते ... अर्थ शून्य हैं । हर व्यक्ति भीड़ की इकाई है । व्यक्ति समाज में रहकर सबसे अलग व सबके साथ रहकर सबसे कटा हुआ है । उसकी अपनी निजी सत्ता है । यही उपन्यास की केन्द्रीय सम्वेदना है तथा मानव नियति की समकालिन चित्र भी । सम्वेदना शून्य केवल शहर ही बीमार नहीं है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति आत्मीयता से रहित, बीमार है ।

यह उपन्यास कई परिच्छेदों में विभक्त है । एक शेखर : एक प्रतीक, शोभना : एक छाया, मंजरी : चलते चलते : निरंजन सिंह : अंधेरे में, मिसगोरावाला : बूचो टैरेस, शेखर : डायरी एक खोज, मंजरी : भागती हुई दुनियाँ आदि अनेक परिच्छेदों में विभक्त है । प्रत्येक शीर्षक

में एक पात्र अपनी मानसिक स्थिति और परिवेशगत स्थिति का मूल्यांकन करता है । इस मूल्यांकन में उनका निजी चरित्र व लक्ष्य भी शामिल है ।

जब व्यक्ति की संकल्प चेतना और संघर्ष भावना निरंतर आहत होती है, तब वह सामाजिक परिवेश से कटकर आत्मलीन हो जाता है । आत्मलीन व्यक्ति का रुझान सेक्स के प्रति बढ़ जाता है और यही दृश्य इस उपन्यास में उभरते हैं ।

मंजरी जिस आपा-धापी में वेश्यालय छोड़कर विद्यालय की स्थापना करती है, वह आधुनिक महानगरीय सभ्यता के सर्वथा विपरीत है । वास्तविकता तो यह है कि महानगरीय सभ्यता मंजरी के शारीरिक तनाव का उपयोग कर मानसिक तन्तुओं को ढीला करती है । और उसे मरने के लिए कहीं एकान्त में छोड़ देती है । इस वातावरण की प्रत्येक शाम में न जाने कितनी शक्लें हवस की शिकार बनती हैं और वेश्यालय की शोभा । शेखर का चरित्र भी बेहद खोखला और चौंकानेवाला है । वह शोभना, कमला आदि लड़कियों से सम्बन्ध स्थापित करता है। मंजरी के शरीर से खेल खेलता हुआ उद्धार में दिलचस्पी लेने लगता है । इस उपन्यास में वैवाहिक प्रश्नों को विविध रंगों में भी उभारने का प्रयास किया गया है । आज का वैवाहिक जीवन एक नयी व्याख्या की मांग करता है । क्योंकि हर स्त्री-पुरुष के अपने अनेक छोटे-छोटे संबंध संसार हैं । इन संबंधों के बीच आठवें दशक का व्यक्ति कहीं भी ईमानदार नहीं है, फिर भी वह सम्बंधों को बनाए रखना चाहता है ।

11. गली आगे मुड़ती है : डा0 शिवप्रसाद सिंह

इस उपन्यास में एक दो ऐसे लेखकीय संकेत हैं जो उपन्यास को पढ़ने हेतु पाठक को दृष्टि व दिशा देते हैं। लेखक "नुक्कड़" सभा में लिखता है -- "यह उपन्यास युवा आक्रोश की विविध शक्लों से आपको घनिष्ट परिचय करा सका तो मेरा लेखनो श्रम सार्थक है।" अर्थ यह है कि आक्रोश से भरी हुई युवा शक्ति की विविध भंगिमाओं को उसकी सम्पूर्णता में देखने के लिए यह उपन्यास वचनबद्ध है।

भारतीय युवा शक्ति की कुंठित होती हुई मानसिकता तथा स्व के होते हुए न होने की यातना व हताहत होता आत्मबल पर काशीनाथ सिंह ने "अपना मोर्चा" लिखा है। इन दोनों उपन्यासों का परिवेश काशी नगरी ही है। विश्वविद्यालयीन परिवेश में युवा शक्ति का घटता-कटता व बौना होता हुआ आत्मबल बेहद उदास व खीझा हुआ है।

सवाल उठता है कि भारतीय युवा शक्ति अराजक, भविष्य के प्रति उदास तथा वर्तमान के प्रति बेहद खीझा हुआ क्यों है। युवा शक्ति के पास असीम रचनात्मक ऊर्जा होती है, लेकिन जब वह अन्यायपूर्ण और यातनाई परिस्थितियों से घिरने लगती है, तब वह आक्रामक या विद्रोही हो जाती है। प्रजातांत्रिक अधिकारों को प्राप्त करने के प्रयास में जब यह शक्ति शासन तंत्र की भयावह शक्ति से टकराती है तो अकेली पड़ जाती है और उसके परिवर्तनग्राही मन व संघर्ष की तीखी धार धीरे-धीरे भोथरी हो जाती है।

इस उपन्यास के सभी पात्र भिन्न-भिन्न समाज से लिए गये हैं। इसीलिए इनके संस्कार और चिन्तन में भिन्नता मौजूद है। इन सभी पात्रों के जीने की निजी परिस्थितियां भी हैं। अपनी नितान्त एकान्त परिस्थितियों में जीते हुए भी आधुनिक विचारधारा ने उनके संस्कार और मन को बेहद प्रभावित किया है। सभी पात्रों पर नये भावबोध का प्रभाव

लक्षित है । इस उपन्यास के सभी पात्र जीवन के वास्तविक प्रसंगों से लिये गये हैं । रामानन्द भीरू व भावुक हैं । उसकी चिन्तन और क्रिया में एक बड़ा अन्तराल है । जयन्ती और किरण से वह आन्तरिक रूप से बेहद जुड़ा हुआ है । स्वीकार के धरातल पर वह स्थिर नहीं रहता है । हरिमंगल अपने साहस को नियंत्रिक नहीं कर पाता तो रज्जो अपमान को पी लेती है । शोभना सुविधा घर में बंदी बन जाती है । बक्कड़ अपने स्वार्थ से जकड़ा हुआ है । इन चरित्रों का अधूरापन समकालीन जीवन की वास्तविकता है । आरती अपनी मर्जी से शादी करके अपने किये का फल भोगने के लिए अभिशप्त है । रामानन्द पारम्परिक ब्राह्मण-संस्कृति के सूत्रों की कसावट को ढीला करने का प्रयत्न करना चाहता है, किरण अपने गुजराती मान्यताओं को इन्कार करना चाहती है । परन्तु इन दोनों का इन्कार भारतीय सांस्कृतिक चेतना का इन्कार नहीं है, बल्कि बदलते हुए समय और सामाजिक विश्वास के हल्के चिह्न हैं । अत: काशीनगर की बहुविध सांस्कृतिक चेतना के आंकलन में यह उपन्यास सफल हुआ है । यही कारण है कि इसमें युवा आक्रोश को अधिक महत्व और विस्तार नहीं मिल पाया है । वह सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण टुकड़ा बनकर रह जाता है ।

12· अन्तराल : मोहन राकेश

"अन्तराल" में युवा पीढ़ी में निर्वासन की समस्या को स्त्री-पुरूष दोनों की दृष्टि से देखा गया है । नामहीन संबंध अधिक सम्वेदनशील एवं संतोषप्रद हो सकते हैं और ऐसे संबंधों को सम्वेदना और व्यवहार के धरातल पर ही समझा जा सकता है । श्यामा और कुमार के माध्यम से लेखक ने जीवन से कटे हुए युवक की कहानी प्रस्तुत की है । श्यामा के पास अपने पति देव के साथ गुजारा हुआ कड़वा अतीत है । अपने अतीत की बाहों व समय का जब वह विश्लेषण करती है तो सारी गलतियों की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेती है । एक आस्थाहीन व विवशता के रूप में वह एक बच्ची की

गा है । अब देव नहीं रहा लेकिन देव के साथ गुजारे पल सदा उसके आस-पास बिखरे पडे हैं । इन यादों को वह समय-समय पर याद करती रहती है । दरअसल श्याम को भ्रम ने घेर लिया है । वह पति से सब कुछ प्राप्त करके भी अन्दर-अन्दर घुलती रही है । उसे महसूस होता रहता है कि पति का होना किसी दूसरे के लिए है, स्वयं उसके लिए नहीं । पति देव अपने पारिवारिक जीवन के प्रति काफी सचेत हैं, फिर भी श्यामा को ऐसा महसूस होता है कि उसका नारी देह ही पति के लिए प्रतिनिधि करता है । इस प्रकार की संशयता से घिरी श्यामा परिस्थितियों की थकान को झटक नहीं पाती और विवशताओं में जिन्दगी बिताती है । देव की मत्यु के बाद वह अपने अन्त:मन के जाल में फंसी कभी अपने अपराध-बोध देव पर लाद कर मुक्त होना चाहती है तो कभी अपने वर्तमान परिस्थितियों के धरातल पर घट रहे घटनाओं को विश्लेषित करते हुए स्वयं पर आरोपित करती है । कुमार से मिलने के उपरान्त उसके मस्तिष्क का उपजा नवीन चिन्तन इसका उदाहरण है । गृहस्थ जीवन का यह अनुभव उसे दुहराने के लिए हतोत्साहित करते हैं । "मुझे नहीं लगता एक बार गृहस्थ जीवन के अनुभव से गुजर लेने के बाद मैं उस अनुभव को अब अपने जीवन में कभी दोहरा सकती हूं । किसी के साथ जी सकती हूं, शायद .. पर उसके साथ घर नहीं बसा सकती ।"[11]

वह देव और दूसरे पुरूष के व्यवहार के बीच विभाजन रेखा खींचने में अपने आपको अक्षम पाती है । वह कुमार की ओर आकर्षित होती है। परन्तु इस आकर्षण को शारीरिक आकर्षण के अतिरिक्त व्यक्तित्व का चुम्बकीय आकर्षण मानती है । कुमार जो लता के प्रेम में धोखा खा चुका है, श्यामा को भोग के स्तर पर स्वीकारना चाहता है । कुमार को पाकर भी श्याम कुछ खोने की चिन्ता से भरी रहती है । वह जिस सख्य भाव से कुमार को अपनी देह के साथ स्वीकार करना चाहती है, वह उसे कुमार में नहीं बल्कि कुमार के संबंध में नजर आता है । "वह एक झूठा प्रोत्साहन

है । अपने लिए एक छोटा झरोखा खोलने का स्वार्थ है । वह व्यक्ति मेरे लिए इसके सिवाय कुछ और नहीं हो सकता । झरोखे के साथ कुछ देर के लिए सांस ली जा सकती है, परन्तु वह मार्ग निकलने का मार्ग नहीं है ।"[12] कुमार के वासनात्मक आधार को वह अपनी नारी देह के लिए सुखद मानकर भी उस परिवेश को स्वीकारने से इन्कार करती है । "मैं चल रही हूं अब यह मत सोचना कि इस घटना के कारण तुम्हारा तिरस्कार करके या तुम्हारे साथ जितना संबंध था उसे तोड़कर जा रही हूं । एहसान मानूंगी अगर तुम मुझे यहां से अकेली चले जाने दो ।"[13]

श्यामा जटिल मनोवृत्तियों की नारी है । वह अपने शारीरिक हलचलों को अन्दर ही अन्दर कैद रखना चाहती है । इसीलिए उसका आत्मकेंद्रित मन बाहरी जीवन से सन्तुलन बनाये रखने में रिसता है । दरअसल श्यामा का निर्वासन उसकी अपनी मानसिक जटिलता के कारण ही है । वह समस्याओं से घिरी नहीं बल्कि वह समस्याओं को ओढे हुए है और इसी परीधि के घेरे में लगातार टूटती चली जाती है ।

कुमार का निर्वासन लता के प्यार में धोखा खाने से उभरता है । लता को केन्द्र में रखकर अपने भविष्य का ताना-बाना बुनना तथा लता का कहीं और ब्याह हो जाना, कुमार को मानसिक आघात पहुंचाता है । इस घटना को सहज रूप से न स्वीकार करने के कारण कुमार न केवल परिवेश से बल्कि जीवन से भी निर्वासित हो जाता है । उसका जीवन एक पडाव सा बन जाता है ।

श्यामा अपने पारिवारिक धरातल पर ननद सीता के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती । सीमा स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है । बंबई में आकर श्याम की मुलाकात दूबारा कुमार से होती है और उसे पता चलता है कि कुमार की शादी हो चुकी है लेकिन वह अपनी पत्नी को सह नहीं पाया है और पत्नी को अपने से अलग कर दिया है । जबकि देव उसके साथ ऐसा नहीं कर सका था । आज तक वह सोचती रही थी कि देव के कारण

उसे जीवन का सुख नहीं मिला। परन्तु अब उसे लगने लगा है कि देव उस सुख से कहीं अधिक वंचित रहा है । वह कुमार को छोड़कर चली जाती है ।

"अन्तराल" श्यामा और कुमार के बीच नामहीन संबंधों की कहानी है । दोनों पारस्परिक अपेक्षाओं के साथ शारीरिक व मानसिक अपेक्षाओं के रास्ते गुजरते हैं । हालांकि वास्तविकता की पहचान, परख उन्हें स्वयं भी नहीं है । इसके अतिरिक्त कुछ और होने और, कुछ और पाने की व्याकुलता भी उनका अन्तराल है ।

13. काली आँधी : कमलेश्वर

काली आँधी कमलेश्वर का लिखा हुआ एक ऐसा उपन्यास है जो नारी के राजनैतिक चरित्र को उकेराता है । उपन्यास की नायिका मालती एक भले घर की लड़की है, परन्तु उसने अपनी मर्जी से शादी अपने ही घर में काम करनेवाले एक मैनेजर से कर ली है । शादी और ब्याह मालती के लिए कोई माने नहीं रखते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता परंतु अब मालती के लिए अपने भविष्य के सपनों को साकार करना ही लक्ष्य बन गया है । जीवन में कभी हार न माननेवाली मालती राजनीति में भी हार नहीं मानना चाहती है । उसके सामने एक ही मकसद है -- कुछ भी हो जीत तो हमारी ही होनी चाहिए । जीत व सफलता के पीछे भागती मालती रास्ते में ही अपने परिवार को छोड़कर आगे निकल जाती है । एकान्त के पलों में जब उसके संबंध उसे बेचैन करते हैं तो वह बहुत धैर्यपूर्वक उनका सामना करती है । भविष्य की नीयति के आगे वह बेबस है । मालती को लेखक ने एक ऐसी आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया है सभी प्रकार के संबंधों को स्वीकार तो करती है लेकिन निभा नहीं सकती । आगे बढ़ते रहने की नीयति उसे कभी पीछे देखने नहीं देती है । यदि भूले भटके देख भी ले तो वापस लौटने नहीं देती । इस बात की ओर इशारा करते हुए पति जग्गी कहता है -- "मालती इतने दिनों अकेले रहकर मैंने यही सोचा है

तुम्हें अपनी रफ्तार से दौड़ती जिन्दगी में सोचने का वक्त ही कहाँ मिला है ? ..... मशीनें नहीं सोचतीं, मशीनों के बारे में आदमी सोचता है और सफलता ..... सफलता सिर्फ एक मशीन है । अब तुम औरत नहीं -- एक सफलता बन गयी हो । अब तुम्हारी मुक्ति और ज्यादा सफल होने में ही है और कोई रास्ता नहीं है । यही तुम्हारा एकमात्र रास्ता है।"[14] सफलता मालती को परिवार से पूरी तरह अलग कर देती है । उसके सामने एक ही मंजिल, सफलता है शेष कुछ नहीं । "देखो मालती जिन्दगी में हर चीज नहीं मिलती चुनाव करना होता है कि उसे क्या चाहिए । इस चुनाव में जो चीजें छुट जाती है उसके लिए दु:ख नहीं करना चाहिए ।"[15] मालती के माध्यम से लेखक ने राजनीतिज्ञों के अन्तर्मन में घटित होनेवाली एक नीयति को व्यक्त किया है । "राजनीति का यह नशा । सफलता का नशा । सफलता की दौड़ में कोई थकता नहीं ..... इस दौड़ का कोई पड़ाव या मंजिल नहीं होती । सफल व्यक्ति सिर्फ दौड़ता है।"

मालती का पति एक धैर्यवान सहनशील अहंवादी पुरूष है । वह तभी तक मालती का साथ देता है जब तक उसे लगता है कि मेरी पौरूषता कायम है । परन्तु जब मालती उसे पीछे छोड़ आगे निकल जाती है तो वह उसके पीछे घीसटता हुआ दौड़ता नहीं, बल्कि मालती के साथ सद्भावना के साथ अलग हो अपना बेटा लीली के साथ रहने लगता है ।

14. महाभोज : मन्नू भंडारी

मन्नु भंडारी का यह उपन्यास सीधे राजनीति तंत्र और प्रपंच के ऊपर लिखा गया है । उपन्यास का सारा परिवेश वस्तुत: वह राजनैतिक वातावरण है जहाँ राजनीतिक दाँव पेंच और पदलिप्सा इन्सानियत को सूली पर चढ़ा देते हैं ।

उपन्यास का प्रारंभ एक निश्चित प्रतीकात्मक वाक्य से होता है । लावारिस लाश को गिद्ध नोच-नोचकर खा रहे हैं । भले ही व्यक्ति के रूप में बिसेसर लावारिस नहीं है । घटनाओं का मूल केन्द्रीयस्थान गांव सरोहा है । जो शहर से कुछ वर्षों में करीब हो गया है । क्योंकि बिसेसर जैसे लड़के शहर से पढकर बिंदा जैसे साथी के साथ गांव लौट रहे हैं । महेश जैसे विद्यार्थी रिसर्च करने पहुंच रहे हैं । पूरे उपन्यास की कहानी बिसेसर की मौत के कारणों व उसके राजनैतिक उपयोग के इर्द-गिर्द घूमती है । बिसेसर बी. ए. तक पढ़ा हुआ एक मजदूर परिवार का होनहार लड़का है । उससे मां-बाप की ऊंची आकांक्षाएं हैं । बिसेसर की अत्यधिक जागरूकता ही उसका गला घोंट देती है । वह राजनैतिक चक्कर में इस तरह उलझ जाता है जहां से निकलना मुश्किल हो जाता है । समाज की अपनी मान्यताएं तो हैं ही साथ ही गांव पूरी तरह से सत्ताधारी तथा विपक्ष के नेताओं का अखाड़ा बना हुआ है । गांव का सरपंच व जमींदार सत्ताधारी नेताओं को अपने पक्ष में करके मजदूरों का शोषण करते हैं । इस शोषण के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठा सकता है । बिसेसर इन मजदूरों से अपने हक के लिए लड़ने का आह्वान/ अपील करता है और यही बिसेसर का दोष है । सत्ता चाहे किसी के हाथ में हो, कर्म में अन्तर नहीं है । सुकुल मुख्य मंत्री हो या दा साहब । सभी कुर्सी के लिए अपनी अपनी चाल चल रहे हैं । मजदूरों में क्रांति की चेतना जगानेवाले बिसेसर को सुकुल साहब की सत्ता में 4 साल की जेल हो गयी थी तो दा साहब की सत्ता में उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है । बिसेसर के पास आगजनी हत्या का प्रमाण है जिसे वह दिल्ली ले जाकर लोकसभा में रखना चाहता है । बिसेसर की मौत राजनैतिक नेताओं के लिए लाटरी का टिकट बन गया है जिसके सहारे वे सत्ता हथियाने के जोर-शोर से प्रयास कर रहे हैं । मौत की सही जांच-पड़ताल करनेवाले पुलिस इन्सपेक्टर को निलम्बन आदेश प्राप्त होता है ।

दा साहब प्रेसवालों को धमकाकर व कागज का कोटा बढ़ाकर पूरा बयान अपने पक्ष में छपवा लेते हैं और बिसेसर की हत्या आत्महत्या में बदल

जाता है । जनता का रूख और सबूतों के के मिल जाने पर एक बार आत्महत्या हत्या का रूप लेती है और हत्यारे के रूप में साथी बिंदा गिरफ्तार कर लिया जाता है । उसकी भरपूर पिटाई की जाती है । जबकि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि बिसेसर का असली हत्यारा दा साहब का दोस्त जोरावर है ।

इस उपन्यास में बिसेसर और बिंदा को निम्न वर्ग के युवक के रूप में चित्रित किया गया है लेकिन वे अपने अधिकार के लिए लड़ना जानते हैं और अन्त तक सत्ता के खिलाफ आवाज उठाते हैं । निम्न वर्ग के होने के कारण इनकी आवाज इन्हीं तक सीमित है । मज़दूर इनका साथ नहीं दे सकते क्योंकि उन्हें अपने पेट की चिंता है । बिंदा और बिसेसर के मनोदशा को लेखिका ने बड़े ही सूक्ष्म रूप में चित्रित किया है । तंत्र में फंसा निम्न वर्ग के युवक कूटनीति से काम नहीं लेते, परिणाम स्वरूप बिसेसर को मौत मिलती है और बिंदा को कारागार में, जहां रूई से भी बदतर उसकी धुनाई पुलिस करती है । सक्सेना ईमानदारी का दण्ड भुगतता है लेकिन उसमें बिंदा की शक्ल उभरी है । वह बिंदा के अधूरे काम को पूरा करने का दृढ़संकल्प लेता है ।

15. रथ से गिरी बांसुरी : हिमांशु श्रीवास्तव

इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने युवा के सोच व कर्म में जो अन्तर है और उस अन्तर से जो वैयक्तिक कुण्ठाएं जन्म लेती है, का बेबाक चित्रण प्रस्तुत किया है । कहने की हद तक आदर्श स्थापित करने की जो लालसा व उत्तेजना युवामन में है, वास्तव में कर्म की धरती का स्पर्श पाते ही चकनाचूर हो जाता है । इसका प्रमाण अनुपम का यह वाक्य है -- "कावेरी तुम ठीक कहती हो, मैंने सब आवेश में कह दिया, मगर अब मेरी समझ में नहीं आता कि जिनके साथ मेरा उठना-बैठना है\वे सब कुछ जानकर क्या कहेंगे ।"[6]

अनुपम एक कालेज में प्रोफेसर है । प्रोफेसर होने के नाते उसका संबंध अच्छे कलाकारों व कामकाजी पुरूषों से है जो अपने मन में अपनी भावी पत्नी का रूप तैयार करते रहते हैं । अनुपम अपने आप को एक आदर्शवादी सुधारवादी समझता व औरों से कहलवाना पसन्द करता है । परन्तु उसके संस्कार ऐसे नहीं हैं । असलियत के सामने आते ही वह मुँह चुराने लगता है। कावेरी रूप की धनी एक वेश्या की लड़की है । इतिहास से एम॰ए॰ कर चुकी है । उसकी इच्छा है कि कहीं अच्छी नौकरी मिल जाये या फिर अच्छा पति, ताकि उसकी मां की अंतिम इच्छा भी पूरी हो जाए और उसकी जिन्दगी भी सुख-चैन से गुज़र सके । ऐसी हालत में उसे अनुपमत एक सभा में मिलता है । अनुपम अपने भाषण में अपनी इच्छा जाहिर करता है कि वह किसी ऐसी लड़की से शादी करना पसंद करेगा जो समाज की नज़र में उचित नहीं है । कावेरी और अनुपम का परिचय होटल में होता है । जहां अनुपम चेचक की बीमारी से पीड़ित है । कावेरी उसे सहारा देती है और अपने घर लेकर अपनी सारी स्थितियों से उसे परिचित कराती है । अनुपम कावेरी के घर से बड़ी शान से कावेरी को अपनी धर्मपत्नी बनाने की नीयत से लेकर अपने घर वापस लौटता है।लेकिन अपने परिवेश में आते ही वह सम्भावित प्रश्नों से बेहद घबरा जाता है । वह कावेरी का परिचय आस-पडोस में एक परिचिता के रूप में कराता है । सामाजिक मान्यताएं तथा उसके संस्कार उसे इस कदर भयभीत करते हैं कि वह दोस्तों से मिलने-जुलने से भी कतराने लगता है । शराब पीने लगता है ।

वास्तव में अनुपम एक महत्वाकांक्षी मगर कमज़ोर युवक है । वह स्वयं से भयभीत है । लेखक ने अनुपम के माध्यम से युवकों की खोखली आदर्श नीति का पर्दाफाश किया है । उपन्यास से एक और संकेत मिलता है कि यह वर्ग अपने विचारों से चाहे जितनी क्रान्ति करें, यथार्थ के सामने घबरा जाते हैं । अपने उत्तरदायित्व से भाग निकलना चाहते हैं । इसके दो कारण हैं, -- "पहला कारण यह है कि भारतीय समाज में एक वेश्या के प्रति तिरस्कार की भावना तथा दूसरी तरफ युवामन की जोश व भीरूता । समाज से डरा

हुआ अनुपम अपने मन से और अधिक कायर हो जाता है । अपने दिये गये वचनों से मुड़ जाता है ।

16. उसका शहर : प्रमोद सिंन्हा

प्रमोद द्वारा लिखे गये इस उपन्यास में आज के जीवन में व्याप्त तनाव को उभारा गया है । सतीश जमाली के शब्दों में हर कोई एक दूसरे से कटा हुआ है । परन्तु बाहरी सतर पर एक सिलसिला ऐसा भी है जो व्यक्ति को संबंधों में बार-बार जोड़ता है । व्यक्ति जिस पूर्णता की तलाश में लगातार छटपटाता है उसी को स्पर्श करने में असफल भी होता है । "उसका शहर" के पात्र दशानन, एग्नी, श्रीमित्र, लुपिका और आमूल यह देखा जा सकता है । ये लगातार अपनी ही तलाश में छटपटाते रहते हैं ।

उपन्यास का नायक आमूल जो कि लतिका का पिता है, अपने बनाये हुए घेरे में लगातार डूबता-उतराता है । अपने को व्यापना चाहते हुए भी वह दूसरों का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं कर पाता । यही कारण है कि वह अपनी पत्नी के प्रति समर्पित भाव नहीं रखता है और पत्नी को चले जाने के लिए विवश कर देता है । एग्नी और मित्र का संबंध पति-पत्नी का होते हुए भी, बराबर कसैलापन धुला हुआ है । शिकायतों की ढेर पर वे एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । लुपिका युवा पीढी का प्रतिनिधित्व करती है । वह अपने दृष्टिकोण से अपने माता-पिता के संबंधों का विश्लेषण करती है । "आमूल का व्यक्तित्व दूसरों के सामने इतना तना क्यों है । दरअसल यह भी अपने आप में एक हीन ग्रन्थि है । ..... आमूल में यह भी एक अजीब बात थी कि वह तलाक के बाद भी हमेशा यही कहा करता था कि शादी उसने अपने लिए कम, पत्नी के लिए ही अधिक की थी ।" अनेक उलझनों में फंसी हुई लुपिका स्वयं द्वन्द्वशील नहीं है । वह प्रोफेसर दशानन के बहुत करीब तक जाती है लेकिन कहीं भावुक नहीं दिखती है । वह

दशानन से अपने संबंधों की व्याख्या करती हुई कहती है कि "न जाने क्यों इस बार मुझे लगा जैसे आप का मेरे साथ सच्ची सहानुभूति न होकर एक स्वार्थ है और वह शीघ्र ही समाप्त भी हो जायेगा ।"

लुपिका के चिन्तन को लेखक ने एक प्रौढ चिन्तन का रूप दिया है । वह प्रो० दशानन को पत्र लिखती है और स्पष्ट करती है कि वह किसी भी थोथे संबंध को अस्वीकार करती है । उसने देखा है और अनुभव से ही जाना है कि इन आजीवन संबंधोंमें सिवा एक समर्पित व्यक्तित्व के और कुछ भी नहीं रह जाता है । ...... जिन्दगी को जीने और उसे पूरी तरह निकटता से देखने के लिए एक जिन्दगी काफी नहीं है और जन्म-जन्मान्तर एक छलावे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । इसीलिए किसी भी बधाव की अपेक्षा यात्रा करते हुए जीने में ही वह अधिकतम सुविधा महसूस करेगी ।" लतिका का यह चिन्तन कहीं और से नहीं बल्कि आमूल और नीरा के संबंधों के विश्लेषण से उभरा है । आज के युग का मानव दिनोंदिन सिकुड़ता जा रहा है । संबंध केवल दूसरों के लिए है । अन्दर तो केवल उसे ढोने की थकान है । लुपिका मित्र व एग्नी के माध्यम से देख चुकी है कि बंधन किस तरह थका देते हैं । इसीलिए वह दशानन के साथ किसी तरह के बंधन में बंधना नहीं चाहती है बल्कि मुक्त रूप से संबंधों को निभाना चाहती है जिसे भारतीय समाज अनैतिक मानता है ।

17. मुरदा घर : जगदम्बा प्रसाद दीक्षित

इस उपन्यास में पहली बार महानगर बंबई के उस जीवन को आधार बनाया गया है जो सड़ांध, धूल और कीचड़ में सना हुआ है । यह दावा सही है कि इन लोगों की ... फुटपाथी निन्दगी जो सवँर नहीं सकती, खड़ी नहीं हो सकती और इसे भोगनेवाला तथा देखनेवाला सहन कर रहा है । "मुरदा घर" सफेद रोशनीवाली दुनिया से पूरी तरह जुड़ा हुआ

और बुरी तरह कटा हुआ है । यह सड़ी हुई दुनियाँ अपने आपसे भी कटी हुई लगती है । इस अपाहिज दुनियाँ का अंदाज ठूँठा और नंगा है परन्तु कहीं-कहीं आपसी सहानुभूति राहत दे जाती है ।

इस उपन्यास की शुरूआत कचरे के पुराने ढेर और एक पागल आदमी से होती है जो घूम-घूम कर कुछ खोजता है । यह ... पूरे उपन्यास पर छाया हुआ है । महानगरों का यह आदमी जानवरों के स्तर पर जीवित है । यहाँ दो दुनिया समानान्तर चलती है एक साफ-सुथरी आकर्षक व दूसरी बनी-ठनी रण्डियों की दुनिया, जिसमें बूढ़ी, जवान, और बच्चियाँ भी शामिल हैं । कचरे के ढेर पर होटल का फेंका जानेवाला कचरा भोजन है और फुटपाथ घर, मजदूरों को पत्थर मारना, गटर के नीचे ताश खेलना, जुआ खेलना तथा कुत्तों को पत्थर मारना, जवान व बच्चों का मनोरंजन के साधन हैं । इस उपन्यास के युवावर्ग रण्डियों के अवैध संतान हैं जिनका बाहरी दुनिया से कोई सरोकार नहीं । होटल का कचरा खाना और ताश तथा जुआ खेलना ही काम है । इनको किसी से कोई शिकायत या मतलब नहीं है। बस जी रहे हैं और जीते रहेंगे । व्यवस्था अपनी जगह है और ये अपनी जगह है । भिखारी भी तरह तरह के हैं । इनको भीख अल्लाह के नाम पर मिल जाये या भगवान के नाम पर कोई फर्क नहीं पड़ता । रंडी बनने से पहले नयी छोकरी की दास्तान को इस बोध से आँका जा सकता है कि वह भागकर शहर तो आ जाती है ... लेकिन जब मुहब्बत झूठी निकलती है तो वह घर वापस जाना नहीं चाहती क्योंकि वह पारिवारिक संस्कार व सामाजिक मान्यताओं से बुरी तरह डरी हुई है । उसको रण्डी बनना स्वीकार है लेकिन वापस अपने पिता के घर जाना नहीं चाहती ।

18. भ्रम भंग : देवेश ठाकुर

इस उपन्यास में मध्यवर्गीय युवक के मन में पले अनेक भ्रमों का एक-एक करके टूटता दिखाया गया है । कथा के केन्द्र में चन्दन नामक युवक है जो महत्वाकांक्षी और अध्यवसायी है । वह अपने परिवार, समाज और

स्वयं के लिए सपने पालता है । उसके सपने सत्य होने की जगह भ्रम बनते चले जाते हैं और आर्थिक अभावों से जूझता हुआ चन्दन लगातार यह अनुभव करता है कि वह अपने परिवार के लिए पैसा कमाने की मशीन बन रह गया है । परिवार के साथ उसका संबंध मात्र सिक्कों पर ठहरा हुआ है । उसके शब्दों में संबंध की गांठ जब मात्र पैसे से जुड़ने लगती है तो संबंध कुरूप बन जाते हैं, पैसा मैल जो है । घर व परिवार के प्रति चन्दन का व्यवहार बहुत ही जिम्मेदारीपूर्ण है । परन्तु समय के साथ धीरे-धीरे सच्चाई उसके भ्रम को तोड़ती है । वह जानता है कि घर में ऐसा कोई कोई भी व्यक्ति नहीं है जो उसके बारे में सोचे । सभी को पैसा चाहिए । घर से आनेवाले सभी पत्रों में सिवाय पैसे के और कुछ नहीं लिखा हुआ होता है ।

चन्दन आर्थिक परेशानियों से संघर्ष करता है । वह मन से हार मानने के लिए तैयार नहीं है । उसे उम्मीद है कि कभी-न-कभी वह दिन अवश्य आयेगा जब सब कुछ ठीक हो जाएगा । "मैं भी थक गया हूं लेकिन मैं मानना नहीं चाहता कि थक गया हूं, जिस दिन मान लूंगा, मेरी मौत हो जायेगी ।" भविष्य के सुंदर सपनों के बीच चन्दन झूलता रहता है । वह जानता है कि मध्यवर्गीय संस्कार व्यक्ति के विकास में बाधक है फिर भी वह अपने अपने स्वयं को अपने संस्कारों से मुक्त नहीं कर पा रहा है । वह सोचता है कि "यदि मध्य वर्ग कोई व्यक्ति होता तो वह वहीं चौराहे पर उसे नंगा करके उस पर थूक देता, लेकिन वह व्यक्ति कहां है । वह तो एक मेण्टेलिटी है, एक सडांध से भरी हुई प्रवृत्ति । इस सडांध से कब मुक्ति मिलेगी हमें ।"

चन्दन का भ्रम जीवन के हर क्षेत्र में फैला हुआ है । प्रेम के क्षेत्र में भी वह उन्हीं भ्रमों का शिकार है । मेधा के साथ जीवनयापन करने का स्वप्न देखता रहता है । वह देखता ही नहीं बल्कि इन्हीं सपनों के सहारे अपने अकेलेपन को भी बांटता है । उसके भ्रम ज्यादा दिनों तक साथ नहीं निभा पाते । एक के बाद एक लगातार टूटते चले जाते हैं । प्रेम के क्षेत्र

में पहला झटका उसे मेघा देती है तो दूसरा सुमन । ठीक प्रेम की तरह उसे अपने परिवार से भी लगातार उपेक्षा मिलती है । वह समझ जाता है कि परिवार में उसकी स्थिति महज पैसा पैदा करनेवाली मशीन सी है । जो माँ उसे कभी राजकुमार से सम्बोधित करती थी वही माँ उसके ही घर में रहकर उसकी उपेक्षा करती है । चन्दन अन्त में समझ जाता है कि जीवन में कभी न कभी निर्णय लेना ही पड़ता है और लेता है । अपने ही भाई-बहनों व माँ से अलग होकर अपने जीवन की सार्थकता को महसूस करता है । वह कहता है कि हमने अपनी जिम्मेदारी निभायी है।अब यह घर मेरा है । यह फर्श कितना ठंडा है, कितना साफ है । इस पर सीधे लेट जाओ । ऊपर छत की ओर देखा ..... अब कहीं कोई जाला नहीं है । कोई गन्दगी नहीं, सब साफ है । घर भी और मन भी । गमों से मुक्त जिन्दगी ...... साफ और धुली हुई जिन्दगी ।"

अत: देवेश ठाकूर ने इस उपन्यास में एक अध्यवसायी मध्यवर्गीय युवक का सही चित्र खींचा है । एक समय मन लगातार भ्रमों में जीता है तो वही यथार्थ में आकर क्रमश: टूटता चला जाता है । इन दोनों ही स्थितियों में वह कहीं भी अपने संस्कारों से अलग नहीं हो पाता ।

१९. <u>बेघर : ममता कालिया</u>

इस उपन्यास में ममता कालिया ने युवा मानस की सम्भोग संबंधी मान्यताओं को उभारा है । इसका अर्थ: यह नहीं है कि आधुनिकता का बोध सन्दर्भों को उजागर नहीं करता, संबंधों और स्थितियों को आधार बनाता है । इस उपन्यास की केन्द्रीय भाव आधुनिकता और संस्कारबद्धता के बीच उत्पन्न तनाव हैं ।

उपन्यास का नायक परमजीत निम्न मध्यवर्गीय युवा है । बचपन से ही लड़की को लेकर उसकी दृष्टि परम्परागत व रूढियों से ग्रस्त है । सौंदर्य

की नाप-तौल उसकी अपनी है । बंबई जैसे महानगरों में जाकर भी परमजीत अपने पैमाने में परिवर्तन नहीं कर पाता है । वह लड़की के कुंवारेपन को पुराने कसौटी पर परखता है । संजीवनी से शारीरिक संबंध स्थापित करने के बाद उसे यह अहसास कचोटता है कि वह पहला व्यक्ति क्यों नहीं है । इस संशय का कारण मात्र यही है कि संजीवनी चीखती, पुकारती नहीं है और खून नहीं आता है । इस तरह परमजीत पहला नहीं है । इसका दु:ख उस पर इस हद तक हावी हो जाता है कि वह दोनों के संबंधों को तोड देता है । नायक का यह संशय कहां तक शरीर विज्ञान पर आधारित है, यह दूसरा प्रश्न है लेकिन संशय जब कीड़े की तरह मस्तिष्क में घुस जाता है तो वह खोखला किये बगैर नहीं रह सकता । उपन्यास इस रूढ़ि पर चोट करता है । संजीवनी शादी से पहले शारीरिक संबंध स्थापित करके भी कुंवारी है चरित्रहीन नहीं । परमजीत का जीवन ठहराव से घिर जाता है और टूटने लगता है । वह रमा जैसी कंजूस और फूहड़ लड़की से शादी करने के बाद निरन्तर अजनबीपन व खालीपन के बोध से भरता जाता है । यहां तक कि रमा की अतिवादिता उसे पुरजा बनाकर छोड़ देती है और उसकी मत्यु हो जाती है ।

यह उपन्यास युवा मानस की परम्परागत विचारों व संस्कारों को उभारता है । शरीर विज्ञान की अज्ञानता व वैयक्तिक मान्यताओं के कारण जीवन कितना अव्यवस्थित हो जाता है, इसमें देखा जा सकता है । समाज की वर्जनाओं ने युवा पीढी को भटकाया है और भटका रहा है ।

20· यात्राएं : गिरिराज किशोर

इस उपन्यास की यात्रा बाहर से कम अन्दर की ज्यादा है । इसमें युवा दम्पत्ति की एक दूसरे को समझने की कोशिश और कशमकश में बीते कुछ दिनों की नाजुक कहानी को लिया गया है । मंसूरी की यात्रा बाहर की

और मंसूरी में यात्रा भीतर की है । जहाँ एक दूसरे को समझने की कशमकश जारी है । पत्नी सुबह ताजी लगती है, दिन में खटास सी लगती है और रात होते-होते वह बासी हो जाती है । पत्नी की यह स्थिति पति में शिथिलता पैदा करती है और यही शिथिलता मैं के अन्दर यह भावबोध जगाता है कि वन्या कुछ दिन साथ रहने के बावजूद भी उतनी ही अनजानी व अपरिचित सी है जितना रात के अंधेरे में यह पहाड़ी नगर । इस प्रकार अन्दर की यात्राएं अन्दर से शुरू होकर अन्दर ही अपरिचय के साथ बंद हैं । क्या यह जानते हैं कि पति की इस स्थिति के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है -- "मैं भी इस बोध से परे नहीं हूं, फिर भी दोनों इस नीयति से घिरे हुए हैं, अभिशप्त है । उपन्यास में पति-पत्नी बिना शारीरिक संबंध स्थापित किये एक दूसरे से अपरिचित ही रहते हैं, जबकि अन्य उपन्यासों में पति-पत्नी इसके बाद भी । मंसूरी की बारिश में सब कुछ भीग जाता है सिवाय इन दोनों के । आचरण के स्तर पर वे आपस में आपसे तुम पर नहीं उतर पाते । उपन्यास के अन्त में "मैं" वन्या को किसी और को सौपने की बात सोचता है और "मैं" में नाता की याद ताज़ी हो जाती है और वे मसूरी से वापस लौटने के लिए बाध्य होते हैं । लौटना कहाँ है यह अनिश्चित है ।

गिरिराज किशोर ने इस उपन्यास में युवा दम्पत्ति की उस मानसिक स्थिति का बेबाक चित्रण किया है जिसमें आधुनिक बोध के साथ अहम् का प्रश्न जुड़ा हुआ होता है । अपना व्यक्तित्व है तो अपना चिन्तन व अपनी दृष्टि भी है और अपने परिवेश से उत्पन्न हुआ है। और ऐसे परिवेशगत प्रश्नों का जवाब आसानी से नहीं मिलता है । समस्याओं मौजूद है लेकिन हल नदारद है । "मैं" के लिए पूरा नगर ही अपरिचित है जो उसे देख रहा है और "मैं" उससे कोई सामंजस्य नहीं बैठा पाता ।

21. आपका बंटी : मन्नू भंडारी

"व्यक्ति की अन्तरंगता और उसके सामाजिक परिवेश के सानुपातिक

उपयोग से ही रचना अपने सार्थक होने का प्रमाण पेश करती है । व्यक्ति की अन्तरंग स्थिति पर सामाजिक परिवेश का दबाव निरन्तर पड़ता रहता है । किसी भी व्यक्ति की एकान्त से एकान्त परिस्थिति सामाजिक संदर्भ से बिलकूल कटी हुई नहीं हो सकती है ।"[17] "आपका बंटी" ऐसे ही सानुपातिक उपयोग की रचना है ।

"आपका बंटी" एक भिन्न कोण से लिखी गयी कृति है । पात्र अपने अकेलेपन से मुक्त होने के लिए प्रयास करते हैं । बंटी उम्र के स्तर पर युवा नहीं है लेकिन उसका परिवेश उसे उम्र से पहले युवा बना देते हैं । शरीर विज्ञान इसे असामान्य कहता है । अपसामान्य बंटी समाज व परिवार के लिए समस्या बन कर सामने आता है । अपने अधूरेपन को पूर्ण करने की तलाश में माता-पिता जहां तलाक जैसी पद्धति को अपनाते हैं वहीं यदि बंटी उम्र से पहले युवा की तरह मां-बाप के संबंधों का विश्लेषण करता है तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए । इस उपन्यास की समस्या जितनी मनोवैज्ञानिक है उतनी ही सामाजिक भी है । "इसे केवल दाम्पत्य जीवन की दुर्घटना या नारी के अहम् की समस्या अथवा आधुनिक बोध से प्रभावित नारी के मानसिक संघर्ष की रचना कहना पर्याप्त नहीं है । यह तो आधुनिक भाव-बोध की जटिलता और सामाजिक जीवन में व्याप्त विघटनात्मक प्रवृत्ति की उपज है । इस उपन्यास के पात्र अन्दर से रीत गये हैं और रीता हुआ व्यक्ति प्राय: अपने परिवेश से कट जाने का प्रयास करता है । परन्तु "आप का बंटी" के पात्र परिवेश से पलायन नहीं करते बल्कि उनका साहसी मन संतुलन बनाना चाहता है । ये अपने मौजूदा परिवेश में सक्रिय व सचेष्ट है । शकुन और अजय अलग-अलग रहते हैं । इन दोनों के बीच इनका एक 9 साल का बच्चा बंटी है जो मां के साथ रहता है । लेकिन उसे अजय भी बहुत प्यार करता है । अजय व शकुन के बीच बंटी घड़ी के पेण्डूलम की भांति कभी इधर कभी उधर डोलता रहता है । अजय शकुन से तलाक लेकर रमा से शादी कर लेता है और जब उसका एक

बच्चा भी है । इधर शकुन भी यही सोचती है कि वह भी डा० जोशी से शादी करके अपने अन्दर की रिक्तता को भर देगी । वह ही क्यों बंटी के लिए अपने सुखों को बलि दे । जब अजय बंटी के बारे में नहीं सोचता तो वह क्यों सोचे । बंटी जो कभी मां-पिता के बीच पुल नहीं बन पाया । अतः वह अपनी शक्ति को नये सिरे से संयोजित कर जोशी से विवाह रचा लेती है । वह चाहती है कि इस विवाह को बंटी भी स्वीकार कर ले और डा० जोशी के बच्चों के साथ घुल-मिल जाये, लेकिन बंटी ऐसा नहीं कर पाता । वह न तो जोशी को पिता के रूप में स्वीकार कर पाता है और न ही शकुन के प्यार में दूसरों को रिश्तेदार बनते देख सकता है । अस्वीकार की स्थिति में बंटी बेहद जिद्दी और भावुक हो जाता है । उसकी बाल-सुलभ जिज्ञासा को माता-पिता का तनावपूर्ण और उलझा हुआ व्यक्तित्व अधिक कुण्ठित बना देता है । वह मां को चोट पहुंचाने की नीयत से पिता अजय के पास चला जाता है और वहां नयी मां को स्वीकार न कर पाने की स्थिति में उसे होस्टल में जाना पड़ता है । यह बात ध्यान देने योग्य है कि मां-बाप के बीच उभरे तनावों की मार बच्चों को झेलनी पड़ती है । बंटी भी इसी नीयति का शिकार है । उसे न तो मां के पास रहना गंवारा है न पिता के पास । अन्ततः उसे दोनों से दूर होस्टल में रहना पड़ता है । बंटी मध्यवर्ग का व्यक्ति है । मध्यवर्ग भीतर से आत्मविभाजित होता है । इस वर्ग में भी व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की प्रधानता रही है । बंटी के आत्मविश्वास और अहम् को मध्यवर्गीय जीवन ने गहरे तक प्रभावित किया है । अतः बंटी उम्र में बच्चा होते हुए भी युवा पीढ़ी का ही प्रतिनिधित्व करता है ।

22. नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृतलाल नागर

ब्राह्मण संस्कार में पले नागर जी ने एक नाजुक कथ्य की सृष्टि की है । यदि निर्गुनिया के चरित्र प[illegible]का मनोवैज्ञानिकता को छोड़

दिया जाए, तो यह रचना सामाजिक जकड़न पर शक्तिशाली प्रहार करती है । बुर्जुआ संस्कृति सुविधाभोगी संस्कृति है । इसलिए इस संस्कृति में पलनेवाले व्यक्ति भंगी युवतियों या दूसरे वर्ग की उपेक्षित जातियों की औरतों के साथ सहवास करने में अपनी मर्यादा की हानि कभी नहीं समझते हैं ।

इस उपन्यास में युवा मोहन का चरित्र अधिक वास्तविक और तीखा है । उच्च वर्गीय संस्कार के दोगलेपन की प्रक्रिया के आक्रोश से भरा हुआ उसका विद्रोही मन निम्न वर्ग की सच्चाई बन जाता है । उसका विद्रोह वर्ग का विद्रोह है । वह अपने लिए भी समान सुविधा और समान की आशा रखता है । "मुझे नफरत है इन ऊंची कौमवालों से साले, मोहब्बत के शौक में हमारी औरतों को अकेले में दबोचते हैं और फिर उन्हीं से जो बच्चे होते हैं उन्हें छूते भी घिनाते हैं । "यह प्रतिक्रिया हमारे सामाजिक परिवेश की सही अभिव्यक्ति है । नारी देह को मंदिर माननेवाले वर्ग की मुद्रा उस व्यापारी से भी अधिक खतरनाक है जो अधिक अर्जित करने में हर तरह के सामाजिक मूल्यों का उल्लंघन करता है । इसीलिए मोहन और उसका परिवार प्रारंभ में निर्गुणता को अधिक कष्ट देते हैं जिससे उनके अहम् भाव की संतृप्ति मिलती है । मोहन के जीवन-संदर्भ में ही भंगी जीवन की विवशताओं, रूढ़ियों व आशंकाग्रस्त मानसिक स्थितियों का चित्रण मिलता है । निर्गुणियां ब्राह्मणी से मेहतरानी बनती है । ऐसी स्थिति में उसके भीतर दो संस्कारों को लेकर गहरा अन्तर्द्वन्द्व चलता है । अपने जन्मजात संस्कारों से विलग होकर नये संस्कारों को अपनाना आसान नहीं होता है । अत: परिणामस्वरूप वह गहरे द्वन्द्व से गुजरती है । निर्गुणियां का यह संघर्ष अपने से ही है । वह अपने स्वयं को जन्मजात संस्कारों के विरूद्ध तैयार करती है क्योंकि उसे मोहन से चाहे सर्वस्व सुख न मिला हो, परन्तु मोहन ने अन्य पुरूषों की तरह उसे शरीर की मांसलता को हृदयहीन होकर तो नहीं देखा है । यही कारण है कि वह अन्त तक मोहन के आकर्षण में अपना वैधव्य जीवन बिता देती है । "यह सच था कि मोहन जब मुझे भगाकर अपने घर

ले गया तो भले ही उसने मेरी जात बदल दी, परन्तु स्त्री की हैसियत से मेरा दरजा ऊँचा कर दिया था। उसने मुझे रण्डी, रखैल नहीं बल्कि अपनी घरवाली बनाकर रखा था।"

23. सूरज-मुखी अँधेरे की : कृष्णा सोब्ती

इस उपन्यास में एक ऐसी युवा लड़की के अनुभवों व उसकी मानसिकता को दिखाया गया है जिसके साथ बचपन में बलात्कार होता है। बलात्कार के कारण उसके सहपाठी उसे चिढ़ाते व अपमानित करते हैं। अपमानित हो रत्ती सहपाठियों को पीटती है और धीरे-धीरे उत्तेजनाहीन हो दैहिक सुख भोग के प्रति जड़ हो जाती है। उसके जीवन में अनेक पुरूष आते हैं और उसके शरीर को भोगने का प्रयास करते हैं परन्तु वे सफल नहीं हो पाते। अन्त में दिवाकर के संसर्ग में आकर उसकी जड़ता टूटती हैऔर इस शारीरिक भोग का समारोह आयोजन होता है।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने एक परिवेशगत कुरूपता में जड़ हुई युवा नारी का दर्द तथा अकुंलाहट को उभारने का प्रयास किया है। यथार्थ को जिस क्रूरता, अकुलाहट व भयानकता को लेखिका उभारना चाहती थी, उभार नहीं पाया है। दिवाकर के साथ के संसर्ग को लम्बा बताया गया है। लड़के व लड़कियों की पिटाई करती हुई रत्ती की मानसिकता से उसके आक्रोश को दिखाया गया है। रत्ती का मानसिक विकास नहीं हो पाया, बल्कि एक कौतूहल बनकर रह जाता है। ऐसा लगता है कि लेखिका का उद्देश्य दैहिक सुख भोग की जड़ता को तोड़ना है और अंत में दिवाकर तोड़ता है।

24. कड़ियाँ : भीष्म साहनी

यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक धरातल पर यात्रा करनेवाली सामाजिक विसंगति की कथा है। उपन्यास की नायिका प्रमिला अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण दाम्पत्य जीवन की यौवन उष्मा को नहीं पहचान पाती।

वह पूजा-पाठ, पति को सेवा और पति से अधिक अपने इकलौते पुत्र में दिलचस्पी लेनेवाली धर्मपरायण नारी है । प्रमिला के विपरित पति महेन्द्र है । वह यौन-उष्माओं से अतृप्त है, तृप्ति के लिए एक बंगाली लड़की का सहारा लेता है । पहले तो संस्कारों से ग्रस्त महेश सुषमा के साथ अपने इस संबंध को पाप समझता है लेकिन जब इस प्रकरण को लेकर प्रमिला अधिक उग्र हो जाती है तो महेश को अपराध भावना मिटने लगती है । वह सुषमा के साथ अपने संबंधों को न्याय संगत ठहराने लगता है । वह बड़ी तीव्रता के साथ प्रमिला की नारीत्व को अपर्याप्त, शुष्क, ठंडा और कुल मिलाकर उसकी कुरूपता को महसूस करने लगता है ।

लेखक ने इस उपन्यास में एक ओर प्रमिला के सामाजिक वातावरण से प्राप्त संस्कार, उसकी भयावहता, परिणति, आर्थिक अभाव, लाचारी व पीड़ा का चित्र खींचा है । दूसरी ओर इसके बाद नारी के अन्दर धीरे-धीरे उगती हुई आत्मनिर्भर होने की भावना, परिस्थितियों को समझते हुए सामंजस्य करने की ताकत को दिखाया है । यही एक नयी नारी की अपनी पहचान है । अब वह महेश के पीछे भागती नहीं बल्कि कुछ करने और उसको आगे बढ़ाने की सोचती है और यही इस उपन्यास की विशिष्टता है । यहीं पर आकर उपन्यास को नया अर्थ, नई दिशा प्राप्त होती है । स्त्री-पुरूष के संबंधों की टूटती हुई कड़ियों के क्रम में उभरनेवाले अनेक मनोवैज्ञानिक धरातलों, परिस्थितियों और पात्रों को लेखक ने यथार्थ के धरातल पर उभारा है । ये सब मिलकर जो समग्र चित्र निर्मित करता है, वह अन्ततोगत्वा अपनी ही पीड़ा और यातना के भीतर से उगनेवाली नयी नारी के व्यक्तित्व की जिजीविषा ध्वनित करता है और उपन्यास को एक नये मूल्य से जोड़ता है ।

25· सोया हुआ जल : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

यह एक लघु उपन्यास है । उपन्यास का कथानक बहुत छोटा है । परन्तु एक नये ढंग का अपने आप में अनूठा, नये शिल्प से सजा विभिन्न पात्रों

का समकालवर्तित मन:स्थितियों का विश्लेषण करनेवाला है । यह सब कुछ सांकेतिक या प्रतीकात्मक पद्धति से लिखा गया है ।

इस उपन्यास में यात्रिशाला की एक रात का वर्णन है । बीमार बूढा पहरेदार यात्रिशाला में पहरा दे रहा है । वह बेंच पर बैठे-बैठे उंघता रहता है । बीच-बीच में वह चक्कर काटता हुआ कमरों के पास से गुजरता है । वह यात्रिशाला के विभिन्न कमरों के पास से छिट-पुट चर्चाएं सुनता है । ये सारी की सारी चर्चाएं एक दूसरे को यथार्थ की ओर ले जानेवाली हैं । इन सभी यात्री जीवों की आत्माएं प्यासी हैं । "सोया हुआ जल" अन्तश्चेतन में सोई आन्तरिक प्यास की प्रतीक है ।ताल का जल जब जागता है तो सबेरा होता है । इस नयी सुबह से नये जीवन की सूचना मिलती है । भीतर से परिवर्तन होना सोये हुए जल के जगाने का प्रतीक है । बूढा प्रहरी जर्जर मानवता का प्रतीक है तथा उसकी मृत्यु जर्जर मानवता को ध्वनित करती है । बाह्य परिस्थितियों के ही बदलने से काम नहीं चलेगा, आदमी को भीतर से भी बदलना पड़ेगा । पहली आवाज, नया सबेरा आ रहा है, नयी रोशनी आयेगी, नयी जिन्दगी आवेगी, उसे कोई रोक नहीं सकता ।" दूसरी एक परिचित आवाज "निश्चय ही । लेकिन उसका आधार इन्सानियत पर होगा, करूणा और सम्वेदना पर होगा । यही उपन्यास का भविष्य है ।

इन उपन्यासों के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आठवें दशक के उपन्यासों में युवा जीवन संबंधी कई पहलूओं को चित्रित किया गया है । युवा वर्ग के जीवन व उसके व्यक्तित्व विकास का मूल आधार पारिवारिक परिवेश है । यही उसे समाज के प्रति उन्मुख करते हैं । जीवन के प्रारंभिक काल में जिस तरह का परिवेश होगा, युवामानस भी उसी के आधार पर निर्मित होगा ।

.....

संदर्भ सूची

1• विद्रोह और साहित्य - नरेन्द्र मोहन {सं०} प० 17

2• आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास - डा० रामविनो सिंह - पृ• 2

3• आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास : डा० विनोद सिंह - प• 6

4• विद्रोह और साहित्य - नरेन्द्र मोहन {सं०} पृ• 17

5•

6•

7• अपना मोर्चा : काशीनाथ सिंह - भूमिका

8• आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास - डा० रामविनोद सिंह - पृ• 65

9• हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य : सं० डा० महीप सिंह, पृ• 129

10• हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य : सं० डा० महीप सिंह, पृ• 132

11• अन्तराल - मोहन राकेश, पृ• 101

12• अन्तराल - मोहन राकेश, पृ• 102

13• अन्तराल - मोहन राकेश, पृ• 217

14• काली आंधी - कमलेश्वर - प• 21

15• काली आंधी - कमलेश्वर - पृ• 31

16• रथ से गिरी बासुरी - हिमांशु श्रीवास्तव - प• 146

17• आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास - डा०रामविनोद सिंह, पृ• 9

तीसरा अध्याय

० युवा परिवेश :

विश्व के राजनैतिक इतिहास में भारतीय स्वतंत्रता को एक महत्वपूर्ण घटना माना जाता है । इस घटना ने जहां एक ओर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर अपना प्रभाव डाला वहीं उसने दूसरी तरफ भारतीय समाज, परिवेश, संस्कृति और मूल्यों को भी प्रभावित किया । "पिछले दशकों में जहां राष्ट्र में नोन्मेष, नव-जागरण व बहुर्मुखी आर्थिक सामाजिक, औद्योगिक विकास को दिशाएं खुली वहीं सामाजिक, राजनैतिक विषमता, विसंगति व विकृतियों ने आम आदमी को अनेक समस्याओं से बांध दिया ।"[1] समकालीन स्थिति में लोगों का जीवन अनेक अन्तर्द्वन्द्वों एवं अन्तर्विरोधों से ग्रस्त रहा है । समकालीन परिवेश ने व्यक्ति को भीतर तक अनेक बार तोड़ा है । उसके जीवन में सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं और व्यवस्था के बीच इतना संघर्ष है कि वह सर्वमान्य निष्कर्ष पर पहुंचने में अपने आपको असमर्थ व असहाय पाता है ।

परिवेश से हमारा तात्पर्य यह है कि, जिसमें राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक गतिविधियों से निर्मित एक वातावरण हो, जिसमें मानसिक विचार भी परिवेश के निर्माण में सहायक होते हैं । परिवेश ही है जो अपने साथ सामाजिक विषमताओं एवं मानवीय संवेदनाओं का एक पूरा संसार लिए रहता है ।

प्रत्येक युग के परिवेश की अपनी विशेषताएं होती हैं । "परिवेश निरन्तर परिवर्तनशील है । परिवेश परिवर्तन के कारण लेखकों के चारित्रिक वैशिष्ट्य में परिवर्तन हो जाता है और फलस्वरूप साहित्यिक प्रवृत्तियां भी बदल जाती हैं ।"[2]

आठवें दशक कापरिवेश एक ऐसा परिवेश है जिसमें, भारतीय इतिहास के किसी भी काल की विसंगति व बेमानी, मौजूद है । सांस्कृतिक रिक्तता ने भारतीय समाज को बिलकुल खोखला कर डाला है । आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से टूटे समाज को फिर भी सरलता से उबारा जा सकता है किन्तु जो समाज सांस्कृतिक दृष्टि से मूल्यहीन हो जाता है, उसका उपचार बहुत सरलता से नहीं होता, क्योंकि मूल्यों के अभाव में समाज सहज रूप से ही अमानवीय लक्ष्यों की ओर गतिवान होने लगता है। अत: परिवेश कोई अमूर्त प्रत्यय नहीं है, प्रत्युत उत्पादन के साधनों तथा उत्पादनों के संबंधों से बने सामाजिक ढांचे का नाम ही परिवेश है ।

युवा परिवेश का तात्पर्य उन तमाम परिवेश से है जिसमें बच्चा युवा बनता है और अपने अन्दर कुछ करने, कुछ कर गुज़रने की तमन्ना रखता हुआ कर्मभूमि पर उतरता है । यह वह कर्म भूमि है जहां उसे हर कदम पर विसंगतियों व विकृतियों का सामना करना पड़ता है । आज की युवा पीढ़ी इन्हीं विकृतियों से भयभीत, आक्रोशी व पलायनवादी बनती जा रही है । पारिवारिक और शैक्षणिक वातावरण भी इसके दूषित प्रभाव से बच नहीं पाये हैं । बच्चा ज्यों-ज्यों उम्र के साथ बड़ा होता जाता है परिवेश की समझ उसमें बढ़ती जाती है और युवा का व्यक्तित्व उसके आस-पास के परिवेश से ही निर्मित होता है ।

1. आर्थिक परिवेश :

स्वतंत्र भारत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण चेतना अर्थ की रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सत्ता हस्तांतरण से भारतीय नेताओं को देश की आर्थिक प्रगति और समाजवादी समाज व्यवस्था की स्थापना की दिशा में सोचने का अवसर मिला। आज़ादी के बाद वरिष्ठ नेताओं का सबसे पहले ध्यान देश की बिगड़ी अर्थ व्यवस्था को मजबूत करने की ओर गया। परिणामस्वरूप पंचवर्षीय योजनाओं की संधारणा बनी जिनका मूल उद्देश्य गरीबी हटाना, बेरोजगारी को खत्म करना, औद्योगीकरण और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना था। परंतु इन योजनाओं को कार्यरूप में पूर्ण सफलता नहीं मिली। परिणाम यह हुआ कि गरीब दिनों-दिन और गरीब तथा अमीर और अमीर, होते गये। समाज में रहन-सहन के स्तर में लगातार अन्तर आता गया। औद्योगीकरण की नीति के कारण आर्थिक क्षेत्र में हमने कुछ हद तक सफलता तो पायी लेकिन दुर्भाग्यवश एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया जो श्रमिक और उद्योगपति के बीच का वर्ग है और धीरे-धीरे इस वर्ग के अनेक उप-वर्ग होते चले गये। भ्रष्टाचार, बेईमानी, चोरी आदि का बढ़ावा इसी वर्ग के कारण अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है।

हमारी अर्थ व्यवस्था पर पूंजीवाद की गहरी छाप है और समाज शोषित तथा शोषक दो वर्गों में बट गया है। फलस्वरूप वर्ग संघर्ष की एक नई भूमिका तैयार हो गयी है। देश में दिनोंदिन बेरोजगारी, जनसंख्या और गरीबी का मुंह बढ़ता जा रहा है। समाज अपनी रूढ़ियों व परम्पराओं में आज भी जकड़ा हुआ है। अशिक्षा व चरित्रहीनता के कारण व्यक्ति समस्याओं के मूल को समझ ही नहीं पाता और न ही जड़ हुई रूढ़ियों व मान्यताओं को छोड़ता

है । परिणाम यह हुआ है कि बेरोजगारी और जनसंख्या में अपार बढ़ोत्तरी होती जा रही है । एक तरफ खाने के लिए अन्न नहीं मिलता है तो दूसरी ओर उच्च वर्ग के लोग अपार धन बाहर के बैंकों में जमाकर देश की सम्पत्ति को विदेशों में ले जाकर ऐश करते हैं । यों तो आर्थिक स्तर को ऊंचा करने के लिए सहकारिता आन्दोलनों का प्रचार किया जा रहा है । लेकिन परिणाम में भ्रष्टाचार रिश्वतखोरी और सरकार विरोधी नारों का ही बोलबाला रहा है । "परिवार नियोजन" के कार्यक्रम व आंकड़े भ्रष्टाचार के गिरफ्त में इस कदर उलझ गए हैं कि उसके परिणाम को तेज़ी से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है ।

पूंजीपति अपने औद्योगीकरण की नीतियों के तहत नगर की जनता का शोषण कर रहे हैं । शहर के बीच जहरीले उद्योगों का निरंतर चलना और उससे समय-समय पर जहरीले गैसों का रिसाव व देखते-देखते शहर का मुरदा घर में बदल जान, पैसे की महत्ता को इंसानी रूह से बेहतर साबित करता है । और सरकारी की नीतियों का भी खुलासा करता है । कहने के लिए सरकार ने कई तरह की नीतियां एवं अधिनियम बनाये हैं लेकिन उनका कार्यान्वयन शून्य लगता है । आठवें दशक तक आते-आते सरकार की नीयत भी स्पष्ट हो जाती है । लेखक उपन्यासों के माध्यम से सरकारी नीतियों का उपहास उड़ाने से हिचके नहीं हैं ।

आठवां दशक इसलिए भी रेखांकित किया जाना चाहिए, क्योंकि यहां- तक आते-आते अर्थ का महत्व मनुष्य के जीवन से भी बड़ा हो जाता है । पैसा इंसान का वह जादूई चिराग है जिसके बल पर इज्जत, मान, शोहरत, खुशी, सुख, आराम, संबंध, दोस्त आदि-आदि सभी चीजें प्राप्त की जा सकती हैं । पैसे से भूख तो मिटती ही है, वह अवगुण व कुरूपता को भी गुण और सुंदर में बदल देता है । पैसे के

अभाव में जीवन जानवर से भी बदतर हैऔर मौजूदगी में इंसान भगवान से भी पूज्य, आदरणीय व जादूगर है । आज के परिवेश में धन एक ऐसी वस्तु के रूप में उभरा है जिसके सामने अर्जनकर्त्ता भी हाथ जोड़े गिडगिडाता नज़र आता है । आज पैसा सभी के लिए परम प्रिय है । परिवार, समाज, राजनीति तथा शैक्षणिक सभी क्षेत्रों में पैसा सर्वोपरि है । पैसा वह जीवन जल है जिसके अभाव में मानव झुलस जाता है । चरित्रवान व कर्मठ युवक अपने राह से जुदा हो जाते हैं । आज युवा वर्ग यह समझने लगा है कि पैसे के बल पर कुछ भी किया जा सकता है । पैसा ही पारसमणी है, पैसा ही संजीवनी है । पैसे की आवश्यकता जीवन में जितनी बढ़ती जा रही है, युवक के लिए उसे प्राप्त करना उतना ही दुश्कर होता जा रहा है ।

एक समय ऐसा था जब व्यक्ति रोटी, कपडा और मकान के लिए ही प्रयत्न करता था और उसको प्राप्त कर, चैन से सुखपूर्वक रहता था । आज के वैज्ञानिक युग में रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता तो बनी हुई है परन्तु इसकी परिभाषा व सीमा बदल गयी है । विज्ञान ने तरह-तरह के प्रयोग कर मानव को अनेक सुविधाएं प्रदान की है और ये ही सुविधाएं मानव को अपनी ओर आकर्षित कर उसे चरित्रहीनता की ओर ले जा रही है । आज मनुष्य अपनी मूल आवश्यकताओं की सीमा में नहीं रहा है । उसे ऐश की चीजें भी आवश्यक जान पडती हैं । वह उसे प्राप्त करने के लिए अपने नैतिक मर्यादाओं का अपने ईमान का वध करता हुआ जड़ता की जिन्दगी की ओर उन्मुख होता जा रहा है । यही कारण है कि पैसे का महत्व बढ़ता जा रहा हैऔर समाज में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, काला बाजारी आदि को प्रश्रय मिलता है । युवक विद्यालयों से विश्वविद्यालय तक में शिक्षा, अध्यापन व अध्यापक को पैसे पर बिकते देखता है । "अभी भी लेखक, लेखक के नाते कम अध्यापक, सम्पादक,

क्लर्क या अन्य किसी व्यावसायिक स्थिति के कारण अधिक पहचाना जाता है ।"[3] "राग दरबारी" का रंगनाथ छंगामल विद्यालय में इस स्थिति को देखा जा सकता है । "भग-भंग" में नायक का पारिवारिक संबंध पैसे पर ही टिका है । "गली आगे मुड़ती है" का जेसियस छुरा दिखाकर बूरे मार्ग से पैसा कमाने का प्रयत्न करता है । "मुरदा घर" का पूरा संसार ही पैसे की नोक पर रचा गया है । पैसे के लिए मुहल्ला का मुहल्ला रंडी घर कहलाता है । पैसा औरत से उसका जिस्म बेचवाता है । आज का जीवन "अर्थ" के ऊपर ही टिका है ।

पैसे के इस महत्व को देखकर ही युवक भी पैसा कमाने के लिए लालायित है । उनके जीवन का लक्ष्य ही पैसा कमाना है । रास्ता अच्छा हो या बुरा । पैसा कमाने के लिए "भग भंग" का नायक चन्दन अपना पूरा परिवार छोड़कर नौकरी की तलाश में बंबई जैसे महानगर में भटकता है । "साठ रूपये वापिस करते हुए सोचता है कि काश डॉ० शर्मा कहते -- इन्हें तुम्हीं रख लो ।"[4] पैसे के अभाव में जिन्दगी कितनी छोटी और व्यर्थ जान पड़ती है इसे चन्द्रन के माध्यम से समझा जा सकता है । "सिटी कॉलेज / लेक्चररशिप / उन्नीस रूपये और चाहिए / उन्नीस रूपये में एक बड़ी सम्भावना / कितनी सस्ती है / सौदे-बाजी है / लेकिन अपने लिए कितनी मुश्किल ।"[5] आर्थिक ~~दबाव~~ परिवेश के शिकंजे में फंसी "रिहर्सल" की रीना अपमान सहते हुए भी पैसा नहीं कमा सकती उसके प्राण रिहर्सल में ही निकल जाते हैं । रिहर्सलकी सुचित्रा स्थिति को समझती है और वह अपना जिस्म वकील साहब को सौंप कर नौकरी प्राप्त करती है तथा अपने परिवार को पालती है । "अपना मोर्चा" के अध्यापक शिक्षा से ज्यादा अपने वेतन पर नज़र रखते हैं । "अपना मोर्चा" में लड़के जेल में भरे हैं और अध्यापक सभी बैठक कर रहे हैं। विषय छात्र ही है, लेकिन प्रोफेसर मुस्करा रहे हैं उन्हें इन छात्रों से कोई मतलब नहीं है ।

"अध्यापकों की सभा हो रही है । अपने विषय के पारंगत और दुनिया देखे प्रोफेसरों की सभा । बाहर कारों और स्कूटरों का जलसा है । अन्दर सूट और टाइयों की महफिल है । लोग उठ रहे हैं, झुक रहे हैं, मुस्करा रहे हैं अपनी जगह । एक खुशबू और लगातार ठहाके । सैकड़ो लड़के जेल में हैं, सैकड़ों अस्पताल में, रहे-सहे स्टेशन पर और यहां ठहाके ।"[6]

बैंको का राष्ट्रीयकरण तथा उन्हें सामाजिक बैंकिंग के रूप में विकास का उद्देश्य मुख्यत: आर्थिक दृष्टि से पिछड़े व कमजोर लोगों को ऊपर उठाना तथा शिक्षित बेरोजगारों को अग्रिम प्रदान करके स्व रोजगार उत्पन्न करना हैलेकिन यथार्थ में बैंक की नीतियां और नौजवानों की परिस्थितियों का आपस में मेल नहीं है । अत: यह उद्देश्य एक कपोल कल्पना बनकर रह गया है । आठवें दशक का आर्थिक परिवेश अत्यन्त जटिल एवं भयानक है । मानवीय इच्छाएं दिनों-दिन बढ़ती जा रही है और युवक व्यवस्था की भंवर में उलझ जाता है उसकी सारी योग्यताएं भाई-भतीजेवाद तथा सिफारिशों के आगे असफल हो जाती है ।

1.1 घर की आर्थिक स्थिति :

निम्न और मध्य वर्ग के युवकों पर आर्थिक संकट की बुरी छाया रहती है । आर्थिक संकट युवकों को आगे बढ़ने या उच्च शिक्षा प्राप्त करने के मार्ग में अनेक कठिनाईयां उत्पन्न करती है । आर्थिक संकट से ग्रस्त परिवार अपने बच्चों का पालन सही ढंग से नहीं कर पाते, शिक्षा तथा विवाह की बात तो दूर है । कितने मां-बाप विफलता के साथ अपनी लड़कियों की शादी नहीं कर पाते, और कहीं

हो भी जाए तो अनमेल विवाह । युवक के व्यक्तित्व व विचारों पर घर की आर्थिक स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है । "रिहर्सल" में टीना के घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है । बड़ी बहन बेला अपनी इज्जत का सौदा कर परिवार को पालती है और एबार्शन के चक्कर में उसकी जान चली जाती है । शराबी बाप टीना को भी उसी रास्ते पर ले जाना चाहता है मगर वह नहीं जाती । "बाबा तब मां को और मारेगा । संदीप शायद घर से भाग निकलेगा । उसमें थोड़ा विद्रोह की भावना है । सुदीप मार खाएगा तो खाना नहीं खाएगा और सात साल की मधुरिया किसी तरह बड़ी हो गई, तो बाबा फिर इसे नये चेक को किस्तों में भुनाना चाहेगा । बाबा को तो बस माद, भात चाहिए, बीड़ियों का बण्डल चाहिए । और .... ।"[7] टीना एक रेडियो कलाकार है । मेहनती और ईमानदार है लेकिन उसे भरपेट खाना भी नहीं मिलता । "घर में खाना कम बना था । टीना पेट दर्द का बहाना बनाकर घर से भूखी रेडियो स्टेशन चली आई । सबेरे उसने घर पर एक प्याली चाय पी ली । ..... भूख से अंतड़ियाँ तब भी ऐंठ रही थीं, अब भी ऐंठ रही हैं ।"[8] टीना शौक से भूखी काम पर नहीं जाती बल्कि यह उसकी मजबूरी है । टीना अपने घर की आर्थिक स्थिति से लड़ती रही है वह अपने भाई-बहनों को पालने के लिए अपना खून बेचती है । उसके सामने धन का अभाव मुंह खाए खडा है । "एक छोटी बहन का सारा खर्च, मकान का किराया, असलम खां के सूद के रूपये -- ये सारे दायित्व एक कगार में खडे चीख रहे हैं ।"[9] उसकी आवश्यकताओं ने उसे तेज़ी से रक्त बेचने के लिए विवश कर दिया और इन्हीं आवश्यकताओं ने उसका दम घोंट दिया । भ्रमभंग, अपना मोर्चा, तीसरा आदमी, महाभोज, मुरदा घर, बेघर, सोया हुआ जल, आदि उपन्यासों में युवकों को घर की आर्थिक स्थिति से लड़ना पड़ता है । "भ्रमभंग" का चन्दन एक मध्य वर्ग का युवक है । वह जब अपने घर की स्थिति के बारे में सोचता है तो उसकी आंखें भर आती है । "काश

उसके लिए फ्राक खरीद पाता । सब्जी के लिए पैसे नहीं होते । माँ ने आज भी प्याज की चटनी बनाई होगी ।"[9] आठवें दशक के उपन्यासों में निम्न और मध्य वर्ग के युवक किस प्रकार आर्थिक दुस्थिति के शिकार होते जा रहे हैं इसका विस्तार से चित्रण मिलता है । आर्थिक तंगी के कारण युवक कुण्ठित और जीवन से हताश हो जाते हैं । यदि कुछ युवक अपनी परिस्थितियों से लड़ते हुए ऊपर उठने का कोशिश करते हैं तो भी नहीं उठ पाते । "तीसरा आदमी" में तीसरा आदमी आर्थिक परिस्थितियों की ही देन है । दिल्ली जैसे शहर में डेढ़ सौ रुपये में मकान लेना और घर चलाना बहुत महंगा पड़ता है । अत: पति-पत्नी के बीच तीसरे का जन्म आज के युग में एक मजबूरी बन गयी है । "गली आगे मुड़ती है" में युवक उच्च शिक्षा प्राप्त करने की कोशिश में घर पर बोझ बन जाते हैं । "भ्रम भंग" में भी रमेश घर की आर्थिक स्थिति को इंगित करता हुआ कहता है -- "हम बचपन में ही थक जाते हैं । पढ़ाई के लिए ट्यूशनें करो । लड़के नापो । होटलों में प्लेटें धोओ । मजदूरी करो । जब दूसरे लोग आई·ए·एस· और पी·सी·एस· बनने के सपने देख रहे हैं तब हमको भरी दोपहरी में पत्थर-गारा ढोना होता है ।"[10] घर की आर्थिक स्थिति युवा को असमय ही बूढ़ा बना देती है । यह कहना गलत नहीं है कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास सामान्य परिस्थितियों व परिवेश में ही होता है । मध्य वर्ग का युवक आक्रोशी कम कुण्ठित ज्यादा होता है । बचपन से ही उन्हें ऐसी शिक्षा मिलती है कि वे अपने अन्दर स्वाभाविक प्रवृत्तियों को पनपने ही नहीं देते । अर्थ का अभाव उनकी उमंगों के पंखों को बचपन से कतरना शुरू कर देता है । "भ्रमभंग" में चन्दन अपने वर्गीय संस्कारों को व्यक्त करता हुआ कहता है कि -- "हमारे लिए कुछ नहीं हो सकता । कुछ होने को होगा तो नंगे माता-पिता और भूखे भाई-बहन सामने आकर खड़े हो जाएंगे । मध्य-वर्गीय संस्कार हमें कुछ नहीं करने देंगे । एक बंधी हुई जिंदगी । उसी के घेरे में हमें घूमते रहना है । हमारे लिए सब जगह

लक्ष्मण रेखाएं हैं ।"[11] ऐसा नहीं कि चन्दन में क्षमता व योग्यता नहीं है । सब कुछ होते हुए भी वह मध्यवर्गीय संस्कारों से जकड़ा हुआ है । घर की परिस्थिति अच्छी नहीं होने के कारण उसे आधे से भी ज्यादा तनखाह घर भेजना पड़ता है । शेष में अपने आपको देखना होता है । भाई-बहनों में सबसे बड़े होने के कारण वह ज्यादा जिम्मेदारी महसूस करता है । परिवार से दूर, अपनों से दूर महानगर में अकेले रहता है, अपनापन के लिए तरसता है ।

"बीमार शहर" की मंजरी का सपना अधुरा रह जाता है । सपना मात्र शादी है । लेकिन आर्थिक अभाव के कारण इसकी शादी एक बूढे से कर दी जाती है जो शादी के तीन महीने में ही उसे विधवा बना देता है । धन का अभाव मातृत्व व स्नेह भी गला घोंट देता है । "कभी किसी ने अपने कलेजे से लगाकर स्नेह और प्यार के दो बोल मेरे कानों में नहीं डाले ।"[12] मंजरी एक सामान्य लड़की है लेकिन आर्थिक संकट के कारण उसकी बहनें आत्महत्या कर लेती हैं और वह स्वयं वेश्यालय पहुंच जाती हैं । "पचपन खम्भे लाल दीवारें" अन्तराल, बेघर आदि में ऐसी युवतियों का चित्रण है जो अपने परिवार की जिम्मेदारी लिए घर की आर्थिक संकट से लड़ती हैं और अपने सपनों को कभी अपने मन पर हावी नहीं होने देती । "पचपन खम्भे लाल दीवारें" की सुषमा, बेघर की संजीवनी तथा "अन्तराल" की श्यामा परिवारवालों के लिए अवलम्बन है । वे अपने जीवन के प्रति निराश और उदासीन हो जाती हैं । अकेलेपन की गांठ उनके मन में पड़ जाती है । ये भीतर ही भीतर विवाह की तमन्ना रखती हैं और वर्तमान में दायित्व से मुक्त होना चाहती हैं। लेकिन उनके संकट के बादल नहीं छटते हैं । सुषमा, जिसकी कमाई से घर चलता है, मां-बाप द्वारा उसकी शादी की उपेक्षा किये जाने पर मन ही मन वेदना का अनुभव करती है । परन्तु बहन की शादी के लिए पैसा इकट्ठा करने का काम भी वही करती है । सच तो यह है कि घर की

आर्थिक स्थिति मध्य वर्ग के युवकों का शोषण करती है । ये युवा जिम्मेदारियों के भार से लदे हैं । जबकि निम्न वर्ग के युवक ऐसी कुरूपताओं के बीच से नहीं गुजरते । "महाभोज" का बिसेसर व बिंदा की घर की स्थिति ठीक नहीं है । लेकिन ये निम्न जाति के हैं । अत: सभी मजदूरी करते हैं । इस वर्ग के युवकों व युवतियों का परिवार इनका शोषण नहीं करता है, बल्कि ये युवा होने पर युवा प्रवृत्तियों से प्रचलित हैं । इनके घर की जिम्मेदारी का बोझ किसी खास व्यक्ति पर नहीं है ।

उच्च वर्ग के युवक जिन्हें आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़ता है, अहम व अकेलेपन की पीड़ा से पीड़ित है । "सीमाएं टूटती हैं", "रूकोगी नहीं राधिका", "चितकोबरा", "रेत की मछली" में इस तरह की स्थिति को देखा जा सकता है । चांद पिता पर लगे एक झूठे आरोप को सहन नहीं कर सकती है । वह भाई-भाभियों से दूर हट कर पिता के हम उम्र व दोस्त में अपनी तनहाई व अकेलेपन का सहारा ढूंढती है । "तुम हमारी मुसीबतें जानते हो, पर यही नहीं जानते कि उससे हमें कितना सहारा मिला है । पर यह सिर्फ एहसान की बात नहीं है उसने मेरे अधूरेपन को खत्म कर दिया है । उसे प्यार करके सब तरह के रिश्ते मुझे एक जगह मिल गये ।"[13] इसी तरह राधिका भी पिता द्वारा दूसरी शादी किये जाने पर घर छोड़कर डेन नामक युवक के साथ अमेरिका चली जाती है । "रेत की मछली" में मीनल व कुन्तल दोनों अपने अस्तित्व के लिए एक दूसरे को चोट पहुंचाने का प्रयास करती हैं । अत: आर्थिक संकट का भार ज्यादातर मध्य वर्ग पर ही पड़ता है और उसकी सम्पूर्ण यातना सहता हुआ मध्य-वर्ग जीने के लिए विवश होता है ।

निरंतर बढ़ती हुई महंगाई से निम्न मध्यवर्ग के युवक बहुत चिंतित रहते हैं । जिस गति से महंगाई बढ़ी है उसी गति से आमदनी नहीं बढ़ी है । आंसू पोंछने के लिए महंगाई भत्ते के दस-बीस रूपये से कुछ अन्तर नहीं पड़ता । किसी न किसी वस्तु पर अप्रत्यक्ष कर लग

जाने से बढ़ी हुई अतिरिक्त आय चली जाती है । अत: मध्यवर्गीय परिवार इस महंगाई से अत्यन्त पीड़ित है । "थके पाँव" में केशव का परिवार मध्य वर्ग में आता है । लेकिन बढ़ती हुई महंगाई उन्हें निम्न मध्य वर्ग की लाइन में लाकर खड़ा कर देती है । केशव के पिता क्लर्क थे । लेकिन उस समय चीजों के दाम कितने कम थे जिससे परिवार का गुजारा बड़ी आसानी से हो जाता है । जबकि केशव के समय में महंगाई के कारण तनख्वाह पूरी नहीं पड़ती । बढ़ती महंगाई ने जीवन स्तर को नीचे की तरफ पहुंचा दिया है । आर्थिक संकट संबंधों में खटास पैदा कर देती है । कहने का तात्पर्य है कि धन का अभाव एक ओर शक्ति और मानसिकता को दबोचता है तो दूसरी ओर उसकी तीखी धार संबंधों को काटती चलती है । सारा का सारा संबंध पैसे से जुड़ जाता है । परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान अर्जन करनेवाले की मन:स्थिति पर कम, उससे प्राप्त होनेवाले धन पर रहता है । "अन्तराल" की श्यामा इसी दु:ख से बोझिल है । "उसकी वजह से जिन लोगों की जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लिये हूं, उन्हें मेरे सुख-दुख से कोई मतलब नहीं है । मतलब तो सिर्फ उन पैसों से है जो हर महीने मैं उन्हें भेजती हूं । पैसा समय से पहुंच जाये तो महीने के उन्तीस दिन वे मुझे याद भी नहीं करते ।"[14] श्यामा का यह कथन बिलकुल सच है । आर्थिक संकट से गुजरता हुआ परिवार इतना संवेदनहीन हो जाता है कि वह अर्थ के सिवाय कुछ सोच ही नहीं पाता । अर्थ अर्जन की प्रक्रिया में घर-बाहर से लड़ते-लड़ते उसकी सम्वेदना स्नेह व कोमलता का स्रोत सूख जाता है । यही कारण है कि आठवें दशक के उपन्यासों में वर्णित युवामानस घर की स्थिति को अच्छी तरह समझते हैं । लेकिन परिवार के सदस्यों के अत्यधिक दबाव के कारण आक्रोशी हो जाते हैं । वे परिवार के रिश्ते को सीधे धन से जुड़ते हुए देख यह समझते हैं कि धन के आगे उनके अस्तित्व महत्वहीन हो गया है । मन की गांठ उनकी वैयक्तिकता की भावना जागृत करती है । अत: युवामानव को समझने

के लिए उसकी आर्थिक स्थिति को पहले समझना आवश्यक है । आर्थिक स्थिति ही युवा व्यक्तित्व का गठन करती है ।

1·2 बेकारी की समस्या :

बेकारी का सर्वप्रथम प्रभाव परिवार पर पड़ता है और परिवार-वालों के माध्यम से व्यक्ति के मानस पर अपनी बेकारी की उलझन पैदा होती है । बेकारी का सीधा असर आर्थिक स्थिति पर पड़ता है । बेकारी की स्थिति में रहन-सहन का स्तर गिर जाता है । परिवार हीन व असमर्थता के बोध से कुण्ठित हो जाता है । व्यक्ति के मन पर चिन्ता का बोझ बढ़ जाता है । उसे कदम-कदम पर जीवन निस्सार प्रतीत होने लगता है । धनाभाव के कारण खान-पान भी ठीक से नहीं हो पाता । स्वास्थ्य में निरन्तर गिरावट आ जाती है और व्यक्ति कई प्रकार की बीमारियों के चपेट में आ जाता है ।

आजकल चारों तरफ बेकारी का विकट रूप फैला हुआ है । मौजूदा व्यवस्था इसके प्रति सचेत है फिर भी यह समस्या ज्यों कि त्यों बनी है । जिस परिवार में घर की हालत अच्छी नहीं होती वहीं इनके वीभत्स रूप को देखा जा सकता है । "रिहर्सल" की दीना नौकरी की तलाश में भटकती है । उसे कहीं भी नौकरी नहीं मिलती । एक तरफ परिवार पर आर्थिक संकट है, तो बाहर उसके जिस्म के क्रेता घूमता है । वह जिस किसी से नौकरी की बात करती है वही उसके शरीर का उपभोग करना चाहता है । रोजगार के दफ्तरों के आंकड़ों द्वारा शिक्षित तथा अशिक्षित बेकारी का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है । अत्यधिक यंत्रीकरण के कारण लाखों लोग बेकार हो गये हैं । जो काम सैकड़ों लोग मिलकर करते थे आज एक मशीन एक घंटे में निपटा देती है । पूंजीपति यंत्रों के उपयोग को बढ़ावा देते हैं और गरीब,

श्रमिक बेकारी से पीड़ित है । रीना चाहती है कि इस व्यवस्था में उसे एक छोटी नौकरी ही मिल जाये तो उसका सहारा बने ।" "जो भी मिल जाएगा, बड़ा सहारा होगा । एक बंधी आमदनी होगी । उसके भरोसे कुछ खरीदा जा सकता है । किसी के उधार लौटाने का वादा किया जा सकता है, और मैं जिस योग्य हूं उससे ज्यादा चाहूं ही क्यों ।"[15] टीना का यह कथन बेकारी की पीड़ा है । वह अपने अस्तित्व को बेकार समझती है क्योंकि उसे कुछ करने का मौका ही नहीं मिलता ।

शिक्षा का संबंध रोज़गार से दिनों-दिन दूर होता जा रहा है । ऐसे में जब छात्र डिग्रियों का बंडल लेकर रोज़गार की बस्ती में निकलते हैं तो उन्हें कल्चर शाक लगता है । डिग्री जहां की तहां रह जाती है । अस्तित्व का प्रश्न सामने खड़ा हो जाता है । "रिहर्सल" का अविनाश एक साहित्यकार तथा कलाकार युवा है लेकिन बेकारी उसे मैकेनिक बनने को विवश करती है । उसे देखकर टीना कहती है कि "यह देश का कितना बड़ा दुर्भाग्य कि आप जैसे व्यक्ति को मैकेनिक का काम करना पड़ रहा है ।"[16]

अविनाश तो कम से कम अपनी बेकारी को झेल रहा है मगर टीना झेल भी नहीं पाती है । उसे अपना जीवन बेकारी को अर्पित करना पड़ता है । सुचित्रा उसे समझाती है कि नौकरी प्राप्त करने के गुण क्या है -- "तुमने अभी दुनिया नहीं देखी है । समाज ऐसा ही है और सब लोग इसी में चल रहे हैं । यह कोई राजकीय कन्या विद्यालय नहीं है । प्राइवेट स्कूलों में मैनेजर और सेक्रेटरी को खुश किए बिना नौकरी पाना और फिर ज्यादा दिनों तक बने रहना मुश्किल है ।"[17] सुचित्रा का कथन समाज में फैले भ्रष्टाचार व चरित्रहीनता को उजागर करता है । मध्य वर्गीय युवकों की हालत बेकारी के कारण और भी निम्न स्तर की हो गयी है । जब तक स्कूल-कालेज जाते-आते हैं

एक आस बंधी रहती है कि पढ़-लिख लेने के बाद कुछ न कुछ तो अवश्य कर सकूंगा । लेकिन हकीकत सपनों को चकनाचूर कर देती है । बेकारी की खोह में भटकता हुआ युवक यह महसूस करता है कि "क्लासेज" ! क्लासेज ! क्लासेज ! लेकिन उसके बाद ? न नौकरी न भविष्य । पढ़कर भी क्या होगा ? एम॰ए॰ / अब बी॰एड । फिर भी नौकरी के लिए भटकना । यह संघर्ष । भटकने और संघर्ष करने का अटूट सिलसिला । संघर्ष ही अपना जीवन है । यही धर्म । शायद यही पार लगा दे । पैदा होने से लेकर मरने तक बस संघर्ष है ····· संघर्ष की सार्थकता है । पैदा होने और जीने की सार्थकता ।"[18] "भ्रमभंग" का चन्दन बेकारी के कारण बंबई आता है और नौकरी प्राप्त करने के लिए भगवान से बिनती करता है । उसे घर से दूर बंबई आने पर घर की परिस्थितियाँ और ज्यादा दबोचती हैं । एक सपना आंखों के बीच तैरता है और माँ, बीच-बीच में घर की हालत कौंध जाती है । वह सोचलता है -- "बंबई के प्रति आकर्षण पैदा करना होगा । पेट की समस्या तो हल होगी । मन का सुख बाद में सोचेंगे । हे भगवान कल का इण्टरव्यू ठीक-ठाक हो जाए । माँ की याद आ रही है । आशिर्वाद देने की मुद्रा । भगवान तुम्हें लंबी उम्र दे । तुम भी जीवन का सुख देख सको । इस बार माँ के लिए पेटीकोट का कपड़ा अवश्य ले आउंगा । बिना पेटीकोट की धोती । ये हमारे दुर्दिन हैं माँ ।"[19] चन्दन हार नहीं मानता । बेकारी से लड़ने का क्रम उसका जारी है । जब कभी वह अपने मध्यवर्गीय संस्कार पर सोचता है तो वह अपने आपको जालों के बीच फंसा हुआ पाता है । "नीचे दरी बिछी हुई है । इसी पर लेटना है । छत के एक कोने पर मकड़ी ने जाला तान रखा है । हम कितने जालों के बीच घिरे हुए हैं । परिवार का जाला । बेकारी का जाला । अंग्रेजी का प्रेनसिएशन । मेधा । हाथ फैलाने की मजबूरी । महात्मा गांधी । एम॰एन॰ राय । जवाहरलाल नेहरू । लोग इतने बड़े कैसे बन जाते हैं ।"[20] बड़े बनने का सपना हर युवा में होता है । वह चाहता है कि कुछ ऐसा करें जो

जमाने के सामने एक आदर्श हो लेकिन आर्थिकता को मार उसे आगे बढ़ने नहीं देती । वह जब भी आगे बढ़ने के लिए कदम बढ़ाता है पारिवारिक व्यवस्था उसे पीछे खींच देती है ।

आजकल अशिक्षित बेरोजगारी से भी अधिक शिक्षित बेरोजगारी है । हजारों की संख्या में इंजीनियर, डाक्टर व अन्य शिक्षित युवक बेकार घूम रहे हैं । यह शिक्षित बेरोजगारी बेकारी से भी भयानक होती है । क्योंकि यदि बुद्धिजीवी भूख की ज्वाला से पीड़ित हो तो देश का विकास रूक जायेगा । समाज का विघटन प्रारंभ हो जाएगा । सरकार के बनाये कानून, व्यवस्था सब टूटने लगेंगे । बेकारी की समस्या मात्र भारत में ही नहीं बल्कि आज दुनिया के सभी देशों में थोड़ी-बहुत मात्रा में विद्यमान है । परन्तु भारत में इसका कोटा औरों से ज्यादा है । उत्तरोत्तर बढ़ती हुई बेकारी की समस्या का एक कारण जनसंख्या में अपार वृद्धि है । सरकार नये नये उद्योगों की स्थापना करके जो कुछ रोजगार उपलब्ध कराती है वह बेकारी की भीड़ में खो जाता है । युवक निराश व हताश हो जाते हैं । समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार व रिश्वतखोरी बेकारी की समस्या को और भी गहरा रंग देते हैं । रिश्वत लेकर जब अयोग्य पात्र को नौकरी मिल जाती है तो योग्य पात्र व्यवस्था का शत्रु बन जाता है । उसके सामने अपनी समस्या से निपटने के लिए दो ही रास्ते बचते हैं । गलत रास्ते पर जाना या जीवन से पलायन कर जाना । ये दोनों ही रास्ते राष्ट्र की प्रगति में बाधक हैं । जिस राष्ट्र की युवा शक्ति अपने राह से हट जाती है उस राष्ट्र का विनाश सुनिश्चित है । "गली आगे मुड़ती है" में इस स्थिति को देखा जा सकता है । शिक्षित व योग्य युवक समझ-बूझ कर भी पेट पालने के लिए छुरे की नोक पर पैसा कमाने का प्रयत्न करते हैं । इन युवकों में जीवन की भटकान शुरू से अन्त तक विद्यमान है । निरन्तर असंतोष, ऊब और घुटन से गुज़रता हुआ युवा जब घर की तरफ मुड़ता है और घर से भी

उसे दुत्कार मिले तो उसकी हालत व मानसिक स्थिति का अन्दाज लगाना मुश्किल है ।" "अपना मोर्चा" का एक युवक इस स्थिति को व्यक्त करता है -- "वह कहता है उसने अपने को घरवालों से अलग कर लिया है । उसने क्या कर लिया घरवालों ने स्वयं उसे अलग कर दिया है, तीन-चार साल नौकरी के चक्कर में वह दिल्ली, बंबई, कलकत्ता घूमता रहा, किसी तरह अपना पेट जिलाता रहा । पिता और भाइयों को इतने से संतोष न था । उन्हें चाहिए था काफी धन -- इतना धन कि उनकी सारी इच्छाएं पूरी हो जाये, सारा दुख-दर्द दूर हो जाये, रात-दिन मालिकों की गुलामी करके भी वह उन्हें और अपने घरवालों को खुश न कर सका । और अन्त में उसने यहीं एक छोटी नौकरी करते हुए पढने का फैसला कर लिया ।"[21] प्रश्न यह उठता है कि क्या उस युवक को एक बड़ी नौकरी मिल सकती है, यदि मिल भी जाती है तो क्या वह घरवालों को संतुष्ट कर सकता है ? उत्तर भविष्य चाहे जो दें मगर एक बात तो सच है कि युवा का शोषण घर-बाहर दोनों जगह होता है । दोनों व्यवस्थाएं यदि कहीं भी अपनी नाराजगी प्रकट करती है, तो उन्हें अनुशासनहीनता की श्रेणी में ला खड़ा करती है । जबकि दोनों व्यवस्थाओं के बीच उनको अपनी असमर्थता का गहरा बोध होता है । उन्हें परिवार व समाज से विरक्ति होती है और उनका गलत इस्तेमाल किया जाता है । इस निराशाजनक अन्धकार में युवा पीढी की हिम्मत टूट जाती है । बेकारी के इस आलम में वे डाकू, चोर और सड़कों के लफंगे बन जाते हैं । और घर के ये फालतू लोग कभी-कभी पागलखाने भी जाते हैं । आज के राजनीतिक युग में सरकारी नौकरी बिना किसी बड़े नेता की सिफारिश के मिलती ही नहीं है । किसी भी विभाग पर नज़र डालें तो हर कर्मचारी की दुम किसी न किसी राजनीतिज्ञ से अवश्य जुड़ी हुई है । इसके विपरीत आम युवक के पास मात्र डिग्रियों के सिवा कुछ नहीं होता । और डिग्रियां भी ऐसी जिनका रोजगार से संबंध-विच्छेद हो चुका है । ऐसे परिवेश में युवा मानस की स्थिति क्या है और क्या हो सकती है ? इसका अंदाजा आठवें

दशक के उपन्यासों झलकता है ।

1.3 भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी :

समाज में भ्रष्टाचार का रोग कैंसर की तरह फैल गया है । इसने संपूर्ण न्याय व्यवस्था को अपनी गिरफ्त में जकड़ लिया है । भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी का कोई इलाज नहीं है । एक जगह आपरेशन करके समाप्त करो तो दूसरी जगह उग जाता है । भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी का इलाज किसी एक व्यक्ति को हटा देने या कानून बनाने तथा उसे जोर-जबर्दस्ती से लागू करने से नहीं होगा जब तक लोगों में नैतिकतापूर्ण जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न नहीं होती तब तक कुछ नहीं हो सकता । यह तभी संभव है जब राष्ट्र के कर्णधार स्वयं इससे अपने आप को मुक्त करें । "भ्रमभंग" का चन्द्रन भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी पर तीखा प्रहार करता हुआ कहता है कि -- "भ्रष्टाचार की यह व्यवस्था कहाँ नहीं है ? कौन सा वर्ग है जो ईमानदार रह गया है ? जिसे मौका मिलता है, नोच-खसोट करने में लग जाता है । यह संक्रान्तिकाल । हर शोषक दो-तीन पीढ़ियों के लिए निश्चिन्त हो जाना चाहता है । ..... लोग बेईमानी को धर्म समझने लगे हैं । कितना आगे बढ़ गये हैं ये लोग । अपनी गरदन उठाये रखने के लिए मैं कितना पिछड़ गया हूं ।"[22] समाज में फैले भ्रष्टाचार के सामने युवकों की नैतिकता और ईमानदारी अर्थहीन होती जा रही है । शैक्षणिक संस्थाओं से लेकर कार्यालयों आदि सभी जगहों पर भ्रष्टाचार व रिश्वत का ही बोल-बाला है । आठवें दशक के उपन्यासों के युवक भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी से क्षुब्ध नज़र आते हैं । "महाभोज" में भ्रष्टाचार का ही बोलबाला है । कानून व नियम मुख्य मंत्री व गुंडों की साझेदारी है । मार-पीट को कानून के रखवाले चुनाव का आवश्यक हिस्सा मानते है उनकी नजर में मरने या घायल होनेवालों की कीमत नगन है ।" थोड़ी मार-पीट और खून खराबा होने का डर जरूर था पर यह

यह कोई खास बात नहीं है -- यह तो चुनाव अभियान का जरूरी हिस्सा हो गया है । इस तरह की घटनाओं से सरगर्मी और बढ़ती है -- जोश और उत्तेजना फैलती है लोगों में ।"[23] इस भ्रष्ट व्यवस्था में यदि युवक आवाज उठाते हैं तो व्यवस्था अपने लोहे के पैरों तले कुचल देती है । "महाभोज" में बिसू की मौत की जांच-पड़ताल करता हुआ जब सक्सेना सच का पता लगा लेता है तो उसे ईमानदारी की सजा भुगतनी पड़ती है । एस॰पी॰ को प्रमोशन मिलता है जबकि ईमानदार पुलिस अफसर सक्सेना को निलम्बित कर दिया जाता है । व्यवस्था से क्षुब्ध सक्सेना और तीखा हो उठता है और वह बिंदा का अधूरा काम पूरा करने का संकल्प लेता है ।

भ्रष्टाचार का मूल कारण क्या है, इसे समझकर उसका समूल नाश करने की क्षमता देश की जनता में नहीं है । शोषक वर्ग यह समझता है कि इस तरह की ऊपरी कमाई पर हमारा अधिकार है । इसके बगैर इस महंगाई में जीवन का निबाह मुश्किल है । जबकि शोषित वर्ग इसे परंपरा, संस्कार धर्म आदि की दुहाई देकर सहने की ताकत पैदा करता है । अपने कष्टों का कारण ये पूर्व जन्म के कर्मों में ढूंढते हैं । "रथ से गिरी बांसुरी" में पुलिस इन्सपेक्टर रिश्वत के तौर पर कावेरी का जिस्म मांगता है । "अंग्रेजों के जमाने में मिडल पास करके दरोगा बन गये थे । उनकी इच्छा थी कि चाहे तो कावेरी उन्हें अपने शरीर से खुश करें या शान्तिपूर्वक रहने के लिए उन्हें पैसे दे । प्रमुखता वे पहली बात को देते थे ।"[24] आज के युग में पैसे से लेकर जिस्म तक सभी रिश्वत की भेंट चढ़ते हैं । "अपना मोर्चा" में गरीबी और भ्रष्टाचार प्रोफसरों के लिए मनोरंजन का साधन है । उनके लिए न तो इसका कोई अर्थ है और न ही इससे मतलब । "मजा नहीं आ रहा है । मजा के लिए जरूरी है कि कुछ हो और कुछ होने के लिए जरूरी है कि कोई कारण हो । कारण तो हवा में होता नहीं, वह या

तो सरकार के पास है या अधिकारियों के पास । गरीबी कोई कारण नहीं है क्योंकि वह आज की नहीं है । यही नहीं गरीबी कोई उत्तेजना और गुस्सा नहीं पैदा करती । भुखमरी और सूखा भी है तो जनता की चीज । रोज-रोज के कम वेजेजे भी मजदूरी की चीज हैं । नये-नये करों का लगना, चीजों की कीमतों का बढ़ना, झाडों का सफाया होना, रोजमर्रा की इस्तेमाल की चीजों का बाजार से अचानक गायब हो जाना, भ्रष्टाचारों और अपराधों और "ब्लैक" का इफरात होना -- ये मुश्किलें भी सबकी हैं ।"[25] "बेघर" तथा "मुर्दाघर" में भी भ्रष्टाचार व रिश्वतखोरी देखी जा सकती है । "बेघर" का नायक परमजीत बंबई जैसे शहर में एक छोटे पद पर कार्यरत है लेकिन रिश्वत व कमीशन के बल पर वह महानगर के सभी सुखों को भोगता है । वह रिश्वत लेना बूरा नहीं समझता । बल्कि उसका कहना है कि रिश्वत लिए बगैर व्यक्ति अपने जीवन को सुखी नहीं बना सकता । "मुर्दाघर" में रिश्वत व भ्रष्टाचारी का संसार व्याप्त है । रण्डियों को अपना धंधा चलाने के लिए पुलिस से लेकर ऊपर तक रिश्वत देना पड़ती है । कानून के शिकंजे में पंसी लाश को घर ले जाने के लिए रेलवे कान्स्टेबल 50 रूपए की मांग करता है । "गली आगे मुड़ती है" का हरिमंगल, अफसरशाही में फैले भ्रष्टाचार के विरोध में नौकरी छोड़ता हैऔर अग्रवाल, बाक्डगुरू जैसी समाज विरोधी शक्तियों के विरोध में काम करने लगता है । देवेंद्र लाजवंती और छात्र संघ की सहायता से बक्कडगुरू के गैंग को पुलिस पीछा करती है लेकिन बक्कड गुरू षडयंत्र में मारा जाता है । "रिहर्सल" में कौल बाबू युवतियों को स्कूल में नौकरी के लिए युवतियों का जिस्म रिश्वत में लेते हैं । दीना का सौदा नहीं जम पाने के कारण उसे नौकरी से वंचित होना पडता है । रेडियो स्टेशन की स्थाई नौकरी दीना का सपना था । लेकिन भ्रष्टाचार के चक्कर में उसे न ही नौकरी मिलती है और न ही नाटकों में काम । आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण सभी उसे जिस्म का रिश्वत मांगते

हैं। शबनम जिस्म का रिश्वत देती है तो रीना की जगह उसे नये नाटक के लिए चुन लिया जाता है। हनुमान रीना से कहता है कि -- "लोग कहते हैं कि व्यापार करने के लिए पूंजी चाहिए। मगर एक व्यापार ऐसा है जिसमें बिना पूंजी लगाए व्यापार चलता नहीं जनाब दौड़ता है।"[26] रीना भ्रष्ट समाज से समझौता नहीं कर पाती। वह कहती है "खून नहीं तो इज्जत बेचो .... वाह रे ..... खून तो फिर भी हो जायेगा और इज्जत ?"[27] रीना की नैतिकता उसे मृत्युलोक में पहुंचा देती है। क्योंकि सर्वहारा का रक्त, पूंजीपतिओं के लिए मात्र पेट्रौल है। इसी प्रकार "बीमार शहर" में मंजरी का जिस्म निरंजन सिंह के लिए रिश्वत ही है। निरंजन सिंह उसे वेश्यालय से मुक्ति दिलाता है और बदले में उसके जिस्म का भोग करता है। मंजरी यह जानती है लेकिन सोचती है कि यह ठीक ही है जब रोज नये ग्राहक तो नहीं बदलेंगे। "उसका शहर" में मित्र का बास मित्र की पदोन्नति के लिए उसकी पत्नी को एक रात के लिए मांगता है और मित्र दूसरी औरत को पत्नी कहकर बास को भेंट देता है। समाज में सुरक्षा कम होती जा रही है। इसी असुरक्षा के भय से ईमानदार युवकों को भी ईमानदारी छोड़नी पड़ रही है। भ्रष्ट शहरी वातावरण में नैतिक जीवन को चाहनेवाले युवा वर्ग को कहीं भी ठिकाना नहीं मिलता। शहरों में ही नहीं आजकल गांव में भी स्थिति भ्रष्ट हो गयी है। "लाल पीली जमीन" की मिट्टी पूरी तरह भ्रष्ट है। लड़कों की जवानी का अर्थ है अखाडे में जाना और मार-पीट करना, तीतर लडाना और गांव की लडकियों को अपनी काम-वासना का शिकार बनाना है। "थके पांव" उपन्यास में गोपीनाथ रिश्वत को भी एक आमदनी का जरिया समझता है। बढती हुई महंगाई में धन की आवश्यकता दिनों दिन बढती ही जा रही है। कोरी तनख्वाह से परिवार पालना मुश्किल हो गया है। इसीलिए लोग एक के बजाय कई नौकरियां करते हैं। यदि ऐसा न करें तो रिश्वत लेने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता भी नहीं है। वेतन से खर्च नहीं चलता। नौकरी करते हुए खर्च पूरा करने के लिए

कई लोग कई प्रकार के धंधा करते हैं । कोई . . . कम्पनी की एजेण्टी करता है, कोई ट्यूशन करता है, कोई पार्ट-टाइम किसी प्राइवेट फर्म का एकाउण्ट लिखता है ।

1·4 न्याय, कानून, पुलिस प्रशासन :

भ्रष्टाचार का जहर लोक सेवा के पुर्जे-पुर्जे में फैल गया है । न्याय, कानून और पुलिस पैसेवालों के गुलाम हैं । इसीलिए युवा वर्ग में इसके प्रति अविश्वास, नफरत एवं घृणा है । समाज में न्याय और कानून की रक्षा पुलिस करती है । लेकिन पुलिस कितनी भ्रष्ट हो गयी है यह बात आम हो गयी है । यह प्रश्न और है कि यदि पुलिस ही न्याय, कानून की रक्षा नहीं करेगी तो फिर कौन करेगा । पुलिस व न्याय कानून की इस बिगड़ी हुई छवि से युवा वर्ग में असंतोष है । वह इस स्थिति को महसूस करता है कि न्याय, कानून व पुलिस पैसेवालों के लिए है गरीबों के लिए नहीं । यही कारण है कि भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था के परिवेश में युवा विद्रोही व अपने अधिकारों के प्रति सचेत होता जा रहा है । विद्रोह ध्वंस प्रवृत्ति न होकर मूल्यपरक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अपने समय की प्रामाणिक साक्षी जुटाने का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न होता है -- "अधिकारों के प्रति सजगता, संघर्षशीलता और मुक्तिकामना विद्रोह की आधारभूत विशेषताएं हैं । इस संघर्षशीलता और मुक्ति कामना को तंत्र की भयावह शक्ति से टकराना पड़ता है और इस टकराहट के दौरान ही यातना जन्म लेती है । जो विद्रोह को वैयक्तिक से सामूहिक बना देती है ।"[27] ठीक यही स्थिति "अपना मोर्चा" की है । युवक अंग्रेजी भाषा के खिलाफ मोर्चा निकालते हैं । "भाषा" जिसकी व्याख्या, अंग्रेजी को हटाने से है, के कारण छात्र आन्दोलन जनसाधारण से कट जाता है और पुलिस उसका उपयोग कर छात्रों को अपने मोर्चे पर

लेकर पिटाई करती है । मुसीबत में फंसे छात्रों के प्रति साधारण जनता की संवेदनाएं शून्य हैं । वे इन लड़कों को आवारा, लफंगा तथा कामचोर समझते हैं । यही कारण है कि वे लड़कों को नहीं बचाते । "लड़कों के मसले पर अपने को किसी मुसीबत में डालना लोग बेवकूफी समझते हैं । जान रहे थे कि अगर किन्हीं कारणों से हम किसी कानूनी कार्रवाई में फंस गये तो हम तो फंस गये और ये लड़के हमारे पास झांकने तक नहीं आयेंगे ।"[28] इस वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है कि पुलिस और कानून की दहशत आम जनता में जिस कदर घर कर गयी है । आन्दोलन की असफलता युवाओं को एक बार पुन: सोचने के लिए मजबूर करती है और वे अपनी समस्या की व्याख्या करते हुए न्याय, कानून तथा प्रशासन की परतें खोलते हैं । "सख्ती से दमन हुकूमत की भाषा का स्वभाव है । यह भाषा अपने को व्यक्त करने के लिए जिस शब्दकोष की मदद लेती है वह है लाठी, बन्दूक, रायफल, गोली, आंसू गैस, धोखा, प्रलोभन । हम जब भी कहते हैं कि सरकार हम बेकार हैं, हमें काम चाहिए । वह हमारे मुंह पर बंदूक की नली रख देती है । हम कहते हैं कि सरकार । हम अपने घरवालों पर बोझ हैं, हमें उतार लीजिए और वह जवाब में हमारी छाती पर दस सेर का वजनी फौजी बूट रख देती है । इस मुकाबले के लिए हमें अपनी भाषा को अधिक से अधिक हमलावर बनाना होगा । फौलाद एक गुलामी की आदत है, हमें इस आदत से बाज आना चाहिए ।"[29] इस कथन से परिवेश तथा परिवेश विशेष की मानसिक स्थिति स्पष्ट होती है ।

"गली आगे मुड़ती है" में ~~रज्जो~~ रज्जो नामक गरीब हरिजन युवती पर अत्याचार होता है । रामानंद तिवारी उस पर रिपोर्ट करने के लिए पुलिस स्टेशन जाता है तो उसे वहां अपमानित होना पड़ता है । सब इन्सपेक्टर केस को नोट करके तहकीकात करने के बजाय तिवारी पर ही उस लड़की से उसके अवैध संबंध के बारे में व्यंग्य कसता है । पुलिस का

अधिकारी अनपढ लोगों को अंग्रेजी में झूठे सरकारी पत्रों को दिखाकर उनका शोषण करता है। हवलदार, बिना टिकट के रेल में चलनेवाले लड़के को अंग्रेज़ी में एक सरकारी पत्र दिखाकर उससे अपने घर का काम करवाता है। "मुरदाघर" में पुलिस की हालत वेश्याओं से भी गिरी हुई है। "साला रंडी लोक का बूरा बोलता है। पोलीस का लोक तो रंडी से भी खराब है। ..... पइसा का वास्ते कुछ भी करता है।"[30] पुलिस की यह छवि आज आम हो गयी है। अब युवा को न्याय, कानून व पुलिस की हरकतें चौंकाती नहीं है बल्कि वे इसके आगे की भविष्यवाणियाँ भी करते हैं। कानून की धज्जियां उड़ाती हुई वेश्याएं कहती हैं -- "ये साला लोक अपने कू पकड़ता है जो लोक रंडीबाजी करता है ..... उनकू नहीं पकड़ता। रंडी का होटल चलाता उनकू नई पकड़ता। इनकी मां को --"[31] पुलिस का अत्याचार गरीबों पर अधिक बढ़ जाता है। आर्थिक संकट का मारा हुआ गरीब युवक पुलिस के पास अपराध की तुलना में कहीं ज्यादा पिटा जाता है। "बूटों का भरपूर ठोकरें। घूसों की बरसात। यहां से गिरता है ..... वहां से गिरता है। वहां से मारता है।"[32] अपराध केवल इतना है कि वह पुलिस को रिश्वत नहीं दे सकता। न्याय, कानून व पुलिस प्रशासन की विकृति व कुरूपता का प्रचंड रूप "महाभोज" में दिखाई पड़ता है। सत्ता के गुलाम ये शब्द न्याय, कानून, प्रशासन अपनी सम्पूर्ण विसंगतियों के साथ उभारे गये हैं। पुलिस और कानून को चुनौती देता हुआ वृंदा दा साहब की स्थिति को बताता है। "अरे दा साहब। काहे को यह नौटंकी कर रहे हैं। यहां? हरिजनों को जिंदा जला दिया गया और आपकी सरकार और आपकी पुलिस तमाशा देखती रही और महीने भर से खुद तमाशा कर रही है। हुआ आज तक कुछ?"[33] कौन देगा गवाही, मरना है किसी को शिनाख्त करके? चार दिन यहां आकर रह लीजिए ..... पता चल जाएगा कि कैसा आतंक है।"[34] इस बात से साफ पता चलता हैकि

तेज । न देखें तो हाथी तक न देखें, पर उतर आयें तो फिर चींटी भी नहीं बच सकता -- न नज़र से न गिरफ्त से ।"[38] इस तरह आठवें दशक के कानून पुलिस प्रशासन का परिवेश पूरी तरह से भ्रष्ट और युवा मानस इस भाव भूमि पर असंतुष्ट विद्रोही तथा कुण्ठित है ।

2. पारिवारिक परिवेश :

व्यक्ति समाज की इकाई है और परिवार सामाजिक संस्था का प्रारंभिक रूप । अत: व्यक्ति को समाज के बारे में जानकारी पारिवारिक परिवेश से ही प्राप्त होती है । जन्म के पश्चात् शिशु माता-पिता पर ही निर्भर रहता है । यदि उसकी असहाय अवस्था में देखभाल न की जाये तो उसको जीवित रहना असंभव है । इसी तरह परिवार व्यक्ति की प्रारंभिक पाठशाला है । इस पाठशाला से व्यक्ति चलना, उठना, बैठना, बोलना तथा समाज के रीति-रिवाज व संस्कृति का ज्ञान अर्जित करना होता है । परिवार से व्यक्ति का संबंध जन्म से मृत्यु तक रहता है । परिवार एक ऐसी संस्था है जिसमें व्यक्ति खून के रिश्ते से जुड़ा हुआ होता है । उनमें आपस में एक रागात्मक संबंध होता है । दुनियां के किसी भी रिश्ते को झूठलाया जा सकता है परन्तु खून के रिश्ते को झूठलाया नहीं जा सकता । परिवार से ही व्यक्ति को अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों को बोध होता है । परिवार का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि परिवार से ही समाज की संकल्पना है । बच्चा जन्म से लेकर वयस्क होने तक पारिवारिक परिवेश में ही अधिक रहता है । इसीलिए बच्चे की मानसिकता पर पारिवारिक परिवेश की छाया अधिक होती है । आर्थिक संकट से घिरे हुए परिवार का युवा व्यक्ति निश्चित ही धन की ओर उन्मुख होगा । साथ ही यदि परिवार पर अन्धविश्वास की छाप होगी तो वह बाहरी भ्रष्टाचार लूट-खसोट की स्थिति से

परिचित होते हुए भी आक्रोशी कम कुण्ठित अधिक हो जाता है। वह लड़ाई करने से पहले ही हार मान लेता है। इसके विपरीत यदि वह जुझारू परिवार से है तो उसमें आक्रोशी प्रवृत्तियाँ प्रबल होती। आधुनिक तथा अमीर परिवार के साये में पला युवा को आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़ता। लेकिन उसमें अकेलेपन की भावना अधिक विद्यमान होती है।

जीवकीय और संतोनोत्पत्ति के कार्य के अतिरिक्त आज परिवार की आर्थिक सुरक्षा का कार्य महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। औद्योगीकरण के पश्चात परिवार उत्पादन के केन्द्र नहीं रहे अत: अर्थ के लिए परिवार के व्यक्तियों को परिवार से निकल कर दूसरे परिवार के लोगों से मिलना आवश्यक होगया है और आवश्यकता के कारण ही समाज का अस्तित्व सामने आया। घर से बाहर की यात्रा के दौरान ही जीवन त्रासदी ने जन्म लिया और मानव में आधुनीकीकरण के साथ ही नयी-नयी प्रवृत्तियों का जंगल उग आया।

इस तरह युवक के व्यक्तित्व के निर्माण में पारिवारिक परिवेश का प्रभाव ज्यादा होता है। उसके सामाजिक जीवन तथा सामाजिक व्यवहार पर भी उसके पारिवारिक जीवन का प्रभाव पड़ता है। युवकों में त्याग, सहिष्णुता, तथा मानवता आदि का प्रारंभ पारिवारिक परिवेश में ही होता है। घर में युवक पिता से अर्थ, राजनीति, अधिकार, अनुशासन, दायित्व तथा न्याय-अन्याय के साथ विद्रोह की भावना ग्रहण करता है तो माँ से प्रेम त्याग, समर्पण, धर्म, नैतिकता, क्षमा की भावना को ग्रहण करता है। भाई-बहन से सख्य, स्नेह, आदर तथा सामाजिक व्यवहार सीखता है। आगे वह इन्हीं प्रवृत्तियों व भावनाओं से परिचालित हो अपने विचारों व कर्म को अभिव्यक्ति करता है।

2.1 पारिवारिक संबंधों में रागात्मकता :

पारिवारिक संबंधों का मूलाधार रागात्मकता संबंध है। रागात्मकता एक ऐसा प्रवृत्ति है जो मानव को संपूर्णता के साथ स्वीकारने के लिए प्रेरित करती है। परिवार में चयन का प्रश्न नहीं होता। व्यक्ति खून के रिश्तों से जुड़ा हुआ होता है। बचपन से वह परिवार के अन्य सदस्यों जैसे मां-बाप, भाई-बहन, दादा-दादी, भाभी आदि अनेकों रिश्तों के बीच जीता है। ये सभी रिश्ते आपस में अपने अधिकारों व कर्तव्यों का पालन करते हैं। परिवार में इन सभी रिश्तों का एक विशिष्ट व निर्धारित कर्मक्षेत्र है।

मानव का पहला संबंध मां से, फिर पिता से तथा धीरे-धीरे भाई-बहन से जुड़ता हुआ समाज से जुड़ता है। और इन सबके पीछे रागात्मकता की धारा प्रवाहित होती है। परस्पर अनुराग और आत्मीयता के कारण परिवार के लोग आपस में मिल-जुलकर रहते हैं। एक दूसरे के प्रति जिम्मेदारी महसूस करते हैं। एक-दूसरे को हर दृष्टि से सुरक्षा प्रदान करते हैं। आज के युग में अकेलेपन की बीमारी का मुख्य कारण पारिवारिक रागात्मकता में कमी है।

आज के औद्योगीकरण के परिवेश में युवक अस्तित्व की लड़ाई में भटक गया है। अर्थ की आवश्यकता परिवार की रागात्मकता को सोख रही है। आठवें दशक के उपन्यासों में इस स्थिति को अधिक देखा जा सकता है। इन उपन्यासों की मुख्य समस्या धन, अहम, और काम की है। सारा का सारा परिवेश इसी चादर में लिपटा पड़ा है। प्रश्न से पैदा हुआ बच्चा प्रश्न लगाकर ही मर जाता है। "भ्रम भंग" में चंदन का बचपन आर्थिक संकट व मध्यवर्गीय संस्कार से घिरा हुआ है। चंदन पारिवारिक स्थिति को समझने की समझ है

और इसीलिए वह बंबई जैसे महानगर में अनेकों प्रकार की तकलीफों के बीच अपने परिवार के लिए कुछ करना चाहता है । गांव से दूर बंबई में वह अपनी मां का आशीर्वाद देने की मुद्रा को भुला नहीं पाता । पिता के संघर्ष को याद करता रहता है । उसकी इच्छा है कि वह अपने दायित्व का निर्वाह करें अपने परिवार की स्थिति को बेहतर बनाये ।" किसी के दुख को सहानुभूति देना कितना अच्छा होता है । सहानुभूति लेना भी । ..... मनुष्य का मन रिश्ते खोजता है । अपनेपन के रिश्ते । प्यार के रिश्ते । ..... ये रिश्ते ही असली रिश्ते हैं ।"[39] परन्तु जब ये ही रिश्ते मात्र पैसे पर टिक जाते हैं तो मानव मन बेचैन हो उठता है । उसके जीवन का लक्ष्य दूर हटता नजर आता है । "जी करता है खूब रोऊं, इस वार्ड के बीच में खड़ा होकर चिल्लाऊं । कहूं मेरा कोई नहीं है, न मां, न बाप । न भाई न बहन । मैं अकेला हूं । मेरा कोई नहीं है । एक लावारिस इंसान । ..... मुझसे प्यार कहां है तुम्हें । तुम्हें प्यार है मेरे मनीआर्डरों से । जरा सा कुछ होता है, मुझे लिख देते हो, मैं किसे लिखूं । मैं किससे कहूं ।"[40] चन्दन का यह प्रलाप वास्तव में परिवार के प्रति घृणा व आक्रोश है । वह जब तक बाप के लिए पुत्र था भाई-बहन के लिए बडा भाई था तब तक तो चन्दन के मन में भी परिवार के लिए स्नेह, उत्तरदायित्व तथा पुत्र होने का गर्व था । लेकिन संबंध जब पैसे पर टिक जाता है तो रागात्मक में दरार पड़ जाती है । इस स्थिति को आठवें दशक के प्राय: सभी उपन्यासों में देखा जा सकता है । ममता कालिया का "बेघर", हिमांशु श्रीवास्तव का "रिहर्सल", भीष्म साहनी की "कड़ियां", श्रीलाल की "सीमाएं टूटती हैं",

का "तीसरा आदमी", ऊषा प्रियंवदा का "रुकोगी नहीं राधिका" तथा मोहन राकेश का "अन्तराल" आदि उदाहरण हैं । "बेघर" का परमजीत घर व पारिवारिक महत्ता व उपयोगिता को बंबई में आकर समझता है -- "परमजीत घर वापस जाना नहीं चाहता था । पर वह चाहता था --

घर -- जैसा कोई कोना इस शहर में एकाएक बन जाये । घर का जरूरीपन उसने वहाँ रहकर कभी नहीं जाना था । यह उसे यहाँ आकर ही पता चला कि उदासी का ताल्लुक अकेलेपन से होता है ।"41 इसी उपन्यास की संजोवनी भाई-भाभी से अपेक्षित अपनी माँ के लिए नौकरी करती है । उसे माँ के प्रति भाभी का व्यवहार बर्दाश्त नहीं होता । "नौकरी करती हूँ, इसी से तो भाभी कुछ बोल नहीं सकती । जब से भाई ने बिजनेस में हाथ लगाया है, भाभी का दिमाग आसमान पर चढ़ गया है । सोचती है सारा घर उनका है । माँ की दवाइयों का बिल देखकर मुँह बनाती है तो मुझसे बर्दाश्त नहीं हुआ ।"42 इन उपन्यासों में लड़कों से ज्यादा लड़कियों में पारिवारिक रागात्मकता ... है । "सीमाएं टूटती है" की चांद तथा रूकोगी नहीं राधिका में "राधिका" ये दोनों युवतियाँ अपने पारिवारिक परिवेश से क्रुद्ध हो पलायन करती है । लेकिन कुछ दिनों के बाद वापस आ जाती है । पारिवारिक स्नेह व संस्कार उन्हें अपनी परिधि से ज्यादा दिन बाहर नहीं रहने देता ।

भारतीय मानसिकता परिवार को लेकर ही आगे चलती है । परिवारविहीन मानस बहुत दूर तक आगे नहीं जा सकता है । अत: भारतीय युवा मानस में परिवार के प्रति जितना स्नेह उत्तरदायित्व है उतना ही वह उसे बाधक भी समझता है । उसके प्रति अपना आक्रोश भी व्यक्त करता है । भारतीय समाज में बड़ों की ओर अंगुली उठाना असभ्यता समझा जाती है इसीलिए इस दशक का पारिवारिक आक्रोश मानस में ज्यादा और व्यवहार में कम है । परिणामस्वरूप इसे अकेले व अजनबीपन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है । अनेकों बाहरी यात्राओं के बाद उसे घर व परिवार में वापस लौटना ही पड़ता है । जीने के लिए उसे मन से नहीं, व्यवहार में समझौतों की तहें लगानी पड़ती हैं ।

"कितनी अजीब बात है कि जिन चीजों से आदमी का मन ऊबता है, उन्हीं को उसे इतनी आदत भी हो जाती है कि उनसे वह अपने को छुड़ा नहीं पाता ।"[42]

2.2 पारिवारिक संबंधों में बिखराव :

जीवन में आर्थिक समस्याओं के बढ़ने के कारण परिवार में सदस्यों के बीच रागात्मक संबंध टूटने लगते हैं । पारिवारिक संबंधों में बिखराव के कारण युवा का व्यक्तित्व भी टूटता जा रहा है । अपने ही परिजनों से या भावना के सूत्र से आबद्ध व्यक्तियों से अलग होकर व्यक्ति अपने आपको टूटा हुआ महसूस करता है । परिवार के सदस्यों के बीच इस बिखराव के प्रमुख कारण हैं ।

1. आर्थिक कारण :

परिवारों के सदस्यों के बीच अर्थ की एक अहम भूमिका होती है । और बहुत हद तक परिवार आर्थिक स्थिति पर ही निर्भर करते हैं । आज के औद्योगीकरण ने धन को इतना महिमा मण्डित कर दिया है कि आर्थिक विषमताओं के कारण मनुष्य के रागात्मक संबंधों में बिखराव आ गया है । मनुष्य के जीवन में अर्थ तत्व, राग तत्व पर पूरी तरह से हावी हो गया है । आज का युवा भी इन्हीं आर्थिक विषमताओंजन्य रागात्मक तनावों का शिकार हो गया है । आठवें दशक के उपन्यासों में युवा में रागात्मक तत्व की जगह तनाव, आक्रोश, खीज तथा कुण्ठा मिलती हैं । "भ्रमभंग" में चन्दन इन स्थितियों से गुजरता है । "आदमी ही सबसे ज्यादा बदबू छोड़ता है । इस बदबू में, इन गन्दे दिमागों के बीच, मैं नहीं रह सकूंगा । मां और बहन के रिश्ते । कैसे रिश्ते ? कैसा खून ? कैसा प्यार ये तो

ये तो गैंग्रीन है । जिन्दा रहना है तो अपने शरीर से इन्हें काटकर फेंक देना होगा ।"[43] चन्दन का यह उबाल उसकी मानसिक स्थिति को स्पष्ट करता है । जो चन्दन अपने परिवार के लिए कुछ करना चाहता है वही चन्दन आज परिवार के प्रति इतना आक्रोशी हो गया है । वास्तव में चंदन दिनों-दिन परिवार की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता । उसे लगता है कि परिवार से उसका संबंध मात्र पैसे से है । परिवार में ऐसा कोई भी नहीं है जो उसकी तकलीफों को समझ सके, पैसे से परे उसको अपनापन दे सके । अर्थ की आवश्यकता और भाई-बहन की बढ़ती आवश्यकताओं के कारण चन्दन के परिवार में बिखराव आ जाता है । माँ बेटी के यहां रहने चली जाती है और बहन एक मैकेनिक से शादी कर लेती है । अन्तराल में श्यामा तथा सोमा के आपसी टकराव परिवार में बिखराव लाते हैं । फिर भी उन्हें एक समझौता करना पड़ता है । "बाजी, सोमा और वह, तीनों अपनी-अपनी मजबूरी से आपस में जुड़ी थीं । रूचियें और अपेक्षाएं, तीनों की अलग-अलग थी । साथ रहकर तीनों की परस्पर सिवाये इसके कोई निर्भरता नहीं थी कि घर की आर्थिक स्थिति उन्हें एक साझे किचन से खाना खाने के लिए विवश करती थी ।"[44] यह आर्थिक कमजोरी उन्हें ज्यादा दिनों तक बांध कर नहीं रख पाती और मानसिक बिखराव व्यवहार में बदल जाता है । सोमा श्यामा से स्पष्ट कहती है कि -- "मैं अगर घर में फ्रीकली अपनी ढंग से रह सकती हूं तो एक अंडरस्टैंडिंग के साथ तुम भी फ्री होकर जैसे चाहो रह सकती हो ..... ममी दो चार दिन कुढ़ लेंगी फिर अपने आप चुप हो जायेगी । यूं तो, उनके लिए सवाल उनके लड़के का है तुम दूर रहकर चाहे जैसे रहो ।"[45] सोमा और श्यामा का यह टकराव अपनी स्वतंत्रता के लिए है लेकिन इस बिखराव का वास्तविक कारण आर्थिक है । "तीसरा आदमी" में पति-पत्नी के बीच जो बिखराव आता है उसका कारण भी

आर्थिक कमी ही है । रेडियो स्टेशन पर एक छोटी सी नौकरी के कारण नायक अलग मकान लेकर नहीं रह पाता और सुमंत नामक युवक के घर में रहता है, और यहीं से दाम्पत्य जीवन में तीसरे व्यक्तित्व का उदय होता है जो बिखराव की सीमा को पार कर जाता है । "सीमाएँ टूटती हैं", "नरक दर नरक" तथा "बीमार शहर" में पारिवारिक बिखराव आर्थिक अभाव के कारण ही आता है । "बीमार शहर" में मंजरी का पूरा का पूरा परिवार आर्थिक संकट की आँधी में उखड़ जाता है । कौन कहाँ है कुछ एक दूसरे को कुछ पता नहीं है ।

2. नैतिक कारण :

मर्यादा के बीच रहकर व्यक्ति अपने व्यवहार विचार और इच्छा को नियंत्रण करता है लेकिन जब नैतिक भावना टूटती है तो मानव मन पर चोट पड़ती है और वह व्याकुल हो उठता है । नैतिक भावना पर पड़नेवाली चोट का असर सीधे रागात्मक संबंधों पर पड़ता है और युवा मानस पर इसका असर और ही प्रखर रूप में पड़ता है । नैतिक मूल्यों का टूटना भी परिवार-बिखराव "उसका शहर" में लूपिका और उसके पिता के बीच तनाव फैल जाता है । लूपिका अपने माँ के बारे में कुछ नहीं जानती है । माँ लूपिका को बचपन में ही पिता के हवाले करके चली गयी थी लेकिन लूपिका फिर भी माँ को बहुत चाहती है । पिता आमूल माँ की किसी भी निशानी को घर में नहीं रहने देते सब कुछ तोड़फोड़ देते हैं । लूपिका को पिता का यह व्यवहार पसंद नहीं है । इतना ही नहीं वह पिता के कई स्थितियों के काम व्यवहार को अपनी आँखों से देख चुकी है । उसके मन में पिता के प्रति नफरत है । "वह तो इस लायक भी नहीं कि उससे किसी भी औरत के संबंध में पूछा जा सके । चाहे उसका संबंध मेरी माँ से हो या उसकी पत्नी से ।"46 "अन्तराल" में कुमार और उसकी पत्नी के बीच जो

अलगाव आता है उसका कारण अपनी-अपनी रुचियों का आपस में मेल न खाना है। इस मेल न खाने के पीछे युवा वर्ग की एक अपनी नैतिकता है जिसके आधार पर वे किसी को मात्र सामाजिक स्तर पर नहीं अपनाना चाहते हैं। "सिवाय अपने आदमी किसी की जिंदगी ज्वार नहीं करता .....अगर किसी को लगता हो उसकी जिंदगी दूसरों की वजह से ज्वार हो रही है, तो उसे बदल लेने का हक उससे किसी ने नहीं छीना है।"[47] कुमार की यह नैतिक धारणा आधुनिक युग के बुद्धिजीवी युवामानस की उपज है। इस नैतिक धारणा के आगे सामाजिक नैतिकता बहुत नग्न हो गयी है।

"आपका बंटी" में पारिवारिक बिखराव का कारण आपसी अहम का टकराव है। लेकिन बंटी का जो टकराव मां के साथ होता है वह अहम् का नहीं नैतिक कारण से है। मां का डा० जोशी से शादी करना बंटी को स्वीकार नहीं है। वह मां को जब भी डा० जोशी के साथ देखता है उसका मन आक्रोश से भर उठता है और इसी का प्रतिफल है कि वह अरूप बनकर जीना ज्यादा पसंद करता है। मां को आघात पहुंचाने के लिए ही वह मां को छोड़कर पिता के साथ कलकत्ता चला जाता है। "रूकोगी नहीं राधिका" में भी पिता और पुत्री में जो बिखराव आता है नैतिक कारणों से ही आता है। राधिका इस उम्र में पिता की शादी को स्वीकार नहीं कर पाती और घर से एक नव-युवति की तरह चले जाने की सोचती है और चली जाती है। "अब वह नहीं हो सकता। पापा विद्या से विवाह करना चाहते हैं और यदि राधिका घर से चली भी जायेगी तो शायद वे रोकेंगे नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि राधिका कहीं भी नहीं जा सकती ..... उस समय वह यही चाहती थी, पापा को दुगुने वेग से आघात पहुंचाना।"[48] "रेत की मछली", "कड़ियां", "काली आंधी" में भी पारिवारिक बिखराव नैतिक कारणों से ही आता है।

2·3 पारिवारिक दायित्व :

आठवें दशक के उपन्यासों में पारिवारिक दायित्व की भावना विद्यमान है । "भ्रम भंग", "बेघर", "अन्तराल", "रिहर्सल" आदि में युवकों/युवतियों में पारिवारिक दायित्व व जिम्मेदारी की भावना है । बेघर में परमजीत अपने भाई-बहन में सबसे बड़ा है और वह अपनी जिम्मेदारी को बखूबी समझता है । "वयस्कता एक जिम्मेदारी होती है जो ढोते ही जाता है ।"[49] आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़े हुए युवक इस जिम्मेदारी को समझते ही नहीं हर हालत में निभाना अपना फर्ज समझते हैं । "भ्रमभंग" में चन्द्रन अपने बड़े भाई व पुत्र होने की जिम्मेदारी से बंधा हुआ है । वह इस जिम्मेदारी को खुशी व सहर्ष निभाता है । "वही खुशी आज मेरे कन्धों पर जिम्मेदारी बन रही है । मैं महसूस कर रहा हूं पिता जी पैंसठ के हो चले हैं । उन्होंने अपना कर्त्तव्य कर दिया । अब मुझे अपना फर्ज निभाना है और मुझे लगता है कि मैं उसके लिए तैयार हूं । जब यह संबंध मात्र पैसे से जुड़ जाता है तो यही जिम्मेदारी कर्ज बन जाती है और युवा चन्दन पारिवारिक विघटन की स्थिति में भी अपने दायित्व से मुंह नहीं मोड़ता । "मैं आपका बेटा हूं । बेटा बनने का पूरा कर्ज चुकाऊंगा, हां, यह अब कर्ज ही तो हुआ ? जहां सारा संबंध, सारा लाड और ममता पैसे पर आकर तुल जायें ।"[50] रिहर्सल में बेला अपनी जिम्मेदारियों पर अपनी कुर्बानी देती है तथा टीना अपने दायित्व को निभाने की प्रक्रिया में मृत्यु का वरण करती है ।

पारिवारिक बोझ के कारण "पचपन खंभे लाल दीवारें" में सुषमा अविवाहित रह जाती है तो "सीमाएं टूटती हैं" में जूली परिवार को चलाने के लिए वेश्यागिरी को अपनाती है । वह एक दुकान पर

टाइपिस्ट का काम करती है । घर की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण वह विमल नामक एक चालीस वर्ष के व्यक्ति के सम्पर्क में आती है जो उसके आर्थिक मदद करता है और बदले में उसका जिस्म मांगता है । निकम्मा भाई, शराबी बाप, बीमार मां उस पर आश्रित हैं । वह इस वेश्यागिरी को पाप नहीं बल्कि जिंदा रहने की मजबूरी समझती है । वह कहती है -- "मैंने पाप नहीं किया है, सिर्फ अपने ~~xxxxxxx~~ परिवार के लिए नरक झेला है ।"[51] "अन्तराल" में श्यामा पति की अनुपस्थिति में उस परिवार का दायित्व अपने कन्धों पर लेकर चलती है जो उससे कहीं भी किसी भी स्तर पर सहारा नहीं देता । पति जो जब तक जिया उसके व्यक्तित्व में अपराधबोध जगाता रहा और उसका परिवार उससे हर स्तर पर समझौते की बात करता है । "आज भी मेरी कोई वास्तविक अपेक्षा है तो उस के साथ बैठकर अपनी जिन्दगी की जरूरतों का निपटारा करने की । मुझे लगता है कि कहीं उसने मुझे धोखा दिया है ..... अपने आप का एक अंश बिना मेरे सामने खोले वह अपने साथ ले गया । बदले में अपनी कुछ जिम्मेदारियां मेरे ऊपर छोड़ गया है जिन्हें मैं जबर्दस्ती, जैसे उससे बदला लेने के लिए अपने ऊपर ओढ़कर चल रही हूं ।"[52]

पारिवारिक दायित्व का यह बोझ जब अत्यधिक भारी हो जाता है तब युवा को आर्थिक संकट से संघर्ष करना पड जाता है । बेरोजगारी और बढ़ती हुई महंगाई के आगे वह लंगडा हो जाता है । अपनी जिम्मेदारियों के आगे युवा वर्ग गूंगा हो गया है । "गली आगे मुड़ती है" उपन्यास में तिवारी ट्यूशन करके अपने परिवार को चलाने का प्रयत्न करता है । वह बिना स्कालशिप के रिसर्च कर रहा है । उसके लिए परिवार चलाना मुश्किल होता है । वह सोचता है -- क्या करूं, जितना हो रहा है कर रहा हूं । मैं क्या रुपया ... करने की मशीन

हूं, परिवार भी साला सिरदर्द है ।"[5] "अपना मोर्चा" में छात्र बेकारी से पीड़ित हैं । वे पारिवारिक दायित्व से भागते नहीं हैं बल्कि बेरोजगारी उन्हें दायित्व से काटती है । लोगों तथा परिवारवालों की नजरों में ये लोफर, आवारा और कामचोर हैं । परंतु उनके सामने रोजगार का प्रश्न है । बेरोजगारी के कारण युवकों का असंतोष एक तरफ वर्तमान शिक्षा पद्धति पर तो दूसरी तरफ राजनीति की पैंतरेबाजी पर है ।

2·4 विवाह और पति पत्नी संबंध :

आज के युवकों में प्रेम, विवाह तथा काम के प्रति दृष्टिकोण पूर्णत: बदल गया है । युवक इन दोनों को अलग-अलग परिप्रेक्ष्य में देखता है। पारम्परिक धारणा में ये दोनों ही एक ही सूत्र में पिरोए हुए थे । विवाह एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में स्वीकारा गया और प्रेम तथा काम का संबंध अभिन्न माना गया । परन्तु नई नैतिकता इन तीनों को पृथक-पृथक रूप में स्वीकार करती है । आज के युवक के लिए प्रेम एक नैसर्गिक प्रवृत्ति है, विवाह सामाजिक आवश्यकता तथा काम एक प्राकृतिक भूख । इसकी पूर्ति किसी भी स्थिति में होनी चाहिए । पारम्परिक संदर्भ में इन तीनों को एक साथ जोड़कर देखा जाता था । अर्थात् प्रेम उसी से हो जिससे विवाह हो और विवाह में ही यौन संबंधों को स्वीकृति की गयी है । परम्परा में विवाह के पीछे की मूल धारणा यौन संबंध तथा संतान उत्पत्ति है । विवाह इन्हें सामाजिक मर्यादा का जामा पहनाता है । अर्थात् समाज में प्रेम व यौन संबंध को स्वतंत्रता नहीं है । विवाह पूर्व या पश्चात् यौन संबंध का अन्यत्र होना अवैध घोषित किया गया है । यह माना गया है कि पति-पत्नी ही "प्रेमी-प्रेमिका" हो सकते हैं । परन्तु युवा वर्ग में यह धारणा बिलकुल ही बदल गयी है । युवाधारणा के अनुसार पत्नी कभी भी प्रेमिका नहीं हो सकती ।

प्रेम और यौन के संबंध में आज तक परम्परागत दृष्टि से जो कुछ अवैध घोषित था, आज के युवक उसे वैध घोषित करने का प्रयत्न करते हैं। विवाह की अनिवार्यता तथा प्रेम की नैतिकता समाप्त हो गयी है। विवाह एक सामाजिक जिम्मेदारी बनकर भी अपनी अस्तित्व के खतरे से घिरा हुआ है। आज के युवा वर्ग में विवाह, प्रेम तथा यौन संबंधों का द्वन्द्व विद्यमान है।

"उसका शहर" में लूपिका किसी भी ऐसे संबंध से इन्कार करती है जिसमें बंधे रहने का भाव निहित हो। "वह किसी भी थोथे संबंध को अस्वीकार करती है जिसमें जीवन के किसी महत्वपूर्ण पहलू में बंधने जैसा भाव हो। ..... उसने देखा और अनुभव से ही जाना है कि इन आजीवन संबंधों में सिवा एक समर्पित व्यक्तित्व के और कुछ भी नहीं रह जाता।"[52] लूपिका को यह महसूस होता है कि विवाह में एक बंधन का भाव होता है। इसीलिए उसमें सम्पूर्ण समर्पण अनिवार्य है। इसी अनिवार्यता के कारण लूपिका विवाह जैसी सामाजिक आवश्यकता से इनकार करती है। "वैधानिक यौन संबंधों की सुविधा के लिए मैं विवाह स्वीकार नहीं कर सकती और न इन संबंधों को मैं आवश्यक ही मानती हूं।"[53]

"भ्रमभंग" में चन्दन प्यार और विवाह की व्याख्या करते हुए कहता है कि प्यार एक उबाल के समान उठता है जबकि विवाह समझौता है -- "मन में एक उबाल आता है और लगता है, हम अपना सब कुछ दे चुके हैं। वहां कोई तर्क नहीं होता। तर्क का आवश्यकता भी क्या है। क्या इतना ही सबकुछ नहीं कि हमारा मन ढल गया है ..... प्यार में खोना और पाना सब समान है ..... सब उपलब्धि है।"[54] चन्दन अपनी मेधा से मन ही मन प्यार करता है।

उनका यह रोमांटिक प्रेम एक तरफा और कुछ ही दिनों में टूटकर बिखर जाता है । चन्दन एक बुद्धिजीवी युवा है । वह अपनी हार और असफलताओं को महसूस करता है । लेकिन अपने अस्तित्व पर हावी नहीं होने देता । इसीलिए मेधा का रोमांटिक प्रेम का भ्रम छटते ही वह प्रेम की व्याख्या पारम्परिक दृष्टि से हटकर अलग तरह से करता है । प्रेम में सफलता या असफलता दोनों ही एक उपलब्धि है । और विवाह को प्रेम से नहीं जोड़ना चाहता है -- "विवाह को प्यार के साथ नहीं जोड़ना चाहिए । प्यार विवाह हो सकता है विवाह भी प्यार बन सकता है लेकिन प्यार से ज्यादा कर्त्तव्य बन जाता है । सारा बलिदान कर्त्तव्य भावना से होता है -- एक मशीन की तरह । विवाह प्यार को मशीन बना देता है । ..... विवाह समझौता है । जीवन की संगति है । आवश्यक भी है ।"[55] चन्दन की इस दृष्टि में विवाह में प्यार दायित्व के बोझ तले दब जाता है ।

"अन्तराल" में पति-पत्नी के बीच के द्वन्द्व को कई दृष्टियों से उभारा गया है । श्यामा तथा देव का डेढ़ साल का वैवाहिक जीवन पूरी जिन्दगी के लिए नासूर बन गया है । देव विवाह के बाद मात्र डेढ़ साल जीवित रहता है । अपने इस सीमित जीवन में वह पत्नी श्यामा के मानस को कई जगह से मोड़ता-तोड़ता है । "अपनी जिन्दगी का कुल डेढ़-साल मैंने उस आदमी के साथ बिताया था । लेकिन आज भी मैं उसके साथ अपने संबंधों को ठीक-ठीक नहीं समझ पाती । वह मेरे लिए बहुत अजनबी है या बहुत अपना, इस विषय में मुझे अपने अन्दर अलग-अलग प्रतिक्रियाएं मिलती हैं ..... वह कभी मुझे अपने इतने पास नहीं लगा कि मैं अपने को उसमें, खो सकूं ।"[56] अपने को न खो सकने की असफलता वास्तव में श्यामा के अहं से जुड़ा है । श्यामा देव को पूरी तरह से

अपना नहीं पाती । "प्रेम यदि मानसिक समर्पणता को मांग करता है तो विवाह मानसिक तथा शारीरिक दोनों ही को श्यामाकी असफलता मानसिक स्तर पर समर्पण न करने के कारण है । देव के मरने के बाद वह देव के साथ बिताए जीवन का विश्लेषण करती है और पाती है कि देव ने उसे झेला है । "वह डेढ साल भी मेरे साथ जिया नहीं था, सिर्फ मुझे झेलता रहा था ।"[57] देव और श्याम का संबंध अहम का शिकार है । इसीलिए उसका वैवाहिक जीवन अपने-अपने दायरे में अपराधी महसूस करता है । पहले एक दूसरे के प्रति और कुछ समय पश्चात् स्वयं को । पारम्परिक दृष्टि में पत्नी को अर्धांगिनी माना गया है । लेकिन व्यवहार में व्याख्या, सीमित दायरे में रही है । अब युवा पत्नी को पारम्परिक या घरेलू बनाना नहीं चाहता वह पत्नी को अपनी आत्म-तुष्टि के साथ-साथ उसमें और भी बहुत कुछ देखना चाहता है । "अन्तराल" का देव एक ऐसा ही पुरूष है । "उन्हें अपनी पत्नी से जो चाहिए था, वह उसे कभी नहीं मिल पाया । विवाह के दिन से वह अपनी ही एक दुनिया में उलझी रही है । उसके लिए एक मांस की पुतला के अतिरिक्त कभी कुछ नहीं बन पायी है । न ही वे उसके लिए एक अधिकार या सुविधा से अधिक कुछ बन पाए हैं ।"[58] यह अतिरिक्त मांग क्या है ? इसके बारे में दोनों ही मौन हैं परन्तु एक बात स्पष्ट है कि आजका दाम्पत्य जीवन यौन संबंधों के अतिरिक्त और बहुत कुछ की मांग करता है ।

"बीमार शहर" का परिवेश महानगर का परिवेश है जहां आदमी का आपसी सम्पर्क संक्षिप्त या कटा हुआ होता है । अत: वहां की युवा विचारधारा भी व्यक्तिकताके सतह पर बनती-बिगडती है । मिस गोरा जो कुमारी है और तीन बेटियों की मां है शहरी परिवेश में पूरी तरह से भीगी हुई है । उन्हें विवाह जैसी व्यवस्था से चिढ है ।

इसीलिए मंजरी से कहती है -- "जब तक तुम विवाह जैसी गंदी नाली में नहीं जाती, शौक से यहां रह सकती हो ।" मिस गोरा की यह मानसिकता उनके उस परिवेश की देन है जहां पुरूष प्रेम करते हैं और बच्चा पैदा करने के लिए विवाह की दुहाई देते हैं । मिस गोरा का प्रेम असफल रहा है । वह विवाह पूर्व मां बनती है और सामाजिक लांछन का शिकार है जिसके परिणामस्वरूप उन्हें विवाह से ही नफरत है और अपने वैयक्तिक चेतना को सामाजिक चेतना में बदलना चाहती है । वास्तविक में यह उनका समाज के प्रति विद्रोह है । "तुम पुरूष हो । तुम्हें किसी नारी से प्रेम करते शर्म नहीं आती ? प्रेम करते समय तुम उसे बड़े-बड़े सब्जबाग दिखाते हो । उसका प्रेम पाने के लिए उसके तलवे तक चाटते हो और जब तुम्हारा प्रेम उसके गर्भ में अंकुर फोड़ने लगता है तो तुम उसे समूची धरती को ही खोदकर फेंक देना चाहते हो । तुम उसे बेबस और असहाय छोड़कर भाग जाते हो ।"59 इस तरह बेबस और असहाय मानस का व्यवस्था के प्रति विद्रोही होना स्वाभाविक है । "बीमार शहर" का प्रत्येकमानस कहीं न कहीं हर स्तर पर पारम्परिक व्यवस्था का शिकार है और अब विद्रोह की प्रक्रिया में है । इसीलिए मिस गोरा कहती है -- "मैं मिस हूं और मेरी तीन बेटियां है । जीवन को किसी बंधन में कसना मैंने अभीष्ट नहीं समझा । निर्बंध ही रहकर जीवन भोगा जा सकता है ।"60 मिस गोरा की तीनों लड़कियां भी मिस गोरा का अनुसरण करती है । वे पैसा और रिश्ता को दो अलग-अलग चीजें मानती है । जबकि निर्जन सिंह गांव के परिवेश में पला है उसके लिए विवाह एक बंधन है और उसका टूटन अशुभ है", विवाह में प्रेम नहीं होता । इसमें एक बंधन होता है । विवाह के पहले हमें अग्नि के चारों ओर घुमाया जाता है । अग्नि मार्यादा की प्रतीक है । मर्यादा के बाहर जाने पर यही अग्नि हमें जला सकती है ।"61 शोभना के लिए दाम्पत्य जीवन का अर्थ साथ रहने में है "जोड़ा तो वह है जो साथ रहे । जोड़े से जिस बात की कल्पना साधारण लोग करते है, वैसा मैं नहीं सोचती ।"

"तीसरा आदमी" में सामाजिक व पारिवारिक मान्यताओं और रूढियों के दाम्पत्य जीवन के बीच तीसरे का व्यक्तित्व गढ़ता है। यह तीसरा और कोई नहीं अपनी आर्थिक कमजोर, मजबूरी और पारिवारिक संस्कार हैं जो पत्नी का दूसरे के साथ संबंध होते हैं। तीसरे का आभास देता है। उपन्यास का नायक संस्कारों से बंधा होने के कारण अपने परिवार से कट जाता है और आज अकेले में उसे विश्लेषित करता है कि -- "आज मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि पति-पत्नी के संबंधों में यह संयम जहर घोल देता है। जो बात समाज के संदर्भ में सभ्य और शालीन है, वही बात पति-पत्नी के संदर्भ में गलत और अवास्तविक हो सकती है।

पति-पत्नी के संबंधों का आधार ही दूसरा है -- इस संबंध में एक नैसर्गिक कोमल पशुता है। यह संबंध बुद्धि से उतना संतुलित नहीं होता जितना कि हृदय से और इसीलिए तर्क की उतनी गुंजाइश इसमें नहीं है। इस संबंध के बारे में तर्क हो ही नहीं सकता। किसी भी तर्क के सहारे इसे चलाया नहीं जा सकता।"[62]

इस तरह यह देखा गया है कि आठवें दशक के युवा में विवाह प्रेम और यौन संबंधों को लेकर मानस स्तर पर द्वन्द्व विद्यमान है। यह काल उसेक लिए संक्रान्ति काल है जिसमें मानस की सोच व्यवहार में आने से संकोच करती है। अर्थात् चिन्तन व विचार व्यवहार में आने में संकोच करते हैं और यदा कदी आये भी हैं तो विद्रोह के रूप में। "सीमाएं टूटती है" में चांद तथा राज व "रूकोगी नहीं राधिका" में राधिका, विद्या तथा मनीष इसी श्रेणी में आते हैं। ये युवा अपने चिन्तन को व्यवहारिक धरातल पर सामान्य रूप से नहीं लाते। बल्कि ये ऐसा करते समय किसी न किसी के प्रति विद्रोह की भावना से प्रेरित हैं और अपने दृष्टिकोण की व्याख्या कर अपने अपराध बोध से मुक्त होना चाहते हैं।

3. सामाजिक परिवेश :

सामाजिक परिवेश का सीधा अर्थ है वह परिवेश या वातावरण जिसमें युवा घर से बाहर निकलकर अपने अस्तित्व को नयी मान्यताओं के आधार पर दूसरे के साथ स्थापित करता है । मानसिक स्तर पर अन्य दूसरों से अपने को जोड़ने की प्रक्रिया में उसे कुछ अपना खोना पड़ता है और कुछ बाहर से अपने में समाहित करना पड़ता है । व्यक्तित्व के विकास में इस परिवेश का एक बहुत बडा हिस्सा होता है । सामाजिक परिवेश एक विस्तृत परिवेश है जिसमें व्यक्ति को हैसियत, क्षमता तथा उसका हर प्रवृत्ति को बाहर आने का अवसर मिलता है ।

3.1 मैत्री परिवेश :

मैत्री भावना समाज को आत्मा है । मैत्री भावना के अभाव में किसी भी व्यवहार का सहज व सुखद होना असंभव है । बच्चा जब परिवार से बाहर निकलकर स्कूल में पढ़ने जाता है तो उसका परिवेश ही बदल जाता है । परिवार तथा आस-पड़ोस तक सीमित परिवेश अचानक विस्तृत हो जाता है और यहीं से सामाजिक व्यवहार की शुरूआत होती है । मैत्री भावना का प्रादुर्भाव होता है । बढती हुई उम्र के साथ इस भावना में प्रगाढता, चिन्तन तथा पसन्द नापसंद की भावना तथा विविधता आती जाती है । युवा का अधिकतर समय घर से बाहर अपने मित्रों में बीता है । उसे परिवार के सदस्यों से ज्यादा दोस्त प्रिय होते है । हम उम्र दोस्तों में वे अपने दिल और दिमाग को पूरा तरह से खोलते हैं । एक-दूसरे से ताकत प्राप्त करते हैं । "अपना मोर्चा", "गली आगे मुडती है", "लाल पीली जमीन", "अलग-अलग वैतरणी" आदि में मित्र मंडलीयों का समूह विद्यमान है । इन मित्र मंडलियों का अपना वर्ग, चरित्र तथा अपनी नैतिकता है । युवक आपस में

सहज रूप से मिलते हैं। लक्ष्य तथा कर्म में समान रूप से हिस्सा लेते हैं। इन उपन्यासों के युवक मध्य वर्ग के युवक हैं तथा मध्यवर्गीय संस्कार और आवश्यकता से संघर्ष कर रहे हैं। बेरोजगारी की समस्या सभी को एक विषय पर संगठित करती है। मार-पीट करना, सरकार के खिलाफ आन्दोलन करना और परिवार के प्रति विद्रोह करना इनके चिन्तन के विषय हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली से असंतुष्ट ये युवा मानसिक स्तर पर आत्मपीड़ा भोग रहे हैं। समाज की [illegible] उन्हें समाज विद्रोही बनाती है। "अपना मोर्चा" की मित्र-मंडली छात्र मित्र मंडल है। सभी का लक्ष्य व चिंतन एक है। एक ही मसले पर सोचते हैं और मरने-मारने की बात करते हैं। "कामन रूप में लड़कों की बैठक चल रही है। दीवारों के बीच की जगह ठसाठस भरी है। परेशान चेहरों पर उम्मीद और विश्वास से चमकती ..... "जुबली पार्क" की घटना इनके लिए सबक रही है। उनके आगे "माइक" और मंच को हाथ में लेने की होड़ खत्म हो चुकी है। यही नहीं अपने को गिरफ्तार करा देना, जेल में चले जाना और वहाँ वक्तव्य पर वक्तव्य देना -- उन्हें एक तरफ का भगोड़ापन और बहुत कुछ बाज़ारू लगने लगा है। उन्हें परम्परा से चलनेवाली नेतृत्व की पद्धति बेमानी ही नहीं गलत भी लगने लगी है।"[63] युवकों की ये विचारधारा मैत्री से पैदा हुई है।

"अन्तराल", "तीसरा आदमी", "बीमार शहर", "उसका शहर", "रूकोगी नहीं राधिका" तथा "सीमाएं टूटती हैं" में मैत्री संबंधों की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। "अन्तराल" में सीमा दोस्ती के बीच जाति-पांत नहीं मानती। दोस्ती किसी से भी की जा सकती है। उसे अपने दोस्त अख्तर के साथ मां का व्यवहार पसंद नहीं आता। "वह इसीलिए नहीं भाता कि उसका नाम महेश, सुरेश नहीं अख्तर है और वह नमस्ते की जगह आदाब अर्ज करता है। मुझे इस दकियानुसीपन

से बहुत चिढ़ है । आदमी को नाम और जात पूछकर पसंद नहीं किया जाता ।"[64] सोमा की नजर में दोस्ती एक अलग चीज है । उसके साथ ब्याह भी किया जा सकता है । "मैं कहती हूं ब्याह करना हो तो भी हर्ज क्या है ? हांलांकि किसी से दोस्ती करने का यही एक मतलब नहीं है ।"[65] मैत्री का यह दृष्टिकोण पारम्परिक मान्यताओं से अलग है । पारम्परिक मान्यताएं ये हो रही हैं कि लड़की की लड़की ही दोस्त हो सकती है । शादी के बाद ही उसका सम्पर्क पति के रूप में लड़के से होता है । यदि किसी लड़की का कोई लड़का दोस्त है तो वह प्रेमी ही हो सकता है दोस्त नहीं ।

"बीमार शहर" के पात्र एक ऐसी दुनियां में जीते हैं जहां सामाजिक व्यवहार अर्थहीन हो गया है । मैत्री भावना विकृत हो गयी है । दौड़ती हुई जिन्दगी में मैत्री भावना का अर्थ अपनी आवश्यकताओं की प्राप्ति तथा अपने अपराध बोध से मुक्त होता है । विपरीत लिंग के प्रति मैत्री भावना अपने यौवन को जागृत करने के लिए है । "मैं शरीर लुटाते फिरने की बात यहां नहीं कर रही हूं । मैं केवल सान्निध्य प्राप्त करने की बात कर रही हूं । उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए मैं पुरूषों से मित्रता रखती हैं । ..... मेरे ऐसे बारह पुरूष मित्र हैं ।"[60] शोभना की यह व्याख्या महानगरीय सभ्यता बन चुकी है । जीवन का अकेलापन युवा को इतना व्यथित करता है कि वह ऐसे दोस्त की तलाश करता है जो उसके अकेलेपन को बांट सके । अपने मन की व्यथा को एक दूसरे को प्रदान करके हल्का महसूस करें । "सीमाएं टूटती हैं" में चांद और मुकर्जी एक दूसरे से प्यार करते हैं । लेकिन अपराध कुण्ठा की भावना चांद में अकेलापन भर देती है । अपराध पिता करता है । सजा चांद भोगती है । अपने प्रेमी मुकर्जी को छोड़कर वह बिमल से जो उम्र में उसके पिता के समान है, दोस्ती करती है । सामाजिक

मर्यादा का उल्लंघन कर वह उससे शारीरिक संबंध स्थापित करती और अपने अकेलेपन को विमल के साथ बांटती है । चांद का यह व्यवहार उसकी मानसिक कुण्ठा के कारण है । मुकर्जी जो उसके बराबर की है हैसियत का है उसे इसीलिए नहीं अपनाती है कि उसे नैतिक स्तर पर मुकर्जी से नीचा देखना पड़ेगा । वह मुकर्जी से कहती है -- "हम लोग वैज्ञानिक हैं -- है न ? और प्रेम के मामलों में अपना वक्त बरबाद नहीं कर सकते ..... अगर मैं कर सकती तो यही इसी वक्त तुमसे कहती, बोलो मुकर्जी मोशाय, मेरे शौहर बनोगे ? पर मैंने ऐसा नहीं किया तो उससे क्या साबित होता है ? यही कि मैं प्रपोज नहीं कर सकती ......अब मैं वैसा नहीं कर सकती तो दूसरा तरीका यही है कि हम लोग पहले की तरह हो जायं और वैसे ही साथ-साथ काम करते रहें - दोस्तों की तरह ।"[63] इस दशक तक आते-आते युवा मन में दोस्ती की भावना मनोवैज्ञानिक हो गयी है । और यह रिश्ता ऐसा है जो मन की पसंदगी से जोड़ा तो जाता है परन्तु अपनी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के बावजूद मन के कोने में एक ऐसी गांठ रह जाती है जो दोस्तों से अछूता है । फिर भी दोस्त युवा का सबसे बड़ा सहारा है जिसके सहारे वह जीवन की सारी परेशानियों को झेलता है । युवक को परिवार और समाज के सब लोग अलग करने पर भी उसके दोस्त ही सहानुभूति के साथ उसकी सहायता करते हैं । दोस्तों के साथ हंसी, मजाक की बातें करते हुए समय बिताता है । "सुरजमुखी अंधेरे की" में रत्ती का दर्द उसका दोस्त नहीं बांटता है । पीड़ा से व्यथित रत्ती को मित्र असद समझता है और उसकी पीड़ा को बांटने की कोशिश करता है ।

3·2 कार्यालयीन परिवेश :

स्वतंत्रता के बाद देश अफसरशाही और नेताशाही में विश्वास रखनेवालों के हाथ में खिसक गया । विभिन्न पदों पर नियुक्त अफसर तथा कर्मचारी अपने आप सत्ता के दलाल हो गये । किसी भी कार्य के लिए निर्धारित मापदण्ड अफसरों व कर्मचारियों के लिए पर्याप्त नहीं रहे । नियुक्ति से लेकर पदोन्नति तक के लिए अपने ऊपर के अधिकारियों को खुश करना आवश्यक हो गया है । छोटे-छोटे कामों के लिए रिश्वत आवश्यक अंग बन गया है । रिश्वत व खुशामद के बिना कार्यालय के अन्दर काम करना मुश्किल हो गया है । हर बड़ा अधिकारी अपने अन्तर्गत काम करनेवाले कर्मचारियों तथा अधिकारियों से भेंट के रूप में कुछ पाना चाहता है । घूस लेने व देने के लिए फाइलों में कुछ गोलमाल करना ही पड़ता है । अपने बास की आंखों में बसने के लिए कुछ खिलाना-पिलाना एक प्रथा बन चुकी है । ऐसे वातावरण में जबकि कार्यालयों की नैतिकता समाप्त हो गयी है । एक युवक को अपनी ड्यूटी निभाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । भ्रष्ट और चरित्रहीन अधिकारी के अन्तर्गत काम करना ईमानदार युवक के लिए मुश्किल हो जाता है । वह इसे सहन नहीं कर सकता । वह अपना काम मन लगाकर करना चाहता है लेकिन अन्य कर्मचारी उसकी राह में तरह-तरह के रोड़े अटकाकर उसे असामान्य बना देते हैं । बेकारी की समस्या को देखते हुए वह नौकरी भी नहीं छोड़ता । परिणाम यह होता है कि युवक द्वन्द्वशील हो जाते हैं और उसे नौकरी में हर कदम पर संघर्ष करना पड़ता है । "नरक दर नरक" में नायक जगन एक निर्भीक संघर्षशील स्वभाव का व्यक्ति है । वह जुझारू परिस्थितियों के तेवर को अधिक तीखा और रचनात्मक बनाना चाहता है । वह एक कालेज में प्राध्यापक है और कालेज की व्यवस्था की गलत नीति और सुविधाभोगी परिस्थिति का

विरोध कर एक नया परिवेश बनाना चाहता है । परिणाम यह होता है कि व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करने के कारण उसे कॉलेज से निकाल दिया जाता है और वह रोटी के लिए मोहताज हो जाता है । भूखा पेट संघर्ष नहीं कर सकता ।

"भ्रमभंग" में चन्दन इसी परिवेश की विडम्बना का एहसास करता है । वह सोचता है "नेहरू मेरे तुम्हें अपना आदर्श बनाकर मैंने भूल की । इसीलिए आज दुखी हूं । ठीक से अध्यापकी भी नहीं कर पा रहा । आदर्श होने चाहिए थे । भ्रष्ट मिनिस्टर और नेता ये पाखण्डी सन्त और महन्त । कितनी लम्बी नामावली है । देश के नक्शे में इन्हीं के नाम चमक रहे हैं ..... आज हिन्दुस्तान इनका है उन सबका जो गलत है । गलतियों का नाम हिन्दुस्तान है । स्वार्थ, भ्रष्टाचार और कदम-कदम पर झूठ का दूसरा नाम । मैं गलतियों के साथ होता ..... आज मेरा भी कुछ होता । किसी का चमचा बन जाना या सब स्थितियों में दांत निपोरने का अभ्यास करना ही आज सफलता की योग्यता हो गयी है ।"[67] चंदन का यह कथन मौजदा व्यवस्था के प्रति विद्रोह है । लेकिन मध्यवर्गीय चरित्र है कि "मन में उसे भोगो । बाहर नैतिकता दिखलाओ । यह दोहरा चरित्र ..... और सबके गाली देते रहो । अपने को कोसते रहो ।"[68]

"रिहर्सल" में टीना एक रेडियो कलाकार है घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण उसे जीवन पर्यन्त संघर्ष करना पड़ता है । वह रेडियो स्टेशन में एक कलाकार की हैसियत से नाटकों में काम प्राप्त करना चाहती है जबकि उसके साथी उससे उसके जिस्म की रिश्वत मांगते हैं "याद रखना हुस्न के साथ अक्ल का होना लाजिमी है । तुम सुंदर हो और कलाकार हो और यहां का माहौल काजल की बारिश करता है । अपने पर सब्र करके, नाउम्मीदी में सब्र करके ही काजल के इन छींटों से बच सकोगी ।"[69] टीना अपने जीवन में इस समझौते को

स्वीकार नहीं कर पाती । परिणामस्वरूप उसे नाटकों में काम नहीं मिलता और उसके हिस्से का काम परिस्थितियों को स्वीकार कर चलने-वाली शबनम जो उससे योग्यता में कम है, को मिल जाता है । सरकारी कायदों व अधिकारियों की सूझ-बूझ इस अन्याय को न्याय संगत ठहराती है ।

"कड़ियां" उपन्यास की प्रमिला एक घरेलू औरत है लेकिन कार्यालयीन परिवेश में पुरूषों के साथ काम कर रही महिलाओं की मनोस्थिति चित्रित करती हुई कहते हैं -- "मैं जानती हूं क्यों तुम मेरा इन्तजार कर रहे हो ? दफ्तर में बनी ठनी लडकियां देखते रहते हो, घर आते हो तो भूत सवार हो जाता है ।"[70] प्रमिला का यह कथन सुषमा की मानसिकता को उभारता है । सुषमा जो महेन्द्र के साथ काम करती है और धीरे-धीरे महेन्द्र की प्रेमिका बन जाती है । महेन्द्र से बड़ा अधिकारी की कृपा पाते ही वह महेन्द्र को छोड़कर वर्मा के प्रति आकर्षित होती है -- "उधर सुषमा की स्थिति जटिल होती जा रही थी । उसके क्षितिज पर एक वर्मा जी प्रकट हो गये थे । वर्मा जी दफ्तर के डिप्टी डाइरेक्टर थे ।"[71] सुषमा की यह मानसिकता कार्यालयीन परिवेश की देन है । पुरूष सुषमा के अकेलेपन का फायदा उठाना चाहते हैं और यही युवा सुषमा की आदत बन गयी है ।

"महाभोज" का पुलिस अधीक्षक सक्सेना ईमानदार और कर्तव्य परायण पुलिस अधिकारी है । वह बिसू की हत्या के कारणों की सही खोज करना चाहता है । बडे परिश्रम से वह हत्या सामग्री को एकत्र करता है । लेकिन उसके इस कार्य से खीझकर मुख्य मंत्री दा-साहब उसको मुअत्तर करते हैं । दा साहेब के संकेत पर पुलिस बिसू के साथी

बिंदा को हत्या को दोषी बताकर गिरफ्तार करती है और रिपोर्ट को तोड़कर मन माने ढंग से तैयार करनेवाले बडे पुलिस अधिकारी की पदोन्नति होती है और उस परिवेश के तीन लोग हैं -- "मौज मस्ती में डूबी इस बिरादरी से कटे हुए तीन लोग, सक्सेना, लोचन बाबू और बिंदा -- पूरी तरह उपेक्षित, परित्यक्त और एक तरफ फेंके हुए ।"[72]

3·3 ग्रामीण व शहरी परिवेश :

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी अधिकांश जनता गांवों में रहती है । आज जबकि औद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण होता जा रहा है, भारतीय ग्रामीण जनता में शहरों के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है । नगर और महानगरों में उद्योग-धन्धे तथा नौकरी की तलाश में युवक शहरों की तरफ आ रहे हैं । आधुनिक युग में विज्ञान की मदद से उत्पादन के कल-कारखाने, रेल, वायुयान, जलयान, डाक-तार रेडियो, टेलीविजन, केमरा, सिनेमा, समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं, घरों में काम आनेवाली सुविधाजनक अनेक वस्तुएं तैयार हो गयी हैं । इनके विज्ञापन हर प्रचार माध्यम से दिये जा रहे हैं जिससे लोगों को इनके प्रति जागृति आयी है । इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतीय युवामनस सुविधापरस्त हो गया है । वह गांव से ज्यादा शहरी की जिन्दगी को पसंद करता है । शहर में विविध वर्ग व प्रकार के लोगों के साथ उसका उठना-बैठना होता है, उसमें एक नयी सोच उत्पन्न होती है । वह शहरी परिवेश को अपनाता है । बाहर से दिखनेवाली चमकदमक की यह दुनियां युवा को अत्यधिक आकर्षित करती है । क्लब, रेस्तरां, सिनेमा, डिस्को युवकों की पसंदीदा जगह है । राह चलती लडकियां गांव की तरह उनकी बहन बूआ या मौसी नहीं लगती जिसके कारण वे आसानी व बेशरमी से भरे इशारे कर सकते हैं । शहरों में वे एक अजनबी

की तरह आते हैं और वहां की हजारों तकलीफों को झेलते हुए भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं ।

ग्रामीण परिवेश का दायरा सीमित होता है और सुविधाओं तथा मान्यताओं व रूढियों में जकड़े हुए ग्रामवासियों की अपनी नैतिकता तथा अपना शौक होता है । ग्रामीण युवक उसे बचपन से देखता है और बड़े होने पर अपनाता है । "लाल-पीली जमीन", "अलग-अलग वैतरणी में" ग्रामीण परिवेश में पले व बढ़े युवकों की पसंद व शौक शहर से अलग है । शिक्षा के महत्व को नकारना, बाप की सम्पत्ति तथा उसकी कमाई पर जवानी के दिन गुजारना इस परिवेश के युवकों का अधिकार है । कल्लू केशव, सुरेश, शिवमंगल तथा कल्लन ग्रामीण परिवेश की देन हैं । इनके लिए तितर लड़ाना, अखाडेबाजी करना, युवतियों को फंसाना और गैंग बनाना युवा होने की पहचान है । शिक्षा और शिक्षक दोनों से ही इनका नाता दूर का है । प्रेम का अर्थ है कामवासना तथा प्रेम करने का अर्थ लडकी फंसाना है । ग्रामीण परिवेश में लड़कियाँ जवान होने से पहले ही या तो ब्याह दी जाती है या गांव में फिर रहे इन युवकों की काम-वासना की शिकार होती है । "अलग-अलग वैतरणी" में युवक बड़ों के साथ गंदे मजाक करते हैं । मान-सम्मान तथा अनुशासन ग्रामीण युवकों के लिए महत्वहीन है ।"यदि इस दोपहरी में कोई आदमी करैता के तमाम नवयुवकों से इकट्ठा मिलना चाहता हो तो उसे जरा भी दिक्कत न होगी। बस दो तीन अड्डा हैं । बारी-बारी से पहुंच जाइए तीनों जगहों पर । कहीं तेल लगे चीकट ताश के पत्तों पर मनसूबों के महल बन रहे होंगे । कहीं चैती की फसल के दिनों में मां-बाप की नजर बचाकर बेचे हुए अनाज के पैसों को जुए के खेल से बढाया जा रहा होगा । कहीं कोई व्यक्ति इसके उसके घर के गन्दे और गलीज को चटपटे ढंग से सुना-सुनाकर अपनी कल्पनाशक्ति का विकास कर रहा होगा । कहीं किसी को और कुछ

काम नहीं मिला तो कागज या तिनके को सलाई बनाकर किसी खुराटे भरते प्रौढ या वृद्ध की नाक में घुसाकर उसकी बौखलाहट और नाराजगी से अपना दिल बहलाने का प्रयत्न कर रहा होगा । बहुत से लोग बिना प्यास की प्यास बुझाने पास के किसी कुंए पर भी जा रहे होंगे, क्योंकि सुनसान दोपहरी में पानी भरनेवालियों से मजाक करने का इससे अच्छा समय शायद ही कभी मिले ।"[73] ग्रामीण नवयुवकों में निष्क्रियता विद्यमान है । ग्रामीण युवक शहरी परिवेश में पले युवकों की अपेक्षा युवा प्रवृत्तियों से ज्यादा परिचालित हैं । मौज-मस्ती प्रिय युवकों को अपने ग्राम के आगे जानने की न तो आकांक्षा है और न ही उत्कंठा गांव में ही वे अमेरिका तथा इंग्लैंड की बात कर अपने आप को धन्य समझ लेते हैं ।

ग्रामीण परिवेश से अलग शहरी परिवेश है । ग्रामीण युवक को शहर की कल्पना बड़ा सुख देती है । लेकिन यथार्थ उसे झकझोरते हैं । नौकरी व व्यवसाय की तलाश में युवक शहर की तरफ गमन करते हैं और अनेक कठिनाइयों के बीच उनका युवामन अचानक रातों रात बूढा हो जाता है । जिम्मेदारियों के भार से कंधे टूटने लगते हैं । बंबई जैसे महानगर में युवा आतंकित हो उठता है । "भ्रमभंग" का युवा चंदन बंबई में नौकरी करता है । कालेज और घर की दूरी उसके परिवार के प्रति स्नेह और भावनाओं को सोख लेते हैं । बंबई के जीवन का चित्रण करता हुआ कहता है -- "कितनी लंबी-लंबी दूरियां । एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक । फिर बस । बस से उतरो । पैदल चलो । एक खोली के सामने पहुंच जाओ । यह तुम्हारा घर है । यह तुम्हारी बीवी है । ये तुम्हारे बच्चे हैं । तुम थके हुए हो । बीवी अपना मन नहीं खोल सकती । बच्चे तुम्हें पहचानते भर हैं । क्योंकि रोज रात को इस घर में आते हो तुम । उनकी मां से बातें

करते हो । तुम्हारे बच्चे समझ जाते हैं कि तुम्हीं उनके पिता हो । अन्यथा भावात्मक स्तर पर एक दूरी । ..... एक बेगानापन । घर से आफिस आफिस से घर ।"[74] शहरों की भागती-दौड़ती हुई जिन्दगी ने व्यक्ति को मानव नहीं रहने दिया है । पारिवारिक स्नेह से वंचित मानव उद्योगों का एक पुरजा बन कर रह गया है । बेटा नहीं जानता कि पिता कब आता है और न ही पिता के पास जीविकोपार्जन करने के बीच इतना समय है कि वह अपने बच्चों के बारे में सोचे । दिनों-दिन बढ़ती हुई महंगाई व जीवन की आवश्यकताओं के बीच तालमेल बिठाने में युवा जवानी में ही बूढ़ा हो जाता है । चंदन इस बात को अहसास करता है । लेकिन अपने बीतने को टोक नहीं सकता ।"कितनी भीड़ है । लंबी-लंबी कतारें । यहां जिन्दगी का एक अच्छा खासा भाग क्यू में बीत जाता है और क्यू की तरह जिन्दगी भी बीत जाती है । धीरे-धीरे । अपना बीतना महसूस तक होता है लेकिन बीतने को रोका नहीं जा सकता । आदमी रिश्ता है । क्षणों-पलों की तरह । धीरे-धीरे बिना आहट किये हुए ।"[75]

"बेघर", "बीमार शहर" तथा "मुरदाघर" में बंबई जैसे महानगर के परिवेश में ही परमजीत, शेखर, शोभना, मंजरी तथा अंधेरी दुनिया के लोग जीते हैं । उनका जीना बस जीवित रहना है । इसके आगे पीछे न तो कुछ संजो के रखने के लिए है और न कुछ करने के लिए । "बंबई किसी का शहर नहीं है, यहां रहकर भी आदमी यहां का नहीं हो पाता ।"[76] बंबई के बारे में शेखर कहता है कि -- "बंबई में यह भय व्यर्थ है, दूसरे शहरों में और इस शहर में यही तो अन्तर है । यहां आदमी सबके बीच रहकर भी सबसे कटा होता है । उसकी अपनी निजी सत्ता है । एक व्यक्ति का मूल्य पहचानना कठिन होता है,

व्यक्तियों के मूल्यों को पहचान आसान है । यहां कोई किसी से जुड़ा हुआ नहीं है । किसे पता है कल क्या हो .....अकेला आदमी ही तो सब कुछ होता है । दुनिया में जो कुछ विकास हुआ है, एक-एक अकेले आदमी की ही मानसिक सृष्टि है ।"[77] शेखर की यह मानसिकता महानगरीय परिवेश की देन है वह कुंवारा है लेकिन उसका संबंध अनेक लड़कियों से है और इसे वह गलत नहीं मानता । मिस गोरा की तीन लडकियां बिना शादी किए ही अमीर लड़के के साथ रहती है उनके लिए जीवन मूल्य का अर्थ मात्र ऐश की जिन्दगी जीना है । शहरी परिवेश में व्यक्ति अच्छे और बुरे की पहचान खो देता है । "बीमार शहर" का प्रत्येक व्यक्ति नैतिक मान्यताओं को तोड़ता है और स्वयं की सुविधाभोगी नैतिक मूल्यों का गठन करता है । उन्हें समाज, परिवार तथा संबंधों का दबाव नहीं झेलना पड़ता है । ग्रामीण परिवेश में पला युवा परमजीत जब बंबई जाता है तो उसे अपनी स्थिति मामूली जान पड़ती है । गांव में जो चीजें उसके लिए अवैध थी वे ही शहर में उसे सुलभ लगने लगती हैं । "दिन में बंबई के पटरियों पर जापानी अमेरिकी और जर्मन चीजें बिकने के लिए पड़ी रहती हैं, रात में औरतें । वहां भूख के लिए शादी नहीं करनी पड़ती, चार आने में उसल-पाव और चार रुपये में औरत मिल जाती है ।"[79] महानगरों की यह विशेषता रही है कि रोशनी की दुनिया के समानान्तर एक अन्धेरी दुनिया भी बसी होती है । रोशनी की दुनिया में जितनी तेजी, प्रतियोगिता होती है इस दुनिया में इतनी ही जड़ता होती है । इस दुनिया के चुंबक मानवीय संवेदनाओं से रहित है । "मुरदा घर" में एक ऐसी ही दुनियां है जिसमें युवकों का काम होटल का कचरा खाना और ताश खेलना है । इनकी सुबह रात में होती है जब अपराध जगत् में हलचल पैदा होती है । "दुखता है एक जख्म और रिसता जाता है । फिर कट गया कोई रेल की पटरियों पर । आदमी या जानवर कोई फर्क नहीं ।

मंडरा रहे हैं कौवे कुत्ते । गटर के पास एक पागल औरत और एक पागल दुनियाँ ।"[79]

"गली आगे मुड़ती है" तथा "अपना मोर्चा" का परिवेश शहरी कस्बाई है । काशीनगर की संस्कृति ग्रामीण है । लेकिन ऊपरी ताम-झाम शहरी है । इसीलिए युवकों में ग्रामीण और शहरी परिवेशों के बीच की मानसिकता दिखाई देती है । बेरोजगारी से पीड़ित युवक शिक्षा व्यवस्था से नाराज हैं, भाषा के खिलाफ आन्दोलन करते हैं, पुलिस द्वारा प्रताड़ित होते हैं और समाज द्वारा लांछित हैं । परिवार से बहिष्कृत ये युवक आपस में दोस्त-मित्रों के साथ बैठकर अपना दुख-दर्द बांटते हैं । लड़कियों पर छिंटाकशी करते. है ।

आज की व्यवस्था ने आदमी को खत्म करके उसकी जगह भीड़ को जन्म दिया है । जहां भी जाइए भीड़ ही मिलती है । यदि युवा भीड़ के साथ चलना पसंद करता है तो वह कुछ दूर आगे पहुंच जाता है और नहीं तो भीड़ उसे वहीं छोड़कर आगे निकल जाती है । शहरों में युवक और युवतियां बहुत खुलकर रहती है । कार्यालयों व कारखानों में साथ-साथ काम करती है । ऐसे में अनजानी युवती की टकराहट युवक में थोड़ी सनसनी पैदा करती है । वह कम उम्र में ही यौन संबंधों का सुख कल्पना के माध्यम से प्राप्त करता है । शहरी परिवेश की सबसे बड़ी देन, फैशन है । नित्य नये फैशन से सजे युवक व युवतियां अपने को अत्यधिक आधुनिक कहलाने में गौरव महसूस करते हैं । एक दूसरे के करीब आते हैं, पाश्चात्य संस्कृतियों का अंधानुकरण करते हैं । परिणाम यह होता है कि आधुनिक दिखनेवाले ये युवक मन से पारम्परिक होने के कारण, किसी भी मर्यादा को निभा नहीं पाते और तत्पश्चात् वैयक्तिकता के आधार पर नैतिक मूल्यों का नयी व्याख्या करते हैं ।

"बीमार शहर" के पात्र इसके उदाहरण हैं । शहरी परिवेश की ही देन अकेला और अजनबीपन है । फैशनपरस्त माता-पिता व जीविकोपार्जन में व्यस्त मध्य व निम्न वर्गीय माता-पिता अपनी संतान की परवरिश सही ढंग से नहीं कर पाते । फलत: बच्चों में अकेलापन भर जाता है और आगे चलकर युवा कुण्ठित व पलायनवादी हो जाते हैं । मानस का सही विकास नहीं होने के कारण व हीन भावना से ग्रस्त हो जाते हैं । "सीमाएं टूटती हैं" की चांद और "रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका अपने अकेलेपन के कारण ही परिवेश से कट जाती है । "तीसरा आदमी" में दाम्पत्य जीवन के बीच तीसरे का उदय शहरों में मकान की समस्या और वेतनभोगी कर्मचारी की विवशता है । "मन में कहीं यह बात भी टीसती रहती थी कि दिल्ली आकर मैंने अपनी खुदी को खो दिया है ।"[80] वह दिल्ली आकर और गरीब हो जाता है । खुद को खोया हुआ महसूस करता है । इलाहाबाद में तो फिर भी कुछ होने का एहसास होता था । लगता था कि कुछ लोग उसे जानते हैं और उसके काम को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं । उसे अपने पर एक क्षण के लिए गर्व होता था । परन्तु दिल्ली में उसके भीतर की इन्सानियत खंडित होती है और परिवार को वह बेसहारा छोड़कर वापस घर लौट जाता है । शहरी परिवेश उसे रास नहीं आता है । शहरी परिवेश में पैसा एक अहम चीज है जिसके पास पैसा नहीं है । उसे शहर में रहने का कोई हक नहीं है । यहां हर चीज पैसे पर बिकती है । प्रतियोगिता के इस परिवेश में युवक पैसे के लिए पथभ्रष्ट व अपराधी हो जाते हैं । "गली आगे मुड़ती है" का शिवमंगल जेब कतरा बन जाता है । आर्थिक परेशानी परिवार की रागात्मक भावना को सोख लेती है । युवक में असुरक्षा की भावना घर कर लेती है । सहायता तथा मदद के हाथ नहीं उठते हैं ।

4. राजनीतिक परिवेश :

सामाजिक परिवेश के साथ-साथ राजनैतिक परिवेश ने आजके जीवन संदर्भों को सर्वाधिक रूप से अपने प्रभाव से रंगा है । इसलिए आजका व्यक्ति समाज से अधिक राजनीति में रूचि लेता देखा गया है । वर्तमान राजनैतिक परिवेश को देखकर यह लगता है कि नैतिकता का युग अब समाप्त हो गया है । इसके स्थान पर अवसरवादिता, स्वार्थपरता, धनलोलुपता, पदलोलुपता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता को प्रश्रय मिला है । आज का युग राजनीति प्रधान युग है, डेमोक्रेसी के स्थान पर माबोक्रेसी का युग है । इस परिवेश में पले हुए युवकों में दो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है । पहली प्रवृत्ति के युवक राजनीति की उठा-पटक से नफरत करते हैं । राजनीतिज्ञों वे नेताओं के प्रति मन में आक्रोश है । व्यवस्था के दलालोंसे वे जीत नहीं सकते । परन्तु आक्रोश, घृणा, टीका-टिप्पणी करने से नहीं हिचकते । मौजूदा व्यवस्था उनके लिए लूट-खसोट करने के सिवा कुछ नहीं करती है । ये युवक अपने आक्रोश को अभिव्यक्ति गाली-गलौज के माध्यम से करते हैं । दूसरी प्रवृत्ति उन युवकों में पायी जाती है जो समय तथा अवसर की माँग के साथ चलते हैं । उन्हें जब जहाँ अवसर मिलता है उसका फायदा उठाते हैं । वास्तव में ये युवक भी सत्ता व राजनीति के खिलाफ है । लेकिन जबसे भारतीय राजनीतिक पार्टियों में युवा शाखा बनने लगे हैं । ये युवक अपने आदर्शों व नैतिकता को अपने से परे धकेले राजनीति की दुनियाँ में उतर गये हैं । स्वार्थी नेताओं की लीक पर चल पडे हैं । राजनीतिक हथकंडों को अपनाने लगे हैं । ये दोनों प्रवृत्ति से अलग ऐसे भी युवक हैं जो राजनीति के दाँव-पेंच को समझते हैं । लेकिन कुछ न कर पाने की अवस्था में राजनीतिक गतिविधियों से दूर हट जाते हैं । अपना काम करना ही उनका लक्ष्य होता है ।

आठवें दशक के उपन्यासों में इन तीनों की प्रवृत्तियों के युवक हैं । मानसिक स्तर पर सभी वर्तमान राजनीति के विकृत रूप से नफरत करते हैं लेकिन व्यवहार में अलग-अलग है । "महाभोज" में बिंदा और बिसू में राजनीतिक चेतना उग्र है । ये दोनों ही युवक राजनीति तथा मुख्य मंत्री दा साहब की क्रिया-कलापों का पर्दाफाश करना चाहते हैं । लेकिन राजनीतिज्ञ दाँव-पेंच उन्हें समय से पहले ही दबोच लेते हैं । बिसू गाँव में आगजनी कांड से बहुत ही आक्रोशी हो गया है वह निम्न वर्ग का पढ़ा-लिखा युवक है । वह आगजनी कांड का सबूत इकट्ठा करके ऐसे सत्ताधिकारी को देना चाहता है जो जोरावर जैसे गुंडा को पकड़ सके, सजा दे सके । वह एक संवेदनशील व्यक्ति है । उसके व्यक्तित्व के बारे में महेश जो एक जातिवाद पर रिसर्च करने गाँव आया हुआ है, पुलिस अफसर सक्सेना ने कहा है -- "वह बहुत सेन्सिटिव था ..... एक्स्ट्रा सेन्सिटिव । ..... कोई विषय तो होता नहीं था उसके बात-चीत का । असल में वह बहुत परेशान रहता था ..... पैसे तो वह पूरे सेट-अप को लेकर ही परेशान रहता था, पर पिछले महीने आगजनी की जो घटना घटी, उसने तो उसे बिलकुल ही बौखला दिया । ..... बस, उसी को लेकर वह तिलमिलाता रहता था । उसका कहना था -- यह थोड़े से आदमियों के मरने-भर की ही बात नहीं है, महेश बाबू ... समझ लीजिए कि पूरी की पूरी बस्ती का हौसला ही मर गया । ..... अब बहुत दिनों तक ये लोग अपने हक के लिए लड़ने का हौसला नहीं जुटा पायेंगे । ..... वह नक्सलियों की तो आलोचना करता था -- उनके काम करने के तरीके को वह गलत मानता था ।"81 बिसू की यह चेतना उसके सोचने व राजनीति को समझने की समझ का परिणाम है । राजनीति उसे मृत्युदण्ड देती है । मृत्यु के पश्चात भी बिसू की चेतना मरती नहीं बल्कि दोस्त बिंदा के माध्यम से और आक्रोश होकर उभरती है । बिंदा पुलिस अफसर सक्सेना से स्पष्ट शब्दों में कहता है कि -- "तहकीकात

क्यों कहते हैं, कहिए बेवकूफ बना रहे हैं सबको । ..... याचना भरे स्वर में उसने कहा "क्यों झूठमूठ गांववालों से मजाक कर रहे हैं ? दा साहब से लेकर आज तक की शतरंज में आज बिसू की मौत का मोहरा फिर बैठ रहा है, इसीलिए जोर-शोर से तहकीकात हो रही है ..... क्या हो गया है आप सब लोगों को ..... कोई ईमान धरम नहीं रह गया है किसी का भी ..... जानत है सब पर ।"[82] बिसू और वृंदा की यह तीखी जुबान चिन्तन राजनीतिज्ञदा साहेब को सहन नहीं होती । इसीलिए उन्हें सजाये और मिलती है । "बिंदा की आंखों में फिर कुछ दहकने लगा और कनपटी की नसें फड़कने लगी, क्योंकि वह जिंदा था, जिंदा रहने का मतलब समझते हैं न आप ? लोग भूल गये हैं जिंदा रहने का मतलब और जो जिंदा है वे अब जी नहीं सकते अपने इस देश में । मार दिये जाते हैं, कुत्ते की मौत जैसे बिसू मार दिया गया ।"[83] राजनीति के इस परिवेश में भावना व सच्चाई के साथ जीवित रहना एक प्रश्न बन गया है । इसीलिए महेश कहता है "बस समझ लीजिए सर कि हम सब लोगों के जिंदा रहने पर एक बड़ा-सा प्रश्न चिह्न लगाकर वह मर गया ।"[84] इस तरह के राजनीतिक परिवेश युवा मानस पर इस तरह हावी हो गया है कि वह अपना आक्रोश दिखाने से पहले कई बार सोचता है । अपनी आवश्यकता और शक्ति को पहचानना चाहता है ।"महाभोज" का महेश, "सीमाएं टूटती हैं" का मुकर्जी उसी तरह के युवा पात्र है । परिस्थितियों को समझते हैं लेकिन उसके खिलाफ आवाज नहीं करते ।

"अपना मोर्चा" में छात्र राजनीतिक चेतना से परिचालित है उसकी शक्ति का नेता दुरूपयोग करते हैं । वे आपस में एक बैठक कर भाषा-विधेयक पर युवकों को भड़काते हैं और उनसे भाषा के खिलाफ आन्दोलन करवाते हैं जिसमें हजारों युवकों की जानें जाती हैं । "हफ्ते

भर से नेताओं की बैठकें हो रही हैं । नेताओं के एक गुट की राय है कि कुछ शुरू किया जाये और नहीं तो संस्था में फैले भ्रष्टाचार को ही लेकर शुरू किया जाना चाहिए । .... और ऐसे सवालों के लिए उन्हें बहुत नहीं भटकना पड़ता है । लोक सभा के आगामी अधिवेशन में भाषा विधेयक आनेवाला है । भाषा अंग्रेजी भाषा । किसी भी मुल्क की राजकाज की भाषा हमेशा शासक वर्ग की भाषा रहती आयी है और यह अंग्रेजी -- जब अंग्रेजी साम्राज्य अपने मुल्क से खत्म हो चुका है तो फिर उसकी भाषा क्यों ? ......जनतंत्र का इससे बढ़कर और क्या मजाक हो सकता है ? .... इसके खिलाफ जेहाद छेड़ना ही होगा । आन्दोलन । हां, भाषा के खिलाफ आन्दोलन ।"[85] नेता युवा शक्ति का भरपूर उपयोग करते हैं और भाषा के खिलाफ आन्दोलन शुरू हो जाता है । स्वार्थी राजनीतियों को लड़कों से कोई मतलब नहीं है वे इस युवाशक्ति को अपनी लड़ाई में हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं । आन्दोलन असफल होता है और यह असफलता युवा की अपनी असफलता बन जाती है । युवा वर्ग में हताशा व कुण्ठा छा जाती है । इस तरह एक नये आन्दोलन की शुरुआत होती है जिसकी बागडोर राजनेता के हाथ में नहीं छात्र संघ के युवकों के हाथ में है ।

"अलग-अलग वैतरणी" में जगेसर ऐसे युवक का प्रतिनिधित्व करता है जो अवसरवादी व समय की मांग के साथ चलते हैं । उन्हें आदर्श व नैतिकता से कोई मतलब नहीं है । जगेसर पुलिस है । लेकिन उसकी पहुंच बड़ी है । वह बड़े-बड़े काम अपनी कला कौशल से करा लेता है । "अब साला नया राज है कि कुछ न करो तो बद्दू बनो, कुछ करो तो बुद्धु बनो । ..... अरे सालो, इसी टोपी का असर है कि थाना, पुलिस, नेता, अफसर सभी को समझा-बुझाकर काम करा लेता हूं । वरना कहीं न तो स्कूल की इमारत पर छत पड़ती न चमारों के लिए कुंआं बनता,

न गांव की गलियों में नवदान बनते । किसका-किसका काम नहीं सरकाया । किसी गवाही न की । ····· खरच-वरच के लिए जो बीस-पचीस लिया, उसका खोज सभी साले करते हैं ।"[86] जगेसर राजनीति के दांव-पेंव को खूब समझता है । वह गांव के छोटे-मोटे झगडे को राजनीति रंग देकर चंदा इकट्ठा करना चाहता है । "तुम देहाती लोग निरे चोंचू होते हो । किसी ओहदेदार को पब्लिक क्या प्रेम से पूजती है ? अरे चाहते हो कि कोई पूछे, कुर्सी जगे, तो तिकडम करो । अब एक आदमी को एक से लड़ाने से कुछ नहीं होता । ऐसी जुगति बैठाओं कि गोल से गोल लड़े । मार-पोट हो । चन्दा-बेहरी लगे ।"[87]

आज युवा वर्ग में सभी राजनीतिक पार्टियों के प्रति विश्वास टूट चुका है । "राजनीति में आज ज्यादा लोग ऐसे हैं जिनका कैरियर देश की खुशहाली पर नहीं, दंगे-फसाद और और भाषा-धर्म-जाति के नाम ~~की~~ फूट पर टिका है । ऐसे लोग तब तक राजनीति से हटाये नहीं जा सकते जब तक हम धर्म और भाईचारे के झूठे आडम्बरों के बजाय गरीबी और अज्ञानता के खिलाफ संघर्ष को राष्ट्रीयता एकता का आधार न बना लें ।"[88]

"भ्रमभंग" का नायक चन्दन, "अलग-अलग वैतरणी" का विपिन "काली आंधी" में मालती का पति ऐसे युवा हैं जो राजनीति के दाव को समझते हैं लेकिन व्यवहार में अभिव्यक्त नहीं करते है । "तुम्हारी यह राजनीति बड़ी घटिया चीज है । ······ तुम लोगों ने इसे निहायत बेहूदा बना दिया है । तुम लोग ~~चीजें~~ सिर्फ चीजों को बखूबी इस्तेमाल करना जानते हो । बाढ आयी तो उसे इस्तेमाल करो, सूखा पड़ा तो उसे इस्तेमाल करो ····· तुम लोगों ने आदमी के

आसुओं और जजबातों तक को नहीं छोड़ा है ।"[89] गांवों के भ्रष्ट अनैतिक राजनीतिक परिवेश से अपनो को मुक्त करने के लिए "अलग-अलग वैतरणी" का विपिन "राग दरबारी" का रंगनाथ जैसे युवक शहर को ओर पलायन करते हैं । गांव की प्रतिक्रियाशील शक्तियों का सामना वे नहीं कर सकते ।

5. सांस्कृतिक परिवेश :

नैतिकता के सांस्कृतिक प्रतिमान सदैव जन जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित होते हैं । नवीन आस्थाओं और नये विश्वासों से उद्भूत सांस्कृतिक नैतिकता धर्म के अन्धे रूप को नकारते हुए मानव धर्म से प्रेरित रहती है । इस सांस्कृतिक मूल्य विकास को लक्ष्य करते हुए नेमिचंद जैन ने कहा है "ऐसा कोई परिवर्तन आमूल नहीं होता और पिछले युग के सांस्कृतिक उपादान पूर्ण तथा विलुप्त या परिवर्तित नहीं हो जाते । एक प्रकार की प्रवाहमानता के कारण पिछले युग से संपूर्ण संबंध विच्छेद नहीं होता । इतना अवश्य अनुभव होने लगता है कि कुछ मानमूल्य घिसकर पुराने पड़ गये हैं और उनका स्थान किन्हीं अपरिचित नवीन प्रेरणाओं ने लिया है ।"[90]

वर्तमान अवस्था में जिस गति से ~~मेरे मन में के नि~~भौतिक जगत में परिवर्तन परिलक्षित हुआ है उस गति से सांस्कृतिक जगत् में बदलाव नहीं आया है । बाह्य और आन्तरिक संघर्षों के विभिन्न स्तरों के परिणाम स्वरूप विगत डेढ दो दशकों से संस्कृति में गत्यावरोध की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । विज्ञान के इस युग में परम्पराओं पर आधारित हमारी संस्कृति में असंतुलन उत्पन्न हो गया है । व्यक्ति को लक्ष्य और समाज को निमित्त माननेवाली व्यक्तिवादी विचारधारा ने व्यक्ति में पहली प्रतिक्रिया मूल्यहीनता से ही प्रारंभ की है ।

ये समाज तथा जीवनमूल्यों की असमर्थता, असहायता एवं निरीहता सिद्ध करते हैं ।

आज के युग में संस्कृति का आधार व्यक्तिवादिता पर आधारित है । अर्थ की बढ़ती महत्ता रागात्मक संबंधों में दरार पैदा करती है । परिणाम यह होता है कि सब कुछ अपना होते हुए भी पराया हो जाता है । प्रकृति भी उसे अपना नहीं पाती है "भूमभंग" का चंदन यही बात महसूस करता है । " प्रकृति यहाँ सुख नहीं देती ? कहाँ पर सुन्दरी नहीं है ? कहाँ वरदानमयी नहीं है ? एक अन्त से दूसरे अन्त तक । सौन्दर्य का अटूट सिलसिला, आदमी इस सिलसिले से क्यों छिटक गया है ..... ? प्रकृति से दूर होकर उसे मिला क्या है ? स्वार्थ । लिप्सा । टेन्शन और अलगाव । आदमी के आदमीपन को क्या हो गया है ? अपनापन कहाँ गया ?"[91] बढ़ती हुई आवश्यकता और धन की महत्ता ने रिश्ते को धन से जोड़ा है । आज के युग में व्यक्ति अपनी योग्यता से नहीं बाहरी ताम-झाम से पहचाना जाता है । चन्दन अपना पेट काटकर अपने लिए कोट पैंट बनवाता है क्योंकि उसके व्यवसाय के लिए यह आडम्बर आवश्यक है ।

"मैं आजाद देश का अध्यापक हूँ ..... सरकारी कालेज का अध्यापक। मेरी असलियत यही है । बाकी सब पाखण्ड है । ये कोट ये पेण्ट, ये टाई । मैंने अपना पेट काटकर इनको जोड़ा है । इनको खरीदने के लिए मुझको भूखा रहना पड़ा है । यदि मेरा वश चलता तो पेट भर खाता और क्लास में पढ़ाने के लिए नंगा आता । लेकिन नहीं अध्यापक सभ्य होना चाहिए ।"[92]

भारतीय संस्कृति का गौरव बड़ों का आदर करना, क्षमा करना, आपस में मैत्री भावना का होना तथा मदद करने में है । परंतु

समय और परिवेश ने इस भावनाओं को कुचल दिया है । बड़े अब आदर के पात्र नहीं रहे हैं । क्षमा करना मूर्खता लगती है । झगडे फसाद जीवन मूल्य बन गये हैं । "अलग-अलग वैतरणी", "लाल-पीली जमीन", "सीमाएं टूटती हैं", "एकोगी नहीं राधिका", "अब मैं नाचौं बहुत गोपाल" आदि में यही दिखाई देता है । जगेसर, कल्लन, चांद, राधिका, बसंत सांस्कृतिक मर्यादाओं को रौंदते हैं ।

"अपना मोर्चा" में युवा संस्कृति स्पष्ट रूप से सामने आती है । खानचंद समझाता है । "तुम सड़क पर मत देखो । वह तुम्हारी जगह नहीं है । वह लड़की, जिसके साथ छेडछाड़ हो रही है -- तुम्हारी बहन नहीं है, बीबी नहीं है और फिर ये हरकतें क्यों हो रही है ? क्यों ? मिस्टर यह न भूलों कि ओठों की लिपस्टिक, गालों का रूज, माथे की बिन्दी, रबर की चोलियां, नायलन के बाल-- ये हमारे सामान हैं, हमारी साजिशें हैं, हमारे दिये हुए फैशन हैं और अगर ये नौजवानदिलों में तुफान पैदा करते हैं तो यह हमारे लिए, हमारी दूकान के लिए खुशी की बात है । उनके गुस्से को वहीं अटके रहने दो । अगर वे ब्लाउज और चोलियां फाडते हैं तो तुम्हारी क्या फटती है ? याद रखो कि लड़का हो या लडकी दोनों ही तुम्हारी कैश-बुक के पन्ने हैं । तुम्हारा काम सिर्फ मुस्कराना है ।"[93] खानचंद एक बहुत ही होशियार विक्रेता है उसे समाज व राजनीति से महत्व नहीं है । युवकों का यह व्यवहार समाज व फैशन के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है । लेकिन समाज उसका गलत अर्थ लेता है । पारम्परिक मान्यताओं और मूल्यों की बुजुर्गों द्वारा अवसरवादी व्याख्या ने युवामानस में द्वन्द्व पैदा कर दिया है । "तीसरा आदमी" में नरेश पारिवारिक लज्जा व संकोच के कारण पत्नी से खुलकर नहीं मिल पाता और दिल्ली जैसे शहर में आर्थिक

संकट ने उसको दाम्पत्य सुख को सोख लेता है । "मैं अपनी बीबी के पास ही बना रहूं । मन में भावनाएं तो बहुत उमड रही थी, पर अजीब सा लिहाज खाए जा रहा था । हमारे घर की स्थिति ही कुछ ऐसी थी ।"[94]

"आम तौर पर लोगों का यह कहना कि नया पीढी फैशन परस्त है । पश्चिम की नकल कर रही है । आधुनिकता मात्र पाश्चात्य की नकल समझी जाती है, यह बात सच नहीं है । बदलती परिस्थितियों में स्वदेशी की परिभाषा बदल चुकी है । डिस्को डांस, जीन्स, टाइट ड्रेस, थोडी सी सेक्स की आजादी ये सब आज एक देश या एक संस्कृति के प्रतीक नहीं है । ये विश्वलहर का प्रभाव है । हिन्दुस्तान का युवा वर्ग इन सबको अपनाते हुए अपने मूल भारतीयमन को कहीं नहीं छोड़ रहा है ।"[95] "आज के युवक की यही अभिलाषा है कि भारतमाता, हमें शिव का मस्तिष्क दो, कृष्ण का हृदय दो तथा राम का कर्म और वचन दो, हमें असीम मस्तिष्क और उन्मुक्त हृदय के साथ-साथ जीवन की मर्यादा से रचो ।"[96]

6. शैक्षणिक परिवेश :

6.1 राजनीति का कुप्रभाव :

राजनीति का क्षेत्र आज इतना व्यापक हो गया है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है । शिक्षा का क्षेत्र जहां बच्चे जीवन पद्धति सीखते हैं राजनीति के प्रभाव से ग्रस्त है । कालेजों और विश्व-विद्यालयों में ही छात्र राजनीति के विविध रंग से परिचित हो जाते हैं । राजनीति का रंग छात्र प्रतिनिधियों के चुनाव के समय और गाढा हो जाता है। शिक्षा संस्था शिक्षा ग्रहण करने के स्थान पर राजनीति के अड्डे जान पडते हैं । स्वतंत्रता के बाद शिक्षा संस्था में प्रतिनिधियों

का चुनाव प्रारंभ हुआ और यही से शिक्षा में राजनीति का प्रवेश हुआ । चुने गये छात्र संघ के नेता छात्र कम राजनीतिक ज्यादा दिखाई देता है । उनको अध्यापक, प्रबंधक तथा साथीगण इज्जत की नजर से देखते हैं । यही कारण की छात्र संघ के चुनावों में मार-पीट आम बात बन गयी है । छात्रों के आपसी मतभेद का भरपूर फायदा राजनीतिक उठाते हैं । दूसरी तरफ स्वार्थी प्रवृत्तियों ने मानव को इतना संकुचित कर दिया है कि वह किसी की तरक्की, प्रशंसा सहन नहीं कर सकता वह अपने मित्रों के बीच ही राजनीति करने को बाध्य है । शिक्षा संस्थाओं में प्राध्यापक आपस में राजनीति करते हैं, तो छात्र आपस में और दोनों का शोषण राजनीतिक पार्टियाँ करती हैं ।

"अपना मोर्चा" में शिक्षा पर राजनीति के कुप्रभाव को बहुत ही विस्तार से उभारा गया है । धाँधलियाँ विश्वविद्यालय का चरित्र हो गया है । जवान विश्वविद्यालयी परिवेश पर व्यंग्य करता है कि -- "हे बाप जान । अगर तुम्हारा लड़का आवारा है, लफंगा है, कामचोर है, पूरे गाँव-घर का सिर दर्द है, सब मिलाकर जहन्नुम है और तुम उससे आजिज हो गये हो तो एक काम करो -- उसे इसमें दाखिल कर दो । ..... हे बबुआ, अगर तुम निरे आदमी हो, बेईमानी, घूसखोरी धूर्तता, रौब, फैशन, चार सौ बीसी और चूतिया बनाने के हथकण्डों को नहीं जानते तो इस आलीशान कारखाने में आओ और अपनी किस्मत आजमाओ ।"[97] जवान के इस व्यंग का अर्थ यही निकलता है कि विश्वविद्यालय अब शिक्षा ग्रहण करने की संस्था नहीं है बल्कि गलत राह पर जाने की प्रेरणा देता है । शिक्षा संस्थाओं में नेता वर्ग सक्रिय रूप से भाग लेते हैं । उन्हें शिक्षा या शिक्षा संस्थाओं में नेता वर्ग सक्रिय रूप से भाग लेते हैं । उन्हें शिक्षा संस्थाओं

शिक्षा या शिक्षा संस्थाओं से मतलब नहीं है । ये नेता छूट व सुविधा के लिए आन्दोलन करते हैं । "छात्रों का नेतृत्व इन्हीं के हाथ में रहा है । और ये छूट या सुविधा के लिए आन्दोलन करते आये हैं । अधिकारियों ने कहा कि एम.ए. में चालीस सीटें रहेंगी, नेता कहेगा -- नहीं साठ सीटें करो । अधिकारियों ने कहा कि प्रवेश के लिए 50% अंक होने चाहिए -- नेता कहेगा नहीं, छत्तीस प्रतिशत करो ।"[98] छूट और सुविधा की यह राजनीति शिक्षा संस्थाओं में अव्यवस्था लाती है । अनुशासन का बंधन ढीला हो जाता है । इस तरह पढ़ाई भी चल रही है, नेतागिरी भी चल रही है और चाय समोसे भी चल रहे हैं । छात्रों पर राजनीति का प्रभाव इस तरह हावी हो जाता है कि विश्वविद्यालय में यूनियन के आ जाने से छात्र, अध्यापक तथा नेता वर्ग कुछ करना चाहते हैं उनमें कुछ कर गुजरने की खलबली है । "क्या साल यूं ही गुजर जायेगा .... वे लोग बताते हैं कि अगर बवाल ही मचाना हो तो सैकड़ों बातें हैं-नियुक्तियों में धांधलियां हो रही हैं -- परीक्षा में बेईमानी हो रही है अधिकारी तानाशाह हो गये हैं । क्लर्कों का मन बढ़ गया है, चपरासी सुन नहीं रहे हैं । अपना संघ बना रहे हैं । ...... लड़के बेचैन हैं और इधर-उधर भटक रहे हैं । उन्हें बार-बार लग रहा है कि आठ साल बाद जब हमारे हाथ यूनियन वापस आयी है तो कुछ हो जाना चाहिए ।"[99] परिणाम यह होता है कि उधर नेता लोग भी कुछ करने की सोचते हैं और छात्र भाषा विधेयक का विरोध करते हुए आन्दोलन शुरू करते हैं । इस आन्दोलन का सारा खर्चा नेता उठाते हैं लेकिन पुलिस आन्दोलन कर्ताओं को अपने मोर्चे पर ले जाकर पिटाई करती है । जिसमें कुछ मरते हैं कितने घायल होते हैं और कुछ गिरफ्तार कर लिए जाते हैं ।

शिक्षा पर राजनीति का यह कुप्रभव "अलग-अलग वैतरणी" "लाल-पीली जमीन" "नर दर नर" "गली आगे मुड़ती है" में मौजूद है । "गली आगे मुड़ती है" में युनिवर्सिटी के चुनावों में बाहरवालों का हाथ ज्यादा है । संयुक्त समाजवादी युवा जन सभा भीतर ही भीतर फट जाती है । युवा संघों की ऐसी स्थिति पर देबू क्रोधित हो कहता है -- "मैं वर्तमान नहीं भविष्य देख रहा हूं । वामपंथी ताकतों की इस कमजोरी का फायदा उठाकर दक्षिण पंथी ताकतें आगे आयेंगी और हम जो कुछ भी नया करना चाहते हैं वह कुछ भी नहीं हो पायेगा ।"[100] कई बिक जाते हैं कोई सुविधा के लिए तो कोई एक प्लेट आम्लेट के लिए । पैसों की जरूरत छात्रों से जन विरोधी कार्य करवाता है ।

6·2 शिक्षा की दिशाहीनता :

स्वतंत्रता के आज 40 वर्ष हो गये परन्तु शिक्षा व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । शिक्षा संस्थाओं के प्रसार के साथ-साथ शिक्षित व्यक्तियों की संख्या बढ़ी है । लेकिन शिक्षा का स्तर पूर्ववत ही रहा है । शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी कागज पर जो कुछ सोच-विचार हुआ या हो रहा है मात्र कागजी ख्याल बनकर रह गये । छात्र और अध्यापक तथा शिक्षा का लक्ष्य अपनी जगह अटल रहा है । शिक्षा आयोग की रिपोर्ट के अनुसार 14 साल तक निशुल्क शिक्षा देने की नीति बनी और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी । लेकिन इसका प्रतिफल संतोषजनक नहीं रहा । वैज्ञानिक शिक्षा, कृषि तथा उद्योग की शिक्षा, सामाजिक एवं राष्ट्रीय सेवा, प्रौढ शिक्षा, पत्राचार पाठ्यक्रम और साक्षरता प्रसार आदि की ओर ध्यान दिया गया, खेल कूद की सुविधाएं शिक्षालयों में अधिकाधिक उपलब्ध कराने

की चेष्टा की गयी और शारीरिक व्यायाम के लिए नियन्त्रित अध्यापकों की नियुक्ति भी अनिवार्य तौर पर हुई परन्तु विज्ञान के विकास के साथ नयी-नयी तकनीकी का विकास हुआ । उद्योगों की स्थापना के साथ तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता पड़ी है । परन्तु हमारी शिक्षा संस्थाओं में ऐसे पाठ्यक्रम रखे गये जिनकी आवश्यकता से कोई संबंध ही नहीं है । छात्र कालेज से शिक्षा ग्रहण कर रोजगार की दुनिया में उतरते हैं तो उन्हें शिक्षा का अर्थ शून्य जान पड़ता है । आज रोटी, कपड़ा, मकान से बहती हुई विश्वविद्यालयी शिक्षा छात्रों में अनुशासनहीनता पैदा करती है ।

शिक्षा की इतनी विस्तृत सुविधाओं के कारण देश में शिक्षित युवकों की संख्या में बाढ आ गयी है । शिक्षा से युवकों की बुद्धि व ज्ञान तो बढ़ा है लेकिन उतनी ही मात्रा में शैक्षणिक परिवेश के कुप्रभाव के कारण उत्तरदायित्वहीनता भी बढी है । मध्यवर्ग के लिए शिक्षा जीविकोपार्जन का आधार है लेकिन हमारी शिक्षा प्रणाली रोजगार देने में असफल रहते हैं । युवकों के लिए शिक्षा बेकार हो गयी है ।

"अपना मोर्चा" में युवकों के लिए शिक्षा का कोई अर्थ नहीं है । ज्वान के शब्दों में "मैं पूछता हूं कि मित्र । आखिर आप क्या पढ रहे हैं ? इस पढने का क्या मतलब ? वे स्याह पड़ जाते हैं । एकदम सन्नाटा । शातिर से शातिर लड़का भी सन्न रह जाता है । कोई तो बताये कि वे क्यों पढ रहे हैं ? यह सवाल अक्सर उन्हें अपने बाजार में ले जाता है जहां उनका ~~स्वच्छ~~ साल भर पहले का हंसमुख, मजाकिया, खूबसूरत और अपना दिल फेंक हरकतों के कारण सरनाम साथी अपने चिथडे चेहरे और बदन के साथ रिक्शे पर सीमेंट का पीपा लादे बस स्टेशन की ओर जा रहा है, अपने गांव में ले जाता है जहां

कलक्टर या कमिश्नर का सपना देखनेवाला युवक बार-बार आवेदन-पत्र देता है और पूरे दिन बैठकर ताश खेलता रहता है । अपने घर में ले जाकर जहां एक लड़का अपने परिवार को धिक्कारों से तंग आकर रेल की पटरिया या नदी का पुल तलाशता है ।"[101] शिक्षा व्यक्ति में अन्य जानकारी देने के साथ अनुशासन पैदा करती है । परन्तु कालेज और विश्वविद्यालयों में अनुशासनहीनता का ही बोलबाला है । छात्र कालेज में पढने नहीं समय काटने आते हैं पिछली बेंच पर बैठकर जासूसी उपन्यास पढते हैं । लडकियों को छेडते हैं। "मैं लडकों को बडे गौर से देखता हूं उससे बातें करता हूं, उन्हें कक्षा में भी देखता हूं और उससे बाहर भी । मैं देखता हूं कि उनमें असंतोष बढ रहा है । बढता जा रहा है । वे दिल से नहीं पढ़ना चाहते । इसके बावजूद उन्हें लगता है कि पढने के सिवा उनके सामने और कोई चारा नहीं है । वे कक्षा में तरह-तरह की हरकतें करते हैं । हमें छेड़ते हैं, पीछे बैठकर कोई जासूसी किताब पढते हैं, लडकियों के प्रसंग पर कान खड़े करते और ठहाके लगाते है । वे कभी-कभी हमें हूट करते हैं और गैलरी में खडे होकर कुत्ते-बिल्लियों की बोलियां बोलते हैं ।"[102]

विद्यालय और विश्वविद्यालय सरस्वती के मंदिर नहीं, अपितु राजनीतिक दांवपेंच के अखाडे बने हुए हैं । छात्रों का आक्रोश व अनुशासनहीनता इसी की चरम परिणति है । विश्वविद्यालयों की हालत अस्तबल जैसी है । बडे-बडे प्रोफेसर मात्र भाडे के टट्टू हैं । स्वतंत्र भारत में शिक्षा के नाम पर अरबों रूपये खर्च किये गये, लेकिन परिणाम एक विराट अपव्यय के अलावा कुछ नहीं है । शिक्षा का न ही कोई समुचित उद्देश्य है न कोई निर्धारित पद्धति या पाठ्यक्रम । जब आवश्यकता तकनीकी ज्ञान की होती है तो शिक्षा संस्थाओं में जीवन दर्शन पढ़ाया जाता है । सरकारी कामकाज अंग्रेजी में होता है तो छात्र

हिंदी के पंडित बन रहे हैं। छात्र शिक्षा के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करते हैं "महाशय, आप बहुत अच्छे हैं लेकिन आप चुप रहिए। आप विद्वान भी होंगे लेकिन बेकार हैं x क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आपको पढ़ाना भी न पढ़े और तनख्वाह भी मिलती रहे? आप यकीन करें, अगर हमारा बस चले तो हम महीने की हर पहली तारीख को आपके मुँह में हजार रुपये की गड्डी ठूँस दिया करें और निवेदन करें कि यदि आपको इसी में मजा मिलता है तो यह लें मगर मेहरबानी करके वह मत पढाइये जो हम नहीं पढना चाहते।"[103] शिक्षा के प्रति युवा की यह विरक्ति समाज में फैले भ्रष्टाचार व उच्च-नीच की सरकारी नीतियों का सार है। उनके मानस पर प्रश्न बनता है कि "हम कुछ छोटी-छोटी बातें जानना चाहते हैं समझना चाहते हैं, मतलब, एक आदमी सारी जिन्दगी जी तोड़ मेहनत करता है फिर भी गरीब ही क्यों रहता है। जब खाने को इतना मौजूद है तो लोग भूखों क्यों मरते हैं? .... इतनी किताबें है तो लोग जाहिल और मुर्ख क्यों हैं? जिसे सुख कहते हैं, वह क्या चीज है? यह कानून, यह संविधान किसने बनाया है?"[104] युवकों के इन प्रश्नों के आगे व्यवस्था खामोश है। युवा प्रश्न करता है कि शिक्षा का क्या अर्थ है?"

"गली आगे मुड़ती है", "लाल पीली जमीन" तथा "अलग-अलग वैतरणी" व "नरक दर नरक" आदि उपन्यासों में छात्र शिक्षा संस्थाओं से कतराते हैं। पाठ्यक्रम की पुस्तकें उन्हें नीरस लगती हैं वे स्कूल, कालेज तथा विश्वविद्यालयों में गुंडा बनने जाते हैं। साथियों पर रोब जमाने जाते हैं। पढाई करने नहीं। "नवभारत टाइम्स" के एक लेख में कहा गया है "मूल प्रश्न है शिक्षक की जवाबदेही और कालेजों में पढ़ाई-लिखाई के लिए सही वातावरण तैयार करना।

कहने की जरूरत नहीं है कि पिछले 30-40 वर्षों में इन दोनों बातों पर बहुत आंच आयी है और देश के 5000 कॉलेज अधिकतर गंदी स्थानीय, राजनीति, कुशासन और कुपोषण के शिकार हुए हैं। विद्यार्थी के रूप में वहां ऐसे लोग भी पढ़ने आ रहे हैं जो विद्यार्थी होने लायक नहीं है।"[105] "दरअसल विश्वविद्यालयीन प्रणाली कच्चे दिमागों में भूसा भरने के कारखाने थे और आज भी वे अपना काम बखूबी निभा रहे हैं।"[106]

6.3 अध्यापक छात्र संबंध :

शैक्षणिक संस्थाओं में अध्यापक और छात्रों का संबंध मधुर अनुशासिक, आदर भाव तथा पिता पुत्र की तरह होना चाहिए। अध्यापक छात्र का मार्गदर्शन करता है यदि वही गलत राह बतायेगा या छात्रों की उपेक्षा करेगा तो शिक्षा का लक्ष्य बदल जायेगा। आज के युग में यही हो रहा है। छात्र और अध्यापक का संबंध कापी किताब का संबंध बनकर रह गया है। "हमारे और आपके संबंध आदमी के नहीं किताब और कापी के हैं। हमारी शख्सियत इससे ज्यादा एक दूसरे के लिए नहीं है। हम दो तीन साल एक दूसरे के साथ रहे हैं। लेकिन हममें से कोई किसी को नहीं पहचानता।"[109] "अपना मोर्चा" में छात्र व अध्यापक के संबंधों को इस कथन से पहचाना जा सकता है -- "मैं उन्हें बताता हूं किताब पढो, वे कहते हैं हम बीस साल से किताब ही तो पढ रहे हैं। मैं कहता हूं, अनुशासन में रहो। वे कहते हैं -- बहुत रह चुके अनुशासन में, मैं कहता हूं -- मुसीबतों से लड़ना सीखो। वे कहते हैं -- हम तो नहीं हमारे बाप-दादे लड़ते-लड़ते दम तोड़ चुके हैं ..... और अव्वल तो इससे अनुशासन भंग होगा। मैं कहता हूं उम्मीद रखो। वे कहते हैं किस बात की उम्मीद ? मैं कहता हूं -- बक-बक मत करो, चुप रहो। वे कहते हैं -- तुम चुप रहो व्यवस्था के दलाल।"[108] अध्यापक

और छात्र ये वार्तालाप उनके आपसी संबंधों की कटुता को उजागर करते हैं। छात्र अध्यापकों को व्यवस्था के दलाल समझते हैं, तो अध्यापक भी छात्रों की परेशानी व उनके आचरण को मनोरंजन का साधन मानते हैं। "भई लड़के बड़े मजेदार होते हैं, उनकी बात छोड़ो। जरा इस कालोनी में कोई बढ़ियासा प्लाट तो पसन्द करो।"[109] अध्यापक आपस में ही ईर्ष्या रखते हैं। "मैंने कुलपति को किताब क्या समर्पित कर दी कि लोगों के कान खड़े हो गये। समझते हैं मैंने प्रोफेसर होने के लिए ऐसा किया है ..... अरे तुम भी करो न समर्पित ..... मैं कोई मना कर रहा हूं।"[110] लड़के आन्दोलन की तैयारी करते हैं, लेकिन अध्यापकों को इससे मतलब नहीं है वे अपनी कक्षा को सुविधाजनक स्थान पर लाने की जोड़-तोड़ कर रहे हैं। समय-सारणी में परिवर्तन किये जाने पर लड़कों से क्लास छूट करवाने की एक दूसरे को धमकी दी जा रही है। आन्दोलन की असफलता पर आपस में गोष्ठी करते हैं। लेकिन अपने स्वार्थी भावनाओं से भरे हुए हैं। "वे देर तक अपनी मूंछें ऐंठते रहे हैं -- तुम उन लड़कों की तरफ से बातें कर रहे हो जो जटिल निकम्मे, निठल्ले और कामचोर हैं, जिनके लिए काम करना मानो सजा है, जिनके लिए लड़कियां ही ओढ़ना-बिछौना है, जो भाषण भी देते हैं या लड़कों पर चलते हैं या जलूस निकालते हैं, तो लड़कियों को दिखाने के लिए ..... मैं लड़कियों को दिखाने के लिए ..... मैं लड़कों के बारे में आम आदमी की ही राय जाहिर कर रहा हूं, लेकिन यह ठीक ही है, धरती पर सबसे अधिक तादाद उन्हीं की ही है।"[111] अध्यापकों और आम आदमी की नजर में छात्र एक से हैं। अध्यापकों को अपने वेतन से मतलब है छात्रों से नहीं। अध्यापकों के इस वक्तव्य से यही स्पष्ट होता है कि अध्यापक कालेज में पढ़ाने नहीं पैसा बनाने आते हैं। छात्रों की हरकतों की जिम्मेदारी उनकी नहीं है उनका विद्यालयों में आना और चले जाना ही काम है। छात्रों की जब विदाई होती है, तो ये स्वार्थी अध्यापक पिकनीक मनाते हैं। नैतिक दृष्टि से अध्यापक व छात्रों के संबंध इतने

बिगर गये हैं कि उनके संबंधों को सुधारना असम्भव सा लगता है । अध्यापकों के आपसी द्वेष के शिकार छात्र होते हैं । "गली आगे मुड़ती है" में छात्र अध्यापकों के द्वेष के शिकार हैं । वे कुछ अध्यापकों की बातों में आकर अच्छे अध्यापकों को भी अपमानित करते हैं । ईर्ष्यालु अध्यापक की चाल में आकर ही छात्र आदर्श अध्यापक सुबोध भट्टाचार्य को उनके द्वारा परीक्षा में दिये गये अंक के बारे में धमकी देने जाते हैं । सुबोध भट्टाचार्य इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि -- "हम अध्यापक ही एक दूसरे से इस कदर डाह रखते हैं कि एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए हर तरह की पेशकश कर सकते हैं ।"[112] अलग-अलग वैतरणी को मुंशी जवाहरलाल छात्रों को प्रोत्साहन देने के बजाय हरिया को बेवजह डांट डपट करता रहता है । छात्रों की सच्ची योग्यता के प्रति उसमें ईर्ष्या है । वह नहीं चाहता कि छात्र पढ़े और उसे पढ़ाना पड़े । नये मास्टर शशिकान्त से उसे इसीलिए जलन है कि वह एक आदर्श शिक्षक है और छात्रों के विकास के लिए सुविधाएं एकत्र करना चाहता है ।

"नरक दर नरक" में जगन शिक्षा पद्धति को बदलना चाहता है लेकिन वह स्वयं ही निकाल दिया जाता । "लाल-पीली जमीन" में अध्यापक तथा छात्र आपस में मारपीट करते हैं । अध्यापक ही छात्रों में गैंग बनाने के लिए प्रोत्साहित करता है । मास्टर कौशिक कहते हैं -- "कोर्स की किताबें ही ऐसी होती हैं कि पढ़ी न जा सके । उन्हें पढ़ने की जरूरत नहीं है तुम ये पढ़ो । बड़ी दिलचस्प है, तमंचे का इस्तेमाल सीखने के लिए कुछ करना होगा ।"[113] वास्तव में मास्टर कौशिक सुरेश को शिवमंगल से लड़ाना चाहता है और इसीलिए वह सुरेश को तमंचा देने का वादा करता है । छात्रों के आपसी संबंध भी कटु हैं । स्वार्थी प्रवृत्तियां इन्हें दोस्त बनने से रोकती हैं । अध्यापक छात्रों को फोड़कर उनकी शक्ति खण्डित करते हैं । वे पूरी कोशिश करते हैं कि छात्रों में आपसी तालमेल न बनने पाये । "गली आगे मुड़ती है" की पूरी राजनीति इसीलिए है ।

बिगर गये हैं कि उनके संबंधों को सुधारना असंभव सा लगता है । अध्यापकों के आपसी द्वेष के शिकार छात्र होते हैं । "गली आगे मुड़ती है" में छात्र अध्यापकों के द्वेष के शिकार हैं । वे कुछ अध्यापकों की बातों में आकर अच्छे अध्यापकों को भी अपमानित करते हैं । ईर्ष्यालु अध्यापक की चाल में आकर ही छात्र आदर्श अध्यापक सुबोध भट्टाचार्य को उनके द्वारा परीक्षा में दिये गये अंक के बारे में धमकी देने जाते हैं । सुबोध भट्टाचार्य इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि -- "हम अध्यापक ही एक दूसरे से इस कदर डाह रखते हैं कि एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए हर तरह की पेशकश कर सकते हैं ।"[112] अलग-अलग वैतरणी का मुंशी जवाहरलाल छात्रों को प्रोत्साहन देने के बजाय हरिया को बेवजह डाँट डपट करता रहता है । छात्रों की सच्ची योग्यता के प्रति उसमें ईर्ष्या है । वह नहीं चाहता कि छात्र पढ़े और उसे पढ़ाना पड़े । नये मास्टर शशिकान्त से उसे इसीलिए जलन है कि वह एक आदर्श शिक्षक है और छात्रों के विकास के लिए सुविधाएं एकत्र करना चाहता है ।

"नरक दर नरक" में जगन शिक्षा पद्धति को बदलना चाहता है लेकिन वह स्वयं ही निकाल दिया जाता । "लाल-पीली जमीन" में अध्यापक तथा छात्र आपस में मारपीट करते हैं । अध्यापक ही छात्रों में गैंग बनाने के लिए प्रोत्साहित करता है । मास्टर कौशिक कहते हैं -- "कोर्स की किताबें ही ऐसी होती हैं कि पढ़ी न जा सके । उन्हें पढ़ने की जरूरत नहीं है तुम ये पढ़ो । बड़ी दिलचस्प है, तमंचे का इस्तेमाल सीखने के लिए कुछ करना होगा ।"[113] वास्तव में मास्टर कौशिक सुरेश को शिवमंगल से लड़ाना चाहता है और इसीलिए वह सुरेश को तमंचा देने का वादा करता है । छात्रों के आपसी संबंध भी कटु हैं । स्वार्थी प्रवृत्तियां इन्हें दोस्त बनने से रोकती हैं । अध्यापक छात्रों को फोड़कर उनकी शक्ति खण्डित करते हैं । वे पूरी कोशिश करते हैं कि छात्रों में आपसी तालमेल न बनने पाये । "गली आगे मुड़ती है" की पूरी राजनीति इसीलिए है ।

ऊपर के इस विवेचन के आधार पर यह पता चलता है कि शिक्षा संस्थाओं में छात्रों को एक गैर शैक्षणिक वातावरण मिलता है । अध्यापक इसी विकृत समाज का एक अंग है वह अपनी ही सामाजिक आर्थिक राजनीतिक संकटों से संघर्ष कर रहा है । उसके सामने भी वही समस्याएं हैं जो अन्य दूसरों के साथ है । ऐसे में वह अपने मानसिक संतुलन को बनाये नहीं रख सकता है और कालेजों में जाकर छात्रों के माध्यम से अपनी कुण्ठाओं व संस्थाओं का हल ढूंढता है । हर स्तर पर उसकी स्वार्थी प्रवृत्तियों को उभारती है । यही कारण है कि ऐसे विकृत और गैर शैक्षणिक वातावरण में छात्रों युवकों में शिक्षा ग्रहण के स्थान पर अनैतिक मूल्य आ जाते हैं । वह कभी हताश होकर कर आत्महत्या करता है तो कभी अध्यापकों की पिटाई करता है और कभी बिना सोचे-समझे सड़कों पर जुलूस निकालता है । परिणाम उसे जन-विरोधी बना देते हैं । एम॰बी॰ए॰ की डिग्रीयां उसे रिक्शा चलवाती है । अपने ही परिवार से काटकर अपनों के खिलाफ आन्दोलन करने के लिए भडकाती है । वह विघटन कारी बन जाता है । वह अध्यापक तथा समाज की नज़र में कामचोर लफंगा है ।

आठवें दशक के उपन्यासों में युवा के परिवेश का उपरोक्त अध्ययन करने से यह पता चलता है कि युवा मानस और परिवेशका तालमेल ठीक नहीं है । परिवेश की विषमता युवा मानस में विकृतियां पैदा करती हैं । अस्तित्व की पहली लडाई युवा के अपने पारिवारिक परिवेश से ही प्रारंभ करनी पडती है । वह जिधर का भी रूख करता है उधर ही विषमता का ही बोल-बाला है । विषमता के इस परिवेश में युवा मानस आक्रोश कुण्ठित तथा विद्रोही बन जाता है । वर्गीय संस्कारों में फंसा युवा वर्ग

मौजूदा व्यवस्था में कहीं फिट नहीं बैठता है । ऊर्जा और शक्ति से भरा युवा मानस अपने आस-पास के परिवेश में ही उलझ कर रह जाता है । भावनाएँ उसके मन में ही रह जाती हैं । जीवन की लड़ाई ही उसे भयावह लगने लगती है ।

.....

तृतीय अध्याय

संदर्भ सूची

1. आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक, पृ. 62
2. परिवेश मन और साहित्य, पृ. 5
3. विद्रोह और साहित्य - नरेन्द्र इस्सर पृ. 16
4. भ्रम भंग - देवेश ठाकुर पृ. 16
5. - वही - पृ. 16
6. अपना मोर्चा - काशीनाथ सिंह, पृ. 10
7. रिहर्सल - हिमांशु श्रीवास्तव पृ. 29
8. - वही - पृ. 44
9. - वही - पृ. 234

9, भ्रमभंग - देवेश ठाकुर पृ. 20

10. - वही - पृ. 126
11. भ्रम भंग - पृ. 126
12. बीमार शहर पृ. 76
13. सीमाएं टूटती हैं पृ. 72
14. अन्तराल - पृ. 73
15. रिहर्सल - पृ. 92
16. रिहर्सल - पृ. 193
17. रिहर्सल - पृ. 192
18. भ्रम भंग - देवेश ठाकुर - पृ. 37
19. - वही - पृ. 27

20• भ्रम भंग - देवेश ठाकुर पृ• 14

21• अपना मोर्चा - काशीनाथ सिंह - पृ• 27

22• भ्रमभंग - देवेश ठाकुर - पृ• 139

23• महाभोज - मन्नू भंडारी पृ• 82

24• रथ से गिरी बांसुरी - पृ• 69

25• अपना मोर्चा - काशीनाथ सिंह - पृ• 38

26• रिहर्सल - हिमांशु श्रीवास्तव - पृ• 187

27• विद्रोह और साहित्य - पृ• 17

28• अपना मोर्चा- काशीनाथ सिंह पृ• 67

29• अपना मार्चा- काशीनाथ सिंह पृ• 9

30• मुरदा घर पृ• 43

31• - वही - पृ• 149

32• - वही - पृ• 185

33• महाभोज - मन्नू भंडारी पृ• 76

34• - वही - पृ• 77

35• - वही - पृ• 139

36• - वही - पृ• 136

37• - वही - पृ• 77

38• - वही - पृ• 259

39• भ्रम भंग - देवेश ठाकुर पृ•

40• - वही - पृ• 77

41•	बेघर	पृ•
42•	अन्तराल	पृ• 48
43•	भ्रमभंग – देवेश ठाकुर	पृ•
44•	अंतराल	पृ• 156
45•	अंतराल	
46•	उसका शहर –	पृ• 68
47•	अन्तराल –	पृ• 198
48•	रूकोगी नहीं राधिका	पृ• 38
49•	बेघर	पृ• 21
50•	भ्रम भंग	पृ• 158
51•	सीमाएं टूटती हैं	पृ• 28
52•	अन्तराल	पृ• 70
51•क	गली आगे मुडती है	पृ• 351
52–क	उसका शहर	पृ• 100
53•	– वही –	पृ• 102
54•	भ्रम भंग	पृ• 83
55•	– वही –	पृ• 83
56•	अन्तराल	पृ• 70
57•	– वही –	पृ• 71
58•	अन्तराल	पृ• 126
59•	बीमार शहर	पृ• 45
60•	– वही –	पृ• 45

61• बीमार शहर पृ• 36

62• तीसरा आदमी - पृ• 49

63• अपना मोर्चा पृ• 70

64• अन्तराल पृ• 176

65• - वही - पृ• 177

66• बीमार शहर पृ• 19

67• भ्रम भंग पृ• 54

68• - वही - पृ• 87

69• रिहर्सल पृ• 40

70• कड़ियां पृ• 20

71• कड़ियां पृ• 146

72• महाभोज पृ• 180

73• अलग-अलग वैतरणी - पृ• 118

74• भ्रम भंग पृ• 27

75• - वही - पृ• 37

76• बीमार शहर पृ• 15

77• - वही - पृ• 9

78• बेघर पृ• 15

79• मुरदा घर पृ• 1

80• तीसरा आदमी पृ•41

81• महाभोज पृ• 105

82• - वही - पृ• 133

83• - वही - पृ• 135

84• महाभोज - पृ• 107

85• अपना मोर्चा पृ• 40

86• अलग अलग वैतरणी - पृ• 306

87• - वही - पृ• 307

88• धर्मयुग, 8 जुलाई, 1984

89• काली आँधी - पृ• 6

90• हिंदी उपन्यास के तीन दशक -
सं० डा० राजेन्द्र अवस्थी - पृ• 14

91• भ्रम भंग - पृ• 55

92• - वही - पृ• 93

93• अपना मोर्चा पृ• 17

94• तीसरा आदमी पृ• 7

95• धर्मयुग - 8 जुलाई, 1984 पृ• 14

96• - वही - पृ• 11

97• अपना मोर्चा पृ• 12

98• - वही - पृ• 36

99• - वही - पृ• 39

100• गली आगे मुड़ती है - पृ• 366

101• अपना मोर्चा पृ• 23

102• - वही - पृ• 22

103• अपना मोर्चा पृ• 20

104• - वही - पृ• 21

105. नवभारत टाइम्स, बंबई । अक्तूबर, 1988 "युवा जगत"

106. महेन्द्र कार्तिकेय - नवभारत टाइम्स, 8 अक्तूबर, 1988

युवा जगत

107. अपना मोर्चा पृ. 23

108. - वही - पृ. 20

109. - वही - पृ. 31

110. - वही - पृ. 32

111. - वही - पृ. 60

112. गली आगे मुड़ती है पृ. 19

113. लाल पीली जमीन - पृ. 110

चौथा अध्याय

युवा व्यक्तित्व और मानस :

व्यक्ति ज्यों-ज्यों प्रौढ होता है उसकी संवेगात्मक स्थिरता, सामाजिक व्यवस्थापन की गहनता, व्यावसायिक व वृत्यात्मक रुचि तथा जीवन आकांक्षाएं बढ़ती जाती हैं। युवा व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सारी बातें अपने आप समझ लेगा और उसे अपने अधिकार और कर्तव्य का बोध परिस्थितियों के अनुसार स्वत: हो जाया करेगा। तब वह संवेगात्मक आवेग में आकर मनमानी न कर बैठेगा और मानसिक उलझनों में फंसकर काल्पनिक संसार की उलझनों में अपना समय नष्ट नहीं करेगा। परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि उम्र पा लेने से ही अपने व्यवहार में परिपक्वता पा लेना आवश्यक नहीं है। सैकड़ों ऐसे युवा देखे जाते हैं जो युवा अवस्था में भी बच्चों सदृश्य व्यवहार करते हैं। उनमें संवेगात्मक स्थिरता की बड़ी कमी होती है। जीवन संघर्ष में युवा व्यक्ति का ही बोलबाला होता है। समाज के आदर्श और सिद्धान्त अन्तत: युवा व्यक्तियों के ही व्यवहार के आदर्श पर निर्धारित होते हैं। युवा अवस्था में व्यक्ति एक ऐसी स्वतंत्रता का अनुभव करता है जो उसे बचपन में प्राप्त नहीं होती है। युवा व्यक्ति में आंकाक्षाओं और शक्ति का

सैलाब होता है । उसमें संवेगात्मक अस्थिरता के कारण समझौते और संतोष की शक्ति की कमी होती है और जैसे-जैसे सम्वेगात्मक स्थिरता आती जाती है, वह युवा से प्रौढता की तरफ गमन करता है ।

प्रत्येक युवा का अपना-अपना व्यक्तित्व होता है । उसके सभी व्यवहारों में उसके व्यक्तित्व की झलक होती है । इसी झलक के कारण ही प्रत्येक वैयक्तिक भिन्नता को समझना हमारे लिए संभव होता है । व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग हम विभिन्न अर्थों में करते हैं । किसी सुंदर और स्वस्थ व्यक्ति को देखकर हम कह देते हैं कि उसका व्यक्तित्व अधिक सुंदर है या इसके विपरीत होने पर हम कहते हैं उसका व्यक्तित्व अनाकर्षक है । इससे यह तात्पर्य निकालना कि व्यक्तित्व शारीरिक विकास का फल है, भ्रमात्मक होगा । व्यक्तित्व को मानसिक शक्ति मान बैठना भी ठीक नहीं । क व्यक्तित्व वह विवेक भी नहीं है जिससे हम समय-समय पर बुरे या भले की पहचान किया करते हैं । वस्तुत: व्यक्तित्व के अंतर्गत तो हमारे पूरे शारीरिक व मानसिक विकास, चरित्र विवेक तथा व्यवहार की छाप आ जाती है । इसमें से किसी एक को "व्यक्तित्व" समझ लेना ठीक नहीं है । इन सबों को समन्वित और सामंजस्यपूर्ण शक्ति के आधार पर किसी प्रकार का व्यवहार दिखलाना किसी से व्यक्तित्व में एक ऐसी उत्तेजक शक्ति होती है जो दूसरों को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया करती है । व्यक्ति इस उत्तेजक शक्ति को अपने व्यक्तित्व में वैसे निहित करता है । व्यक्ति वातावरण की विभिन्न वस्तुओं में सम्पर्क में आता है । इस सम्पर्क में उसमें विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होती हैं । इन प्रतिक्रियाओं का गुणनफल ही व्यक्ति का उत्तेजना शक्ति अथवा उसके व्यक्तित्व की प्रथम जड़ होती है । "व्यक्तित्व" शब्द एक प्रकार से चरित्र का पर्याय है । व्यक्ति के निर्माण में वंशानुक्रम का गुण-दोष, सामाजिक व आर्थिक स्थिति का प्रभाव तथा उसके वातावरण निहित होते हैं ।

जिस प्रकार युवा के स्वभाव के विभिन्न गुण और दोषों को नींव बचपन में ही पड़ जाती है उसी प्रकार उसके व्यक्ति का रूप उसके बचपन के अनुभवों से ही प्रारंभ हो जाता है । बालक के विकास के साथ उसका व्यक्तित्व भी बढ़ता है । जिस बालक का लालन-पालन बडे लाड-प्यार से किया जाता है उसके आलसी और दम्भी हो जाने की सम्भावना होती है । जिसकी स्वाभाविक इच्छाओं का दमन किया जाता है वह डरपोक तथा आत्महीनता की विकट भावना ग्रंथीवाला अथवा अवगुणों जैसे -- चोरी, आत्मपीडा, तथा पलायन से युक्त हो सकता है । स्वस्थ बुद्धि के बालक में सीखने की प्रक्रिया स्वस्थ होती है । उसका व्यक्तित्व सरल व स्वाभाविक होता है । बचपन का व्यक्तित्व युवावस्था तक आते-आते वैसे ही बदलने लगता है, जैसे उससे संबंधित अन्य बातें बदलने लगती है । "वैंड· ने अपने अन्वेषण में देखा कि व्यक्तित्व के कुछ अंग बचपन के अनुभवों पर निर्भर करते हैं । उसके अनुसार बचपन में आनन्द के लिए पढ़ने और खेल में भाग लेने से ढिठाई, साथी के न होने और कम पढ़ने से दब्बूपन, कम साथी, सामाजिक मनोरंजन और कम खेल से अन्तर्मुखता अधिक साथी तथा लोगों से प्रशंसा के पाने से बहिर्मुखता तथा अत्यधिक धार्मिक कार्यों में भाग लेने भाग लेने से भावुकता के अंग व्यक्तित्व में आ जाते हैं ।"[1] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि बचपन की आदतें युवा होने पर पूर्ण रूप से नहीं बदलती हैं । समय-समय पर बदलती हुई परिस्थितियों के कारण युवा व्यक्तित्व में व उसके मानसिक धरातल पर थोडा-बहुत परिवर्तन होता है । बचपन में दुखी बच्चे प्राय: भावुक हो जाते हैं । लज्जा करनेवाले बच्चे युवावस्था में प्राय: अकेलेपन की प्रवृत्ति से ग्रस्त होते हैं । आत्मविश्वास में निर्बल बालक युवावस्था में भी आत्म-विश्वास को हासिल नहीं कर पाते ।

शारीरिक दशा का व्यक्तित्व के विकास पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । यदि शारीरिक अस्वस्थता के कारण बालक बचपन में अधिक बीमार रहते हैं तो उसके व्यक्तित्व पर इसका प्रभाव अवश्य पडेगा । वह चिड़चिड़ा, द्वेष रखनेवाला, असहिष्णु और स्वार्थी हो सकता है । कुछ बालक बचपन में स्वस्थ होते हैं और युवा अवस्था में अधिक बीमार पड़ने लगते हैं तो वे हीनभावना से ग्रस्त हो जाते हैं । बीमारी के कारण उनकी रुचियों को बदलना पड़ता है । परिणामस्वरूप नयी रुचियों के कारण व्यक्तित्व पर भी प्रभाव पड़ता है । शारीरिक बनावट का भी व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है । जो प्रतिक्रिया ऊँचे और डील डौलवाले युवा को देखकर होती है वही नाटे, काले तथा कुरूप को देखकर नहीं होती । शारीरिक परिवर्तन अपने प्रति, दूसरों के प्रति तथा जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण लाने का प्रतीक है । युवा में शरीर के प्रति लोगों का क्या विचार है, यह जानने की प्रबल इच्छा होती है । वह अपने शरीर के प्रति सतर्क होता है । दूसरों के सम्पर्क में आने पर युवा वह अच्छी तरह जान लेता है कि दूसरे उससे क्या चाहते हैं । इस चाहत के अनुकूल वह अपने को बनाने की चेष्टा करता है । इस चेष्टा में उसे गर्व, उत्साह, लज्जा, निरुत्साह व अपमान का सामना करना पड़ता है । फलत: उसे संघर्ष करना होता है । इस संघर्ष में उसके व्यक्तित्व पर एक नया आवरण चढ़ता है ।

व्यक्तित्व पर बालक के नाम का भी असर पड़ता है । युवावस्था में यह असर गहरा हो जाता है । प्राय: यह देखा गया है कि बच्चे या युवा का नाम उसके गुणों को विपरित होता है अत: उसके गुणों के अनुसार उसका उपनाम भी पड़ जाता है । युवा व्यक्तित्व का निर्माण परिवार के सदस्यों द्वारा किया गया व्यवहार पर भी निर्भर होता है । यदि पारिवारिक जीवन सुखद व शान्त नहीं होगा

तो युवा में सदा असंवेगात्मक अस्थिरता पाई जा सकती है । कुछ बच्चों पर माता-पिता का नियंत्रण इतना अधिक होता है कि युवा युवा अवस्था में भी उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता । वे दब्बू, आत्महीन तथा संकेतों पर नाचनेवाले होते हैं । आत्म निर्णय की कमी होती है । पारिवारिक झगडे व कलह के कारण ऐसे घरों के युवकों में क्रोध, स्वार्थपरता, सामाजिक प्रशंसा व निंदा की उपेक्षा, आत्म-नियंत्रण में कमी तथा निरूत्साह की भावना आ जाती है । घर में अकेली संतान होने के कारण मां-बाप का ज्यादा ध्यान बच्चे की तरफ बचपन से रहता है । उसके अवगुणों को भी प्रशंसा मिलती है । परिणामस्वरूप युवा होने पर उसमें आत्म-निर्भरता की कमी आ जायेगी तथा वह दम्भी प्रवृत्ति का हो जाता है । मां-पिता का कड़ा व ढीला नियंत्रण भी युवक के व्यक्तित्वमें दब्बूपन, भाव-प्रकाशन शक्ति की कमी ला देती है । ढीले नियंत्रण के कारण पढने-लिखने में उसका ध्यान नहीं लगता, उसमें आलस्य तथा खुराफाती भावना आ जाती है । परन्तु उनकी प्रकाशन शक्ति अच्छी होती है । ढीले नियंत्रण के कारण युवक में झगलूपन, अवज्ञा, हठी, आवारवाली तथा लापरवाही की भावना भी आ जाती है । अत्यधिक प्यार भी युवकों में दुर्गुण की भावना भर देता है । वह उपद्रवी व हठी हो जाता है ।

आत्मविश्वास के अभाव के कारण युवा में उतावलापन संशय की भावना, घर से बाहर रहने में खिन्नता, मन की तरंगों में डूबना प्रत्यागमन की प्रवृत्ति आ जाती है । यह कहना गलत होगा कि कोई उत्कृष्ट बुद्धि का किशोर सुखी ही होगा । क्योंकि सुख प्राप्ति के लिए बुद्धि ही अकेला साधन नहीं है । वस्तुत: युवा में अपने कार्य में आनन्द और सफलता मिलने से ही सच्चे सुख की अनुभूति होती है । प्रेम की असफलता प्राय: युवकों को दुखी बनाती है । यदि अपनी मनपसंद

पत्नी नहीं मिलती तो युवक अपनी पूरी जिन्दगी ही व्यथित कर लेते हैं । ऐसे युवक संगीत, कविता तथा जीवन से कट कर शांत और सुख का अनुभव करते हैं । सुखी युवक जीवन की समस्याओं का सामना करता है । उसके सामने कुछ करने का लक्ष्य होता है । जबकि दुखी युवक विभिन्न समस्याओं में ऐसा उलझा रहता है कि वह कोई निश्चित आदर्श या लक्ष्य नहीं बना पाता ।

युवा के व्यक्तित्व पर शिक्षा का प्रभाव भी व्यापक रूप से पड़ता है । यदि उससे व्यक्तित्व बनाने की सही शिक्षा प्राप्त होती है तो वह अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन कर लेता है । शिक्षक का यह कर्तव्य होता है कि वह युवकों का सही मार्गदर्शन करें । योग्य शिक्षक युवकों की परेशानियों को समझते हैं और उन्हें समझाकर एक नयी दिशा प्रदान करते हैं । वातावरण और युवा में सुव्यवस्थापन के क्रम में शिक्षक पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करता है । युवकों को पाठ्यक्रम, तत्संबंधी मानसिक क्रियाओं तथा शिक्षक के व्यक्तित्व में कुछ ऐसी बातें अवश्य मिलनी चाहिए जिससे उसकी संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके । युवा बहुधा काल्पनिक जगत् में उड़ता है । अत: शिक्षक को चाहिए कि उसे वास्तविक जगत् के स्तर पर लाये । युवा को बच्चे तथा प्रौढ व्यक्ति से भिन्न समझते हुए युवक की गांठ को खोलें । यह सत्य है कि शिक्षक प्रत्येक युवक के लिए एक निश्चित कार्यक्रम नहीं निर्धारित कर सकता है । परन्तु यदि वह मनोवैज्ञानिक क्षण पर किशोर को आवश्यक प्रेरणा और उत्साह ही दे सका तो वह पर्याप्त होगा । युवा में व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से विकसित कभी भी नहीं समझना चाहिए, वरन् उसके इस अस्थिर रूप को उसके विकास का एक क्रम माना जाना चाहिए । कालेज तथा विश्वविद्यालय युवकों के लिए एक ऐसी संस्था है जहां वे समान व असमझ प्रवृत्ति के युवकों के संपर्क में

आते हैं । यहाँ उन्हें अपने अन्दर और बाहरी की समस्याओं को समझने और उनसे संघर्ष करने का अवसर प्राप्त होता है ।

आठवें दशक के उपन्यासों में चित्रित युवा वर्ग के व्यक्तित्व और मानस को हम निम्नलिखित वर्गों में बाँट कर विश्लेषित कर सकते हैं ।

1. मनोवैज्ञानिक आधार :

1.1 परिपक्व युवामानस :

शारीरिक विकास के साथ व्यक्ति के अनुभव का क्षेत्र दिन पर दिन बढ़ता जाता है और उसे विभिन्न व्यक्तियों के संपर्क में आना पड़ता है । यदि इन विभिन्न व्यक्तियों के संबंधमें वह अवसरानुकूल व्यवहार कर पाता है तो कहा जायेगा कि उसने सामाजिक प्रौढ़ता कर ली है । मानसिक दृष्टि से परिपक्व व्यक्ति कहीं बाहर या भीतर किसी भी स्तर पर न तो डरता है और न ही किसी के टूटने या बिगड़ने से दुख अनुभव करता है । मानसिक परिपक्वता की अवस्था में युवा किसी भी समस्या पर शान्तिपूर्वक विचार करता है । वह किसी संवेग में नहीं बहता और न ही किसी का अन्ध-भक्त होता है । मानसिक परिपक्वता का अर्थ परिपक्व विचारों से है और उसके निम्न गुण होते हैं -- जाति, परम्परा, अधिकारी वर्ग तथा मित्रों के प्रभाव में पड़ कर स्वतंत्र निर्णय की शक्ति, बुरे और भले का विचार छोड़ अपने उत्तरदायित्व को संभालने के लिए तैयार रहना, भावुकता में बिना पड़े तथ्यातथ्य पर विचार करना, वस्तु-स्थिति को देखने के बाद निर्णय लेना, समझौते की प्रवृत्ति से समस्याओं का निर्णय करना और उमंग में भावी परिणाम का न भूल जाना और नम्रता से अभिभूत रहना ।

"भ्रम भंग" का चन्दन एक परिपक्व युवा है । वह पारिवारिक व बाहरी परिस्थितियों को भली भांति समझता है । पारिवारिक गरीबी और पिता की असमर्थता की पहचान उसमें है । परिवार को आर्थिक संकट से उबारने के लिए वह अपने परिवार को छोड़कर बंबई जैसे महानगर में जहां न तो रहने की जगह है और न ही अपना कहने के लिए कोई रिश्तेदार या व्यक्ति है, आ जाता है । वह अपनी जिम्मेदारियों को समझता है "वे हंसने के दिन बीत गये"[2] वह घर में खुशी लाना चाहता है । छोटी-छोटी खुशियों को बटोरता हुआ चंदन संकल्प करता है कि इस घर को खुशियों से भर दूंगा -- "सिर्फ पचास रूपये में इतनी खुशी । आदमी कितना छोटी-छोटी बातों में खुश हो जाता है । मैं संकल्प करता हूं । मन ही मन, इस घर को खुशियों से भर दूंगा ।"[3] चंदन का यह संकल्प एक परिपक्व युवामानस की सोच है वह बंबई जैसे शहर में हाथ-पांव मारता है और घरवालों को खुश रखने का पूरा प्रयत्न करता है लेकिन उसका यह प्रयत्न असफल हो जाता है । उसके अपने ही भाई-बहन उसके विरुद्ध हो जाते हैं । उनकी आवश्यकताएं व इच्छाएं दिनों-दिन बढ़ती चली जाती है । फिर भी चन्दन अपनी जिम्मेदारियों से भागता नहीं है वह हर तरह से घर को घर बनाये रखने का प्रयत्न करता है । "मनुष्य की मूलभूत अच्छाई पर मुझे आज भी विश्वास है।"[4] चन्दन का यह विश्वासी मन अन्त में डगमगा जाता है । उसके परिवारवाले उसे अकेला छोड़कर चले जाते हैं । पत्नी के साथ चन्दन यही सोचता है कि "जीवन पानी की सतह है । लहरें घटनाएं । घटनाओं का बनना और मिटना । बनते-मिटने का शाश्वत क्रम । इस क्रम का केन्द्रीय बिन्दु क्या है ? बस जिजीविषा ।"[5] परिवारवालों के चले जाने पर वह बिलखता नहीं और नहीं पाश्चताप करता है । वह अपने आपको हल्का महसूस करता है ।

1.2. अपरिपक्व युवा मानस :

अपरिपक्व युवा मानस का तात्पर्य उस युवामानस से है जो युवा उम्र तो प्राप्त कर लेते हैं लेकिन युवा मानस के साथ परिपक्वता प्राप्त नहीं करते। ऐसे युवकों में धैर्य व परिस्थितियों को सही परिपेक्ष्य में समझने की शक्ति कम होती है। शीघ्र उत्तेजित होना और उतनी ही तेज़ी से सफलता में हर्षित होना तथा असफलता में कुण्ठाग्रस्त हो जाना अपरिपक्वता की निशानी है। अपरिपक्व युवक अपने कहे वचन तथा अपने लक्ष्य पर अधिक देर तक टिका नहीं रह सकता। इनके स्वातंत्र निर्णय समय-समय बदलते रहते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि युवा-मानस की अपरिपक्वता युवक को एक जगह स्थिर नहीं रहने देती। मानसिक अपरिपक्वता के कारण ही युवक कुण्ठित, हीनभावना से ग्रस्त, उत्तेजित, अपमानित, क्रोधी, उपद्रवी, हठी, भावी, उत्तरदायित्वहीन तथा पिछलग्गू व चापलूसी करनेवाले बनते हैं। नैतिक मान्यताओं की व्याख्या को विकृत करते हैं। ऐसे युवक सामाजिक कुरीतियों की खुलकर आलोचना करने से डरते हैं और अस्वीकार की स्थिति में उसे तरह-तरह के जामा पहनाते हैं।

"बीमार शहर" के युवक व युवतियां अपरिपक्व मानस रखते हैं। बंबई में रहनेवाला यह युवा समूह पूरी तरह से समाज व उसकी मान्यताओं को नकारता है। नकारने की प्रक्रिया के पीछे उसकी असफलता तथा भावुकता विद्यमान है। "मिस गोरा" कहने के लिए मिस है लेकिन उनकी तीन बेटियां है। वे शादी के बंधन को नकारती हैं क्योंकि एक बार प्रेम असफल हो चुका है। प्रेम की इस असफलता ने मिस गोरा को नरक में पहुंचा दिया है। उनकी दुनिया सामान्य दुनिया से अलग है। मिस गोरा के लिए सभी संबंधों का सार पैसा है।

मिस गोरा की विचारधारा एक स्वस्थ और आदर्श समाज के लिए खतरनाक है । शोभना भी एक ऐसी युवती है जो घर से कई-कई दिनों तक बाहर रहती है और पुरुषों का साथ अपने यौवन को कायम रखने के लिए आवश्यक मानती है । "हमारे शरीर में अनगिनत छोटी-छोटी रक्त वाहिनी नलियाँ हैं । जितना तेज़ हमारे रक्त का प्रवाह होगा, हमारा यौवन उतना ही प्रस्फुटित होगा । इन रक्तनालियों को सदा जाग्रत रखना ज़रूरी है । इसके लिए विपरीत सेक्स का सान्निध्य सदा जागृत रखना ज़रूरी है । वह न मिले तो हमारा यौवन असमय ही ढल जाए ।"[8] शोभना का यह कथन उसकी मानसिक अपरिपक्वता का ही द्योतक है । मैत्री भावना का उद्देश्य यौवन को कायम रखने के अतिरिक्त बहुत सी अन्य भावनाओं की पूर्ति के लिए होता है । इसी उपन्यास का शेखर अविवाहित साहित्यकार है । वह टेरेस में रहनेवालों का मार्ग-निर्देशक व चहेता है । परन्तु मानसिक दृष्टि से वह बीमार है । उसके कर्म और व्यवहार में फर्क है । वह चीजों की व्याख्या तो नैतिक मूल्यों को सामने रखकर करता है लेकिन वे ही बातें अपने पर लागू नहीं करता । एक साहित्यकार होने के नाते दूसरों को उपदेश देता है । "यही जीवन है ..... हम यहाँ रहकर भी नहीं रहते । हमने कभी वर्तमान में जाना नहीं सीखा । हम तो मरे हुए व्यक्तियों में अपना आश्रय खोजते हैं अथवा अजन्में भविष्य का सपना देखते हैं ।"[9] "आम आदमी अपने भीतर रहकर जीता है ..... आज का आदमी सब कुछ होते हुए भी खोखला है ।"[10] "जीने का संबंध आयु से नहीं, भोगे हुए क्षणों से है ।"[11] शेखर की यह विचारधारा आज के युग में सही सिद्ध होती है । या यह कहें कि यह भोगे हुए जीवन से उभरता है । लेकिन शेखर व्यवहार में कहीं भी उस विचारधारा को भोगता नहीं है । वह अपने शब्दों के जाल में गरीब मंजरी को फँसा कर उसका भोग करता है । उसकी भोग दुनिया चिन्तन की दुनिया से परे है । इस तरह उसमें कहीं न कहीं अपरिपक्वता विद्यमान है ।

"अपना मोर्चा" के युवक वर्तमान परिस्थितियों व व्यवस्था से क्षुब्ध है । पुस्तकों के विचार और उनकी बाहरी दुनिया के विचार तथा उसकी भाषा से अलग हैं । उन्हें यही प्रश्न कचोटता है कि ऐसा क्यों है । शिक्षक जो जीवन मूल्यों की बात सिखाते हैं नैतिकता तथा अनैतिकता में फर्क समझते हैं व्यवहार के स्तर पर अलग क्यों है । "संविधान" में समानता की बात है तो समान में असमानता क्यों है ? युवकों के ये प्रश्न जहां परिपक्व मानस के परिचयक हैं वहीं बिना सोचे-समझे भाषा के खिलाफ आन्दोलन करना, बिना किसी सतर्कता व दूर-दर्शिता के सड़कों पर जलूस निकालना उनकी अपरिपक्वता के ही परिणाम हैं ।

"रथ से गिरी बांसुरी" का युवा नायक बिना सोचे-समझे काशी के महिला उद्धार सभा में एक जोशीला भाषण देता है । लेकिन यथार्थ उसे दबोच लेते हैं । वास्तविकता के धरातल पर ही उसे पता चलता है कि जो बातें स्वप्नलोक में सुख देती हैं वे ही व्यवहार में कितने दुखद लगती है । वह स्वयं से नहीं डरता लेकिन सामाजिक मान्यताएं उसे भयभीत करती हैं । मानसिक अपरिपक्वता के कारण ही वह कावेरी का अपने दोस्तों से एक परिणीता के रूप में परिचय देता है । उसे हर समय यह भय बना रहता है कि उसके दोस्त-यार क्या कहेंगे । "मैंने यह सब कुछ आवेश में कर दिया । मगर अब मेरी समझ में नहीं आता कि जिनके साथ मेरा उठना-बैठना है, वे सब कुछ जानकर क्या कहेंगे । बूढ़े शिल्पी मनोहर लाल पर क्या असर पड़ेगा, अधेड़ चित्रकार शेखर क्या सोचेगा और फिर मेरे उम्र के मेरे साथी ।"[12]

"तीसरा आदमी" का नरेश "लाल पीली जमीन" का केशव, हरेसर "अलग-अलग वैतरणी" का जगेसर, "रुकोगी नहीं राधिका" की राधिका तथा "सीमाएं टूटती हैं" की चांद अपरिपक्व युवा हैं । नरेश

अपनी पत्नी को शंका के आधार पर छोड़ देता है । राधिका पिता द्वारा दूसरी शादी किए जाने को मानसिक स्तर पर सहन नहीं कर पाती और एक विदेशी युवक के साथ विदेश चली जाती है । हरेसर तथा जगेसर पुलिस में कांस्टेबल हैं लेकिन आम जनता पर अपना रौब डालना तथा अनैतिक व समाज विद्रोही कार्य करना इनका शौक बन जाता है ।

"महाभोज" का जोरावर भी एक अपरिपक्व युवक है । वह सरकार के लिए काम करता है लेकिन सरकार उसकी नकेल अपने हाथ में रखती है । गुंडागर्दी उसका व्यवसाय है और सरकार उसका फायदा अपनी "वोट बैंक" के लिए करती है । वह सरकार से विद्रोह नहीं कर सकता क्योंकि दा साहब की नज़र उसकी गतिविधियों पर है । वह अपना हित नहीं सोच सकता है । वह अपनी ही कौम के खिलाफ उन लोगों के लिए काम करता है जो उसका भी भला बुरा नहीं सोचते । इस तरह दूसरों के इशारे पर हिंसक काम करनेवाला जोरावर मानसिक दृष्टि से अपरिपक्व है । मौजूदा सत्ता उसकी इस अपरिपक्वता का फायदा उठाकर उसने राज्य को कायम करने के लिए इस्तेमाल करती है । व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठानेवालों का सफाया जोरावर करता है । लेकिन उसकी समझ में यह बात नहीं आती है कि दूसरों का सफाया करनेवाली व्यवस्था उसे किसी दिन किसी भी समय एक लावारिस लाश में परिवर्तित कर सकती है ।

1.3 उम्र से पहले विकसित युवामानस :

कुछ युवा ऐसे भी पाये जाते हैं जो उम्र में कम होते हैं लेकिन उनका मन का विकास उम्र से ज्यादा होता है । तर्क तथा किसी बात को समग्र रूप से जानने की उत्सुकता इनमें बढ जाती है । आठवें दशक

के उपन्यासों में "आपका बंटी" का बंटी ऐसा ही युवक है । उसकी आयु मात्र नौ साल का है । उसके मां-बाप अलग-अलग रहते हैं और बंटी मां के पास रहता है । ऐसा देखा गया है कि सम्वेदनात्मक परिस्थितियों में बच्चे उम्र से पहले ही युवा हो जाते हैं । बंटी भी इन्हीं संविदनात्मक स्थितियों में पलता है । मां के पास रहते हुए भी उसे पिता से लगाव है । वह मां के पास रहते हुए पिता को भूलता नहीं है । मां जो कालेज की प्रिंसीपल है उसे प्रिंसिपल की चेयर पर बैठी कभी अच्छी नहीं लगती । वह हमेशा इसी उलझन में रहता है की घर की मां जो उसे इतना स्नेह देती है, अचानक ड्रेसिंग टेबल की शीशियों के रंगों के कारण इतनी क्रूर और कठोर कैसे हो जाती है । वह उन शीशियों के बारे में सोचता रहता है । "जान तो वह आज तक नहीं पाया पर उसे हमेशा लगता है कि ड्रेसिंग टेबल की इन रंग-बिरंगी शीशियों में, छोटी-छोटी डिबियोंमें जरूर कोई जादू है जो कि ममी इन सबको लगाने के बाद एकदम बदल जाती है । कम से कम बंटी को ऐसा ही लगता है कि उसकी मम्मी अब उसकी नहीं रही, कोई और की ... हो गई ।"[13] वह मम्मी के बदले हुए रूप को सहन नहीं करता और मात्र नौ वर्ष की उम्र में ही उसमें अकेलापन घर कर जाता है । "घर में वह चाहे अकेला रह ले, पर वहां नहीं जाता । वहां किसके पास जाये ? मम्मी तो वहां रहती नहीं । रहती है तो एक प्रिंसीपाल जिनके चारों ओर बहुत सारे काम, बहुत सारे लोग रहते हैं नहीं रहता तो केवल एक बंटी ।"[14] बंटी की उम्र खेलने और पढने का है लेकिन इसके द्वारा मौजूदा स्थितियों का विश्लेषण उसके युवा व्यक्तित्व का परिचय है । उसका दिमाग पढ़ने से ज्यादा स्थितियों को समझने में लगा रहता है । वह अपने पापा के बारे में जानना चाहता है, लेकिन मां के न बताने पर उसकी जिज्ञासा शान्त नहीं होती बल्कि वह और ज्यादा उत्सुक हो उठता है । "ममी उसे पापा की बात बताती क्यों नहीं है ? कितनी ही बार उसने मम्मी से यह बात करनी चाही, पर जब भी वह ऐसी बात करता है, ममी का चेहरा जाने कैसा-कैसा हो जाता है ।"[15]

बंटी में पिता के साथ का अभाव है । मां के प्यार में भावुकता की मात्रा अधिक होती है । इसीलिए उसके व्यक्तित्व पर भावुकता हावी हो गयी है । अनुशासन, कठोरता तथा किसी को सहज स्वीकारने की प्रवृत्ति जो बालक को पिता से प्राप्त होती है, बंटी के व्यक्तित्व में नहीं है । वह हर चीज को भावुक निगाहों से देखता है । इसी लिए वह मां के साथ किसी दूसरे आदमी को सहन नहीं कर सकता है । वह अरूण जोशी के बजाय अरूण बतरा कहलाना पसंद करता है । वह मां की दूसरी शादी को सहन नहीं करता है । "बंटी का मन हुआ खींचकर डाक्टर साहब को अलग कर दें । उसके भीतर कुछ खौलने लगा । ..... नहीं मैं नहीं खेलने देता । कोई नहीं है मेरा छोटा-वोटा भाई ।"[16] मां के अत्यधिक प्यार ने बंटी को हठी बना दिया है वह जो चाहता है वही करता है । इसीलिए डा0 जोशी उसे एक प्राब्लम बच्चा की संज्ञा देते हैं । "तुम उस पर इतना ज्यादा हावी रही हो कि वह पूरी तरह लड़का बन ही नहीं पाया । तुमने उसे उधम करने ही नहीं दिया -- हां औरतोंवाली जिद और रोना ज़रूर सिखा दिया ।"[17] इसके परिणामस्वरूप बंटी मां को दुखी करने के लिए पिता के साथ चला जाता है और वहां से होस्टल में । वास्तव में बंटी का यह व्यक्तित्व मां-पिता के बीच रागात्मक शून्यता की देन है । मां के अत्यधिक प्यार के कारण वह भावुक तथा हठी हो जाता है । उसे स्वयं या दूसरे के कारण बंटी का बचपन छोटा हो जाता है । उसके व्यक्तित्व में पुरूष प्रवृत्तियों का अभाव है । घर में अकेले होने के कारण उसे हर स्थिति पर अकेले सोचने का अवसर मिलता है । यही कारण है कि बंटी नौ वर्ष की उम्र में ही युवा बन जाता है जिसे मनोवैज्ञानिक प्राब्लम चाइल्ड की संज्ञा देते हैं ।

कुछ युवक ऐसे भी होते हैं जो युवावस्था प्राप्त करने के बावजूद भी युवा मानस प्राप्त नहीं करते । उनमें सम्वेगात्मक अस्थिरता पाई

जाती है । वे शरीर से बड़े हो जाते हैं लेकिन मानसिक स्तर पर बच्चों के सदृश्य ही रहते हैं जैसे -- उपद्रव करना, लापरवाही करना । वे युवा प्रवृत्तियों से संचालित नहीं होते हैं । वास्तव में ऐसी प्रवृत्तियां युवा में दोषपूर्ण विकास के कारण आती है । "लाल-पीली-जमीन" के केशव का व्यक्तित्व कुछ ऐसा ही है । वह शरीर से किशोर हो चला है लेकिन उसमें किशोर प्रवृत्तियों की कमी दिखाई देती है । "आतंक से भरे हुए माहौल की उपज केशव है । बचपन से ही वह इस माहौल को देख रहा है, भोग रहा है । चूंकि वह एक संवेदनशील व्यक्ति है, इसीलिए इस माहौल से मुक्ति चाहता है । ····· लेकिन इस मुक्ति-संग्राम के लिए जिस शक्ति और संकल्प की आवश्यकता होती है, केशव में उसका अभाव है । यह अभाव जन्मना नहीं है, बल्कि पिता के व्यक्तित्व से प्रभावित और परिवेशगत आतंक से पीड़ित है ।"[18] केशव का यह व्यक्तित्व एक युवा-व्यक्तित्व से मेल नहीं खाता । युवा व्यक्तित्व में जहां जोश, शक्ति विद्रोह तथा कुछ कर गुजरने की माद्दा होता है, वही केशव का व्यक्तित्व संकुचित है । उसमें युवा प्रवृत्तियां जन्म ही नहीं लेती जबकि उसी माहौल में कल्लन, सुरेश, शिवमंगल जैसे युवा पैदा तथा बड़े होते हैं । उनका व्यक्तित्व केशव के विपरीत है । अतः इन संदर्भों में केशव का युवामानस अविकसित है । उसकी मानसिकता को भय और आतंक ने इस तरह प्रभावित किया है कि वह बच्चों की तरह अपने को असुरक्षित महसूस करता है ।

2· <u>आर्थिक आधार :</u>

आधुनिक युग में युवा पीढ़ी के व्यक्तित्व और मानस को जितना आर्थिक स्थिति ने प्रभावित किया है उतना किसी अन्य ने नहीं । आज के जीवन में अर्थ तत्व इतना प्रमुख हो गया है कि उसने युवा के क्रियाकलापों

को ही नहीं मानवीय संबंधों को भी प्रभावित किया है । और यहाँ तक कि उसकी मनोवृत्तियां भी इससे अछूती नहीं है । समाजशास्त्र की दृष्टि में आर्थिक स्थिति के आधार पर समाज को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है । उच्च वर्ग, मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग । यह आर्थिक अन्तर युवा व्यक्तित्व में अन्तर उपस्थित करता है उसके सोचने-समझने के तरीके और लक्ष्य में फर्क होता है । अलग-अलग स्तर के युवकों की समस्याएं अलग-अलग होती हुई भी आपस में कहीं मेल रखती है लेकिन आर्थिक परिस्थितियों के कारण युवा व्यक्तित्व के आचार-व्यवहार तथा मानस में पर्याप्त अन्तर है । इसीलिए युवा प्रवृत्तियां और क्रिया से उत्पन्न प्रतिक्रियाएं अलग-अलग हैं ।

1. उच्च वर्ग के युवक :

इस वर्ग के युवकों के सामने आर्थिक समस्याएं नहीं होती हैं । लेकिन अन्य समस्याओं से ये युवक ग्रस्त हैं । ये युवक जीवन के संघर्ष से घबराते नहीं है बल्कि अपनी प्रतिक्रिया किसी न किसी माध्यम से व्यक्त करते हैं । उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस वर्ग के युवकों को भी पर्याप्त संघर्ष करना पड़ता है । इससे उनके व्यक्तित्व व चरित्र की अभिव्यंजना होती है । वास्तव में युवा किसी भी वर्ग का हो, उसे अपने अस्तित्व के लिए परिस्थितियों से संघर्ष करना ही पड़ता है । मानो युवा की नियति ही संघर्ष है । "रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका, "सीमाएं टूटती हैं" की चांद तथा "अलग-अलग वैतरणी" का विपिन में उच्च वर्ग की युवा प्रवृत्तियां हैं । इनके सामने आर्थिक समस्याएं नहीं है, लेकिन इनमें नैतिक मूल्य के विघटन से उत्पन्न आक्रोश तथा अकेलापन है । राधिका पिता के चहेती सन्तान है । वह अपने पिता को एक पिता के रूप में देखती है । वह कभी सोच ही नहीं पाती कि पिता

की अपनी कुछ इच्छाएं हैं । पिता द्वारा दूसरी शादी किये जाने का वह विरोध करती है और पिता को दुखीत करने के लिए घर छोड़कर चली जाती है । राधिका का यह व्यक्तित्व पिता द्वारा अत्यधिक प्यार पाने के कारण तथा अपने जीवन में पिता को धूरी के रूप में देखने के कारण है । वह अपने पिता को दूसरे के साथ बांट नहीं सकती । मां के अभाव में पिता उसके लिए सब कुछ है । इसीलिए दूसरी शादी को उसका अहम्वादी मन स्वीकार नहीं करता । वह हमेशा एक तरफा सोचती रही है । पिता की शादी के पश्चात् उसे लगता है कि उसके केन्द्रीय धुरी पिता अब सिर्फ उसके नहीं रहे हैं । इंग्लैंड से वापस आने के बाद राधिका इस बात को महसूस करती है । "घर, मानो पापा, और पापा के विद्या से विवाह के पहले के दिन जबकि उनके जीवन में राधिका थी, पुत्री, खाली क्षणों की संगिनी, पूरे जीवन की धूरी । उसके बाद उनका पढ़ना-लिखना । ऐसे जीवन में नयी पत्नी का स्थान ही कहां था ? उसे स्थान देने के लिए राधिका को घर छोड़ना पड़ा था और यह बात वह कभी नहीं भूलती । ...... पापा से सम्पूर्ण एकाग्रता की कामना करना ही राधिका की भूल थी । मां की मृत्यु के बाद अठारह वर्ष उन्होंने अकेले काटे, यही क्या आश्चर्य नहीं था ? राधिका ने अब जाना था कि अकेलापन कितना भयावह होता है ।"[19] राधिका का यह व्यक्तित्व उसके स्वयं के अनुभव के पहले और बाद का है । वह बिना सोचे-समझे घर से चली जाती है, लेकिन बाहरी दुनियां में वह अपने पिता को ही ढूंढती है । राधिका के व्यक्तित्व पर उसके पिता इस कदर हावी है कि प्रतिक्रिया में भी वह उसे ही ढूंढती है इस तरह राधिका के व्यक्तित्व में अकेलेपन का भय है ।

राधिका की तरह ही चांद है, पिता द्वारा किये गये अपराध को मानसिक स्तर पर स्वीकार ही नहीं कर पाती । परिणामस्वरूप वह

पिता के दोस्त विमल के साथ हो जाती है और अपने अकेलेपन को पूर्ण करती है । वास्तव में राधिका तथा चांद एक से व्यक्तित्व की युवतियां हैं तथा समान समस्याओं में फंसी हैं । समाधान भी वे एक ही ढूंढती है और घर पुन: वापस आती है । ऐसा व्यक्तित्व परिस्थितियों व अपनी मान्यताओं के साथ सामंजस्य नहीं बिठा पाने के कारण ही बनता है ।

विपिन एक पढ़ा लिखा युवक है । वह अपने भाई कुमारथ की सामंती प्रवृत्तियों से नफरत करता है लेकिन व्यवहार में कहीं व्यक्त नहीं करता । वह इसका समाधान आत्मपीड़ा में ढूंढता है । माता-पिता विहीन विपिन की समस्या अकेलेपन की समस्या है । शहर से वह गांव आता है और गांव तथा परिवार की स्थिति उसे चुप रहने के लिए बाध्य करती है । वह इन परिस्थितियों को भोगने और चुप रहने के लिए बाध्य है । वास्तव में विपिन सामंती प्रथा की मान-मर्यादाओं से ग्रस्त परिवार में जनमा होने के कारण उसमें झूठी मान-मर्यादाओं को तोड़ने की ताकत नहीं है । इसीलिए वह अकेले में होता है लेकिन पुष्पा को चाहते हुए भी अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर पाता । "विपिन को लगता है कि उसके सिर की कोई शिरा टूटनेवाली है । ..... वह सोचता है यदि उसने साफ कह दिया होता, कुर्की की रात को ही कि यह सब नहीं होगा । पुष्पा मेरी है । मैं उससे विवाह करूंगा । तो कुछ नहीं हुआ होता । न कुर्की, न सोफिया नाले का कांड न गांव भर में हंसाई । मगर विपिन चुप रहा । मान-मर्यादा, झूठी शान, अपने को खतरे के सामने ढके रहने की प्रवृत्ति -- सभी ने मिलकर उसके गले को रूंध दिया । वह जाब लगे बैल की तरह हांफता रहा और अशक्य बैठा रहा ।"[20]

"अपना मोर्चा" में ज्वान उच्च वर्ग के युवकों की तामझाम पर व्यंग्य करता है "यह आपका कीमती वक्त है। मौज मस्ती का वक्त इसे आप जरा भी बरबाद नहीं करते। आप सड़क, मैदान, बाज़ार, घास, गैलरी -- हर जगह लकदक कपड़ों में निकले आते हैं। शोर, सीटियाँ, गाने-दिन जवानी के चार यार। और आप जवानी के चार दिनों को भरपूर उपयोग कर लेना चाहते हैं।"[21] ज्वान का इशारा कॉलेज में पढ़ रहे उच्च वर्ग के उन युवकों की तरफ है जो कालेज में मौज-मस्ती के लिए आते हैं। संस्था या व्यवस्था में फैले भ्रष्टाचार से उनका कोई वास्ता नहीं है।" क्योंकि वे निश्चिन्त हैं -- किन्हीं कारणों से सरकारी या गैर-सरकारी नौकरियों में नहीं आये तो पुश्तैनी कारोबार तो है ही।"[22]

उच्च वर्ग के युवकों में क्रांति व विद्रोह की भावना कम दिखाई देती है। अगर मिलता भी है तो मानसिक स्तर पर जैसे राधिका, चांद तथा विपिन करते हैं। क्रियाशीलता की कमी के कारण इस वर्ग के युवक सुस्त व अकेलेपन की पीड़ा से ग्रस्त हैं। समय की घटनाओं तथा परिस्थितियों के बदलाव को युवक-युवतियाँ सहज स्वीकार नहीं करते हैं। इसी कारण द्वन्द्व में फंसे हैं। इनका व्यक्तित्व कुण्ठित व आत्मपीड़ा से ग्रस्त है। ये युवक या तो सामाजिक मान्यताओं को ठुकराते हैं या उनके नीचे दब जाते हैं।

2.2. मध्यवर्ग का युवक :

समाज में सबसे ज्यादा संघर्षशील मध्यवर्ग का युवक है। नौकरी करना इनका पेशा व डिग्रियाँ इकट्ठा करना इनकी विरासत है। इस वर्ग के युवक एक तरफ घर की आर्थिक संकट का सामना करते हैं तो दूसरी तरफ मध्यवर्गीय संस्कार सामाजिक प्रतिष्ठा सुविधा व मान्यताओं की

रक्षा के लिए संघर्ष करते [illegible] हैं । वर्ग को पैसे की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी सामाजिक प्रतिष्ठा व सुविधा की । इस वर्ग के युवक निम्न वर्ग के युवक की तरह ही आर्थिक संकट से घिरे हुए हैं लेकिन ये निम्न वर्ग की तरह परिस्थितियों से अनजाने नहीं हैं । बल्कि अपनी स्थिति को बेहतर से बेहतर बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं और जीवन की लड़ाई कई स्तरों पर लड़ते हैं । इस वर्ग के साथ उच्च वर्ग की समस्याएं भी हैं और निम्नवर्ग का संघर्ष भी है । कहने का तात्पर्य यह है कि इस वर्ग के युवक समाज की दोहरी व्यवस्था ~~के~~ के खिलाफ संघर्षरत होते हैं ।

"भ्रम-भंग" का चंदन मध्यवर्ग को संकेत करता हुआ कहता है कि "सोचा था तब मैंने, मध्य वर्ग कोई व्यक्ति होता तो वहीं चौराहे पर नंगा करके उस पर थूक देता । लेकिन वह व्यक्ति कहाँ है । वह तो एक मेण्टेलिटी है । एक सडाँध से भरी हुई प्रवृत्ति । इस सडाँध से कब मुक्ति मिलेगी हमें ?"[23] चंदन का यह क्रन्दन मध्यवर्गीय वर्गीय युवक का विलाप है । वह अपनी मध्यवर्गीय संस्कार के प्रति आक्रोश से भरा हुआ है । "मध्य वर्गीय नैतिकता । मन से उसे भोगो । बाहर नैतिकता दिखाओ यह दोहरा चरित्र । मनीआर्डर भेजते रहो और गाली देते रहो । अपने को कोसते रहो ।"[24] चंदन का यह कथन पूरी तरह से मध्यवर्गीय नैतिकता को उभारता है । चंदन एक मध्यवर्गीय परिवार का युवक है, पिता ने अवकाश प्राप्त किया है इसीलिए उसे पिता की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठानी पड़ती है । वह इस जिम्मेदारी को अपना कर्त्तव्य समझकर उठाता है लेकिन धीरे-धीरे यह जिम्मेदारी उसके कंधों पर बोझ बन जाती है । एक कमानेवाला और पूरा परिवार बैठकर खानेवाला । दिनों-दिन भाई-बहन की बढ़ती आवश्यकताएं तथा इच्छाएं पूरी न कर पाने की अवस्था में चंदन एक तरफ आक्रोशी हो जाता है तो दूसरी तरफ मध्यवर्गीय नैतिकता व संस्कार के खिलाफ । पिता

की जिम्मेदारी अन्तत: चन्दन के लिए बोझ बन जाती है और वह अब इस बोझ को ढो नहीं पाता और अपने आपको इससे मुक्त कर लेता है ।

मध्यवर्गीय परिवार को यह शाप है कि धन अर्जित करनेवाला व्यक्ति परिवार के लिए एक साधन हो जाता है । उसका परिवार से संबंध मात्र पैसे से हो जाता है । उसका सुख-दुख नितान्त उसका है । चन्दन इन्हीं रास्तों से गुजरता है । वह पिता की जिम्मेदारी से इतना थक जाता है कि उसकी अपनी जिम्मेदारी ज्यों की त्यों पड़ी है ।

बेरोजगारी की अवस्था में मध्यवर्गीय युवक की हालत और भी नाजुक हो जाती है । परिवार उसे घर, खेत बेचकर इस उम्मीद में पढ़ाता-लिखाता है कि वह एक दिन उसकी उम्मीदों को पूरा करेगा । यदि युवा परिवार को इन उम्मीदों, आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं उतरता है तो उसका परिवार में रहना दुभर हो जाता है । "अपना मोर्चा" के छात्र इन्हीं स्थितियों से गुजर रहे हैं । छात्रावास में रहते हैं पढ़ाई करते हैं लेकिन सामने रोजगार का प्रश्न टंगा हुआ है । इसीलिए ये युवक घर जाने की अपेक्षा आंदोलन या जलूस निकालना बेहतर समझते हैं ।" रात दिन मालिकों की गुलामी करके भी वह उन्हें और अपने घरवालों को संतुष्ट न कर सका ।"[25]

आठवें दशक के उपन्यासों में चित्रित प्रमुख मध्यवर्गीय युवा पात्र हैं -- "अपना मोर्चा" के आंदोलन करनेवाले छात्र, "अलग-अलग वैतरणी" का हरिया, शशीकान्त, "गली आगे मुड़ती है" का तिवारी, भारती, श्रीकांत देवू "भ्रमभंग का चन्दन, "अन्तराल" की श्यामा, सोमा, कुमार, नरक दर नरक का जगन, "लाल पीली जमीन" का केशव, शिवमंगल, "तीसरा आदमी" का नरेश, सुमंत, "सीमाएं टूटती है" का मुखर्जी, "रेत की मछली" की कुंतल, शोभन, मनिल, "बीमार शहर" की मंजरी, शेखर, "नाज्यो बहुत

गोपाल" को निगुर्णिया आदि हैं ।

झूठे आडंबरों का विस्तार, उच्च वर्गीय लोगों के समान जीने की लालसा, अपने को ऊपर उठाने की इच्छा मध्य वर्गीय युवकों के प्रमुख लक्षण हैं । "तीसरा आदमी" तथा "नरक दर नरक" के नरेश व जगन इसी इच्छा के कारण दर-दर की ठोकरें खाते हैं । नरेश अपनी छोटी सी आय में अपने परिवार का पालन नहीं कर सकता लेकिन वह अपनी पत्नी से नौकरी नहीं कराना चाहता । दिल्ली जैसे शहर में वह अपने दोस्त सुमंत के साथ एक कमरेवाले मकान में रहता है और यहीं से उसके दाम्पत्य जीवन के बीच तीसरे का व्यक्तित्व उभरता है । वह तीसरे को अपने मध्यवर्गीय संस्कारों के कारण सहन नहीं करता और गर्भवती पत्नी को अकेले, बेसहारा छोड़कर वापस अपने घर चला जाता है और अन्तर में कहता है कि मैं दुनिया में सबसे शक्की आदमी हूं ।"26 नरेश का यह शक उसके मध्यवर्गीय संस्कार की देन है । एक तरफ आर्थिक अभाव कारण अलग मकान लेकर रहने में असमर्थ है तो दूसरी तरफ अपने संस्कारों के कारण पत्नी पर शक करता है । वह सुमंत को लेकर सदैव बेचैन रहता है । उसका व्यक्तित्व शकी तथा हीनभावना से ग्रस्त है । वह पत्नी के किसी के साथ हंसने-बोलने पर भी एतराज करता है ।

प्राय: मध्यवर्गीय युवकों का व्यक्तित्व खण्डित होता है । इस खण्डित व्यक्तित्व का मूल कारण मध्यवर्गीय परिस्थितियां हैं । असंगति एक दोषपूर्ण स्थिति है और विरोधी स्थितियां हमें मध्यवर्ग में ज्यादा मिलती है । असंगति परिस्थितियों के वैषम्य का परिणाम होता है और परिस्थितियों की विषमता जितनी मध्यवर्गीय जीवन में है, उतनी अन्य किसी वर्ग के जीवन में नहीं मिलती है । मध्यवर्गीय जीवन की परिस्थितियां अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक परिवर्तनशील होती हैं और इन परिस्थितियों में व्यक्तित्व एक सा नहीं रह जाता । जहां

व्यक्तित्व का विकास एक सा नहीं हो पाता वहीं खण्डित व्यक्तित्व उभरता है । कुमार श्यामा, तिवारी, इसी तरह के पात्र हैं ।

सशक्त व्यक्ति के विकास के लिए पृष्ठभूमि का सशक्त व मजबूत होना आवश्यक है । प्रोत्साहक परिस्थितियाँ इसकी खुराक हैं । उच्च वर्ग में ये दोनों ही सहजता से प्राप्त हो जाती हैं लेकिन मध्य और निम्न वर्ग में इसका अभाव होता है । इस वर्ग की न तो सांस्कृतिक या पारिवारिक परम्पराएं ही विशिष्ट होती हैं और न ही आर्थिक स्थिति ही मजबूत होती है । अतः इस वर्ग के युवक को अपने अस्तित्व के लिए इन दोनों से ही संघर्ष करना पड़ता है । संघर्ष की इस प्रक्रिया में मध्यवर्गीय युवक के व्यक्तित्व की गुंजाइश ही कम होती है । सशक्त व्यक्तित्व की बात तो परे हैं । सशक्त व्यक्तित्व के विकास में जीवन मूल्यों का भी अपना प्रभाव होता है जबकि मध्य वर्ग के सारे मूल्य जीवन संघर्ष में ही चूर-चूर हो जाते हैं । नरेश इसी का शिकार है । आर्थिक रूप से वह पत्नी तथा बच्चों को सुरक्षा नहीं दे पाता, लेकिन अपने जीवन मूल्यों की रक्षा में अपने दायित्व को भूल जाता है । उसके लिए तीसरे का व्यक्तित्व सबसे ऊपर है और कारण गौण है ।

मध्यवर्ग का युवक विभिन्न परिस्थितियों में जीवन जीता है जिसके कारण उसमें वैयक्तिक भावना घर कर जाती है । पारिवारिक जिम्मेदारियां व नैतिक तथा सामाजिक मूल्य इतने व्यापक रूप से जीवन को जकड़ लेते हैं कि युवा के सामने इन्हें झटककर दूर कर देने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नज़र नहीं आता है । अंतराल का सारा संघर्ष वैयक्तिक सुख व शांति के लिए है । युवक और युवती विपरीत परिस्थितियों में सामंजस्य नहीं बिठा पाते हैं परिणामस्वरूप उन्हें कुंठा, हीनभावना, आक्रोश, दम्भ, ईर्ष्या, लालच की भावना घर लेती है और इन भ्रष्ट परिस्थितियों में उन्हें हारना ही पड़ता है । "सीमाएं टूटती हैं" कि यह उद्घोषणा गलत नहीं कि "हिन्दुस्तानी नौजवान को अपनी

उम्र की लड़कियों के साथ रोमांस तक करने का हक नहीं है, ये लड़कियाँ सिर्फ ऐसे अधेड़ लोगों की जायदाद है जो वकील है, डाक्टर है, इंजीनियर, प्रोफेसर है, व्यापारी है, जिनके पास मोटरें हैं, पैसा है। लड़कियों को घुमाने के लिए और उन्हें ऐश कराने के लिए।"27 मध्यवर्गीय मानसिकता की यह उबाल उच्च वर्ग की ऐयाशी व शून्यहीनता की ओर इशारा करता है। मध्यवर्गीय युवक का प्रेम और विवाह की असफलता का मुख्य कारण आर्थिक अभाव है। आर्थिक संकट उसके रागात्मक संबंधों को सोख लेती है और बदले में युवा व्यक्तित्व को खण्डित तथा आक्रोशी या फिर पलायनवादी बना देती है।

2.3. निम्न वर्ग का युवक :

इस वर्ग के युवक की पहली समस्या अस्तित्व की होती है। अस्तित्व का संघर्ष जीवन का प्रबलतम संघर्ष होता है। निम्न-वर्गीय परिवारों में यद्यपि सामाजिक मान-सम्मान की अपेक्षा मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति का ही प्रश्न बड़ा होता है। इसीलिए इस वर्ग के युवक जीवन की कठोर वास्तविकताओं से अधिक परिचित होते हैं। ये युवक सामाजिक मान्यताओं व नियमों के प्रति जागरूक होते हुए भी सामाजिक विषमताओं के शिकार हैं। अपने वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए इस वर्ग के युवकों को ज्यादा संघर्ष करना नहीं पड़ता है। आर्थिक अभाव के कारण इस वर्ग के युवक बचपन से ही बाहरी दुनियां की ओर गमन करते हैं और शीघ्र ही जीवन संघर्ष से जुड़ जाते हैं।

"अलग-अलग वैतरणी" का हरी, "अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल" का मोहन, "मुरदाघर" के सभी युवक, "महाभोज" के बिसू, बिंदा निम्न वर्ग के युवकों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

हरी एक निम्न वर्ग का युवक है । पिता की मौत ने उसके बचपन तथा उसकी आकांक्षाओं को छीन लिया है । पढ़ाई छोड़कर वह रोजी-रोटी से जुड़ जाता है । "मैं पढ़ाई छोड़ने के कारण नहीं रो रहा हूं बाबू । वह कलप-कलप कर कहता रहा -- "मैं सब संभालूंगा । खेती बारी पहले ही जैसे होगी । उसका तुम कुछ फिकर मत करो । भगवान् तुम्हारी आंखे अच्छी कर दें । बस, मैं इतना ही चाहता हूं ।"[28] हरी का पिता न चाहते हुए भी हरी को खेती-बारी के जूए में जुतने से रोक नहीं सका । हरी का व्यक्तित्व खेती-बारी के जुए में जुतकर कुण्ठीत हो जाता है । वह कहता है -- "मैं तो करक दरिद्दर हूं ही । न होता ऐसा तो इस कदम खानदान की गाड़ी में इस तरह जुतता क्यों रहता । आंख पर अटोतल लगाये कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहूं तो सभी साले खुश रहेंगे । छः सालों में एक दिन भी ऐसा नहीं रहा होगा कि सात घण्टे, आठ घण्टे कहाकर मिहनत न की हो । ...... जाओ साले चूल्हे भाड़ में । मैंने क्या जिन्दगी भर यह धूरा टालने का ठीका ले रखा है ।"[29] हरी की यह मानसिक उबाल उसकी अधूरी इच्छाओं की ओर संकेत करते हैं । वह मन से स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाता । जिसके परिणामस्वरूप उसके व्यक्तित्व में चिड़चिड़ापन आ जाता है ।

निम्न वर्ग के युवकों में रोजी-रोटी की आवश्यकताओं को छोड़ मध्य वर्ग के युवकों की तरह भविष्य के सपने या महत्वाकांक्षाएं नहीं होती । "अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल" का मोहन जाति से मेहतर है उसके भविष्य के सपने मात्र रोजी-रोटी है । उच्च-वर्गीय संस्कार के दोगलेपन की प्रतिकिया में आक्रोश से भरा हुआ उसका विद्रोहीपन निम्नवर्गीय जाति की सच्चाई बन गया है । समाज के उच्च वर्ग ने सामाजिक सुविधाओं को नैतिकता और धार्मिक आचरण की लक्ष्मण-रेखा से घेर दिया है । ऐसी स्थिति में मोहन का आक्रोश से भर जाना स्वाभाविक है । उसका यह विद्रोह उसके वर्ग का विद्रोह है । वह अपने लिए भी समान सुविधा

और अवसर की आशा रखता है । "मुझे नफरत है इन ऊंची कौमवालों से, साले, सोहबत के शौक में हमारी औरतों को अकेले में दबोचते हैं और फिर उन्हीं से जो बच्चे होते हैं, उन्हें छूते हुए भी घिनाते हैं ।"30 मोहन की यह प्रतिक्रिया हमारे सामाजिक परिवेश की सही अभिव्यक्ति है । उसके जीवन में भंगी जीवन की विवशताएं, रूढियाँ तथा आशंकाओं की स्थिति विद्यमान है । वह अपनी सामाजिक स्थिति से संतुष्ट नहीं है इसीलिए वह विद्रोही मोहन से डकैत मोहन बन जाता है । इस तरह विद्रोही मानसिकता की ऐसी परिणति क्षोभ उत्पन्न करती है और वह वर्ग उत्थान के स्थान पर आत्मभोगी बन जाता है ।

"महाभोज" के बिसू तथा वृंदा दोनों ही निम्न वर्ग के युवक हैं परन्तु शिक्षित होने के कारण इन युवकों में राजनैतिक व सामाजिक चेतना तीव्र है । सामान्यत: [illegible] निम्न वर्ग के युवक शोषण तथा अन्याय के खिलाफ आवाज नहीं उठाते परन्तु ये युवक अपवाद हैं । ये मौजूदा व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते हैं और परिणाम में मृत्यु दण्ड पाते हैं । बिसू और वृंदा की यह चेतना निम्न वर्ग के प्रति इस मानसिकता को -- कि निम्न वर्ग व्यवस्था के खिलाफ आवाज नहीं उठा सकता है, झुठला देती है । यही मार्गदर्शन तथा संगठन के अभाव में उसके साथ न्याय नहीं हो पाता है । व्यवस्था उन्हें निगल जाती है परन्तु शोषण तथा अत्याचार के खिलाफ उनके द्वारा उठाई गयी आवाज सक्सेना के रूप में जिंदा है ।

"मुरदा घर" के युवकों का व्यक्तित्व सम्वेदना की उस जड़ता को छू गया है, जहाँ किसी भी तरह की हलचल शून्य में खो जाती है । पोपट एक ऐसा ही युवक है वह बड़े बनने का ख्वाब देखता है लेकिन उसका यथार्थ सपने से बहुत दूर है । "क्या-क्या सोचा मैं । ये करूंगा । वो करूंगा । अपना ये दिन खत्म हो जायेगा । अपुन भी आराम से

रहेगा, हाजो सेठ के माफक । ये सब भूल के रेती का टोकरा उठाऊं मैं ।"[31] पोपट भी जानता है कि उसके ये सपने कभी भी पूरे नहीं होंगे फिर भी वह सपने देखे कर आनन्द उठाना नहीं छोड़ता और एक दिन रेल की पटरी पर कट कर मर जाता है । उसकी आकांक्षाएं-इच्छाएं उसके साथ ही समाप्त हो जाती हैं । उसकी लाश तक सरकारी कानून की शिकार हो जाती है ।

3. <u>मनोवृत्तियों के आधार पर वर्गीकरण :</u>

युवावस्था जीवन का बहुत ही महत्वपूर्ण काल है । इस काल के प्रारंभ से ही व्यक्ति के अनुभव तथा चरित्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रारंभ हो जाते हैं । बचपन की बहुत सी बातों को युवा छोड़ देना चाहता है और उसमें बहुत सी नयी बातें सीखने की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है । अब उसमें भले-बूरे की अधिक पहचान जागृत होती है । फलत: उसका विवेक पहले से अधिक चैतन्य हो उठता है । इस विवेक के आधार पर वह अपने एक नये और अनोखे चरित्र और व्यक्तित्व के निर्माण में लग जाता है । इस काल में व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक आदि कई प्रकार के परिवर्तन होते हैं । यदि इन परिवर्तनों की गति को सही दिशा में अग्रसर नहीं किया जाता तो वह मनोवृत्तियों के शिकार हो जाते हैं ।

मनोविज्ञान के व्यक्ति की अन्तर्मुखता तथा बहिर्मुखता का कारण बहुत कुछ अनुवांशिक तथा जन्मजात माना जाता है परन्तु समाज शास्त्र की दृष्टि से इनके प्रभावक कारणों को व्यक्ति की बाह्य परिस्थितियों में तलाशा जाता है । सामान्यत: यह माना जाता है कि संघर्ष व्यक्ति को बहिर्मुखी तथा निष्क्रीयता व ऐयाशी अन्तर्मुखी बनाते है । परन्तु

आज के युग में यह सही नहीं है । क्योंकि संघर्षरत तथा निष्क्रीय व्यक्ति में ये दोनों ही प्रवृत्तियां देखी जाती है । कुछ युवक ऐसे भी होते हैं । जो मौजूदा समस्या या संघर्ष से पलायन कर जाते हैं । वास्तव में व्यक्ति का मनोवृत्तियों का संबंध उसकी सफलता तथा असफलता से है ।

5.1. बहिर्मुखी युवा :

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बहिर्मुखी व्यक्ति सामाजिक तथा किसी के भी साथ शीघ्र घुल-मिल जानेवाला होता है, वह सभी प्रकार के सामाजिक संगठनों-सभाओं में भाग लेता है, अपने विचारों को सहजता से बिना किसी की परवाह किये अभिव्यक्त करता है । वह सभी के साथ स्नेह का रिश्ता जोड़ता है लेकिन उसके ये रिश्ते स्थाई नहीं होते हैं । वह अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है । बहिर्मुखी युवक में किसी प्रकार भी गांठ नहीं होती, वह द्वन्द्व से मुक्त होता है । उसे जो उचित लगता है, वही करता है । असफलता उसको कुंठीत या हताश नहीं कर पाती बल्कि और ज्यादा शक्ति के साथ संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है । ये युवक भाग्य से ज्यादा कर्म में विश्वास रखनेवाले होते हैं । इस प्रकार के युवकों में सूझबूझ तथा दूर-दर्शिता की थोड़ी कमी होती है ।

"अलग-अलग वैतरणी" के शशिकान्त, देवनाथ, "महाभोज" का वृंदा, जोरावर, "गली आगे मुड़ती है" के देवेन्द्र, हरिमंगल, आरती, बीमार शहर" की मिस गोरा, शोभना, "अब मैं नाचो बहुत गोपाल" के मोहन, निर्गुनिया आदि पात्र ऐसे ही बहिर्मुखी व्यक्तित्ववाले युवक/ युवतियां हैं ।

इन युवकों एवं युवतियों में कल्पना तथा चिंतनशीलता की अपेक्षा कर्मण्यता अधिक दिखाई पड़ती है । शशिकान्त, देवनाथ तथा वृंदा कर्म के पहले चिंतनशील दिखाई नहीं देते हैं । शशिकान्त जो कि स्कूल का एक नया प्राध्यापक बनकर आता है, आते ही स्कूल के लिए एक बिल्डिंग तथा बच्चों के खेल-कूद के लिए सामान इकट्ठा करता है । उसे पंडित मुंशी समझाता है कि करैता गांव के बच्चों के लिए कुछ करना बेकार है परन्तु वह नहीं मानता और अपने विश्वास तथा कर्म के बल पर बच्चों के मनोरंजन के लिए कुछ सामान उपलब्ध करवाता है । शशिकान्त अपने विचारों को दूसरों के सामने रखकर उनसे राय लेता है लेकिन उसे जो उचित जान पड़ता वही करता है ।

"महाभोज" में वृंदा की विचार-भूमि शशिकान्त से अलग है वह राजनैतिक शोषण का शिकार है । वह अपने दोस्त बिसू की मौत का बदला लेना चाहता है । वह पुलिस, व्यवस्था तथा प्रशासन से नहीं डरता । उसके द्वारा कहे गये हर शब्द में आत्मविश्वास और छल-कपट से अलग सहजता मिलती है । खुली सभा में वह दा साहब को चुनौती देता है । वह पुलिस अधिकारी सक्सेना की जाँच पर प्रशासन के चेहरे को नंगा करता है । "पुरानी बातों से बहकाई मत । बिसू की मौत का हिसाब लेकर ही रहूँगा, मैं आपसे ..... पाई-पाई का हिसाब । बिंदा डरेगा भी नहीं, ... चुप भी नहीं रहेगा और बिकेगा भी नहीं इन टुकडों से, जो आप डालने आये हैं ।"[31] वृंदा के इस कथन से एक तरफ भ्रष्ट प्रशासन को चुनौती है तो दूसरी तरफ उसके गुस्सैल व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति। वह प्रशासन के हर पुर्जे को पहचानता है इसीलिए निडर है ।

"अन्तराल" में सोमा का व्यक्तित्व युवतियों की बहिर्मुखता का प्रतिनिधित्व करता है । आर्थिक कमी के कारण वह भाभी श्यामा के साथ

एक कमरे में रहती है लेकिन अपनी आदतों को खुल कर श्यामा के सामने रखती है । उसे सिगरेट पीने या देर रात गये घर वापस आने में कोई बुराई नहीं दिखाई देती । इसीलिए वह श्यामा से कहती है -- "जो खुश रह सकते हैं, वे खुशी की परिभाषा नहीं ढूंढते । जिन्हें खुशी नहीं मिलती, वही इस बारे में चिन्ता किया करते हैं ।"[32] सीमा के इस कथन में उसके स्वच्छन्द तथा चिन्तामुक्त व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । सीमा एक आजाद युवती है । उसे सिर्फ अपने सुखों की परवाह है । श्यामा की तरह उसके व्यवहार तथा व्यक्तित्व में चिंता तथा आशंका नहीं है । वह जो सोचती है वही करती है । उसे कहीं और सुख की तलाश नहीं है । वह हर स्थिति में अपने आपको सुखी महसूस करती है । सीमा के इस व्यक्तित्व पर शहरी परिवेश का प्रभाव है इसीलिए उसकी दृष्टि में सामाजिक नैतिकता, मान-मर्यादा की परीभाषा अलग है ।

3.2. अन्तर्मुखी युवा :

बहिर्मुखी प्रवृत्तियों के ठीक विपरीत अन्तर्मुखी प्रवृत्तियां होती हैं । अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के व्यक्ति आत्म-चिंतन में लगे रहते हैं । ये यथार्थ जगत् की अपेक्षा कल्पना लोक में अधिक विचरण करते हैं । व्यक्ति पहले अपने सिद्धान्तों तथा मान्यताओं की भावभूमि तैयार करते हैं और फिर उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयास करते हैं । इस वर्ग के युवक अपनी भावनाओं की सीधी व सपाट ~~की~~ अभिव्यक्ति नहीं कर पाते । किन्तु अभिव्यक्ति न कर पाने की पीड़ा का अनुभव अवश्य करते हैं । वास्तव में अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के युवक एक साथ दो धरातल पर जीते हैं । एक उनका जो रोमांटिक है तो दूसरा यथार्थ व वास्तविकताओं की दुनिया इस प्रवृत्ति के युवक कर्मक्षेत्र में उतरने से पहले अनेक बार चिन्तन करते हैं ।। इनके लिए कर्म से ज्यादा परिणाम महत्वपूर्ण होता है । इनका कर्म तथा

मार्ग परिणाम के अनुरूप ही होता है । भावुकता इस प्रवृत्ति की पहली निशानी है । इस प्रवृत्ति के युवक हर तरह के लोगों से संबंध या दोस्ती नहीं करते हैं । संबंध या दोस्ती करने से पहले ये युवा कहीं न कहीं समानता को तलाश करते हैं ।

युवा व्यक्ति में अन्तर्मुखी प्रवृत्ति ज्यादा दिखाई पड़ती है । भावुकता के कारण युवा किसी से भी गहरा संबंध बना लेता है और उसके खरा न उतरने पर उतनी ही तीव्रता से वह नफरत भी करता है । इनका मन इतना कोमल होता है कि जरा भी चोट लगने पर प्रतिक्रिया उससे कहीं बढ़कर विपरीत दिशा में होती है ।

आठवें दशक के उपन्यासों में ऐसे पात्रों की भरमार है जो अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के शिकार हैं । "महाभोज" का बिसू, "अलग-अलग वैतरणी" का विपिन, "सीमाएं टूटती है" की चांद, राज, "रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका, "भ्रम भंग" का चन्दन, "बेघर" का परमजीत, "तीसरा आदमी" का नरेश, "काली आंधी" की मालती, "उसका शहर" का मित्र लतिका, लूपिका, "बीमार शहर का" शेखर, मंजरी, तथा "लाल-पीली ज़मीन" का केशव आदि अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के युवक तथा युवतियां हैं। इस प्रवृत्ति के युवक व्यवहारिक दुनियां में अपनी मान्यताओं व सिद्धान्तोंवाली दुनिया के साथ उतरते हैं । वे चाहते हैं कि ये दुनियां भी जैसा वे चाहते हैं वैसी ही चले और उनकी सभी कपोल-कल्पनाएं फलीभूत हों । परन्तु जब यह कठोर दुनियां उनके सपनों को ठोकर मारती है तथा अपने परिवेश में तोड़ती-मरोड़ती है तो ये युवक और अधिक अन्तर्मुखी हो जाते हैं । उनमें निराशा, हताशा, कुंठा या फिर विद्रोह, तोड-फोड़ की कार्रवाई अथवा पलायनवादी प्रवृत्ति जन्म लेती है और ये जीवन की राह से जुदा होकर आत्मपीड़ा में लीन हो जाते

हैं । "भ्रम भंग" का चन्दन इसी प्रकार का युवक है । वह गांव से बड़े सुनहरे सपने लेकर बंबई के रेलवे स्टेशन पर उतरता है । वह अपने परिवार तथा स्वयं को उन सभी सुख-सुविधाओं से सराबोर कर देना चाहता है जिन्हें वह या तो किताबों में पढ़ा है या फिर फिल्मों के रंगीन परदे पर देखा है । बंबई शहर की कठोरताएं उसे एक ही झटके में जमीन पर ला देती है । दूर-दूर तक फैले हुए घर, कितनी लंबी-लंबी दूरियां । एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक । एक कमरे का घर आदि उसे बहुत झकझोरते हैं । वह महसूस करता है कि इस भीड़ में न तो कोई अपना है और न ही कुछ अपना है । सभी तरफ एक बेगानापन है । ऐसे शहर में यदि अपने भी बेगाने नज़र आये तो व्यक्ति और भी अंतर्मुखी हो जायेगा। चन्दन के साथ यही घटना घटती है । जो रिश्ते उसे कभी सुखद लगते थे आज वे ही दर्द के कारण बने हुए हैं । मां का आंचल जो कभी साहस बंधाता था, आज उससे जलन महसूस होती है । "कहां से कहां आ गिरे चन्दन ..... कितने ऊंचे-ऊंचे सपने देखते थे । अब कितनी छोटी-छोटी बातों में उलझ गये हो तुम । सभी के साथ ऐसा होता है चन्दन । सच मनुष्य नाम का प्राणी यह कितने विरोधाभासों में अपना जीवन जीता है । समाज ..... व्यक्तित्व-मानस, मान्यताएं ..... आदर्श सब बडे-बडे शब्द और सभी तो वास्तविक जीवन की पत्थरसी समस्याओं के सामने हवा होते हैं ।"[33] चन्दन का परिवेश ही चन्दन को अन्तर्मुखी बना देता है ।

"लाल-पीली ज़मीन" में केशव भी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का युवक है । वह अन्य गांव के लड़कों के समान ही युवा है लेकिन वह उनकी तरह कुछ कर नहीं सकता । घर में मां-बाप का कड़ा अनुशासन तथा बाहर गुंडो का गुट, उसे अन्तर्मुखी बना देते हैं । अपने परिवेश के संबंध में केशव स्वीकारता है कि वह इस संसार में बेमकसदी का फेंका हुआ ढेला

है । केशव की मानसिकता को आतंक और भय ने अधिक प्रभावित किया है । हर क्षण वह किसी अज्ञात भय से सशंकित रहता है । पिता का कारखानेवाला व्यवहार उसे और भी भयभीत और कमजोर बनाता है । इसका परिणाम यह होता है कि उसका परिवर्तन का भी मन विपरीत परिस्थिति के साथ संघर्ष नहीं कर पाता । स्थितियों की विपरीतता पर वह आक्रोश से भर जाता है लेकिन उससे संघर्ष करना नहीं चाहता । धीरे-धीरे वह परिस्थितियों से समझौता करता हुआ शिथिल सा हो जाता है ।

आधुनिक सभ्यता ने वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर ऐसी अन्तर्विरोधी स्थितियों को जन्म दिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति हर क्षण अपने को भूखमरी, बीमारी, प्रताड़ना तथा दुर्घटनाओं तथा मौत के खुले हुए आकाश के नीचे संत्रास एवं असुरक्षा की भावना का अनुभव करता है । युवा वर्ग भी इससे परे नहीं है । आज के अधिकांश व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा और स्वार्थों की सिद्धि के लिए छल, प्रपंच और अभिनय द्वारा दूसरों को ठगने के लिए कुछ विवश सा हो गया है पर इस युग की सबसे बड़ी दुर्घटना तो यह है कि आज अपने प्रति भी ईमानदार नहीं रह गये । दोहरे व्यक्तित्व ही नहीं, टूटे बंटे उखड़े और इकहरे व्यक्ति भी अपने अहम् की रक्षा के लिए अपने आप से झूठ बोलने तथा अपने आप को भ्रम में रखने को विवश हो गये हैं । अत: ऐसे परिवेशगत आवश्यकताओं की पूर्ति में युवा का व्यक्तित्व दोहरा तथा अन्तर्मुखी है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

3.3. समझौतावादी युवा मानस :

विज्ञान और औद्योगीकरण ने व्यक्ति की चारों तरफ जिस कृत्रिम वातावरण को जन्म दिया है उसमें व्यक्ति के सामने सबसे पहला प्रश्न अस्तित्व का उठता है । विरोधी परिस्थितियों तथा संस्कारों के

बीच अपने को खपाने का, ऐसी स्थिति में व्यक्ति के सामने दो ही विकल्प हैं -- एक तो वह अपने वातावरण को अपने अनुकूल बनाने के लिए संघर्ष करें, टूट जाय और व्यक्तित्व के भयंकर विस्फोटों का शिकार बने। दूसरा यह कि अपने को वातावरण के अनुकूल ढाले और युग-जीवन की मशीन का एक अंग बन जाय। आज के समाज का औसत व्यक्ति द्वितीय मार्ग को अपाने के लिए ही विवश है। चूँकि युवा एक औसत व्यक्ति से अधिक है। उसमें शक्ति का भण्डार है। अत: उसे पहला मार्ग आकर्षित करता है। लेकिन अनुभव व दोस्तों की सीख व ऐतिहासिक घटनाओं को देखने और समझनेवाले युवक द्वितीय मार्ग को अपनाने में ही अपना भला समझते हैं। मूलत: इस प्रकृति के युवक चतुर, धैर्यवान तथा अवसरभोगी व सुविधाभोगी होते हैं। उनके लिए सारी नैतिकता और आत्मा की आवाज एक तरफ और रोजी-रोटी का प्रश्न दूसरी तरफ होता है। व्यवहारिक जीवन में यह पलडा भारी होता है। नैतिकता की मांग और व्यवहारिक जीवन की आवश्यकताओं के असंतुलन का द्वन्द्व "महाभोज" के महेश में देखा जा सकता है। वह बिसू के विचारों को पुलिस अधिकारी सक्सेना के सामने रखता हुआ कहता है कि -- "वह कहता था कि आप जैसे पढे-लिखे लोग खाली तमाशबीन ही बनकर बैठे रहेंगे तो इन गरीबों की लडाई कौन लडेगा ? जहाँ दिन दहाडे इतना जुलुम होता हो वहाँ कोई कैसे अलग-अलग बैठकर खाली कागज पोतता रह सकता है। ..... अपनी मजबूरी हम उसे कभी नहीं समझा सके।"[34] "भ्रम भंग" का चन्दन जो अन्तर्मुखी है एक मुकाम पर पहुँचकर समझौतावादी बन जाता है। परिस्थितियाँ उसे तोड़ मरोड़कर इस लायक बना देती है कि वह अपनों को ही अपने से दूर कर देने में ही मंगल समझता है। "विकल्प विकल्प.. है चन्दन। अपने में तुम कोई भ्रम ही मत पालो। मत करो अपेक्षा कि सब तुम्हारी ही तरह सोचें। तुम्हारी बतायी राह चलें। इतना क्या कम है कि तुमने उन्हें सोचने समझने लायक बना दिया है। अब कोई उनकी समझ में नहीं आती तो तुम क्यों कलपते हो। चलने दो उन्हें

अपने राह ।"[35]

दोहरे व्यक्तित्व को परिवेशजनित नैतिकता के संदर्भ में कुछ युवक ऐसे भी होते हैं जो जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं एवं महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उचित-अनुचित साधन का अवलंबन करता है, पर समाज की दृष्टि में गिरने से बचने के लिए अपने व्यक्तित्व पर एक खोल धारण कर लेते हैं । ऐसे युवा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विवश कम, महत्वाकांक्षी अधिक होते हैं । वे समझौते को अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति को एक अनिवार्य शर्त मानते हैं । "बीमार शहर" के शेखर का व्यक्तित्व इस कथन को चरितार्थ करता है । वह अन्दर से कुछ और बाहर से कुछ और है । उसके विचार और कर्म में असमानता है ।

"सीमाएं टूटती हैं" का मुकर्जी प्रेम में असफल होने के बावजूद किसी गुफा या दरिया की तलाश नहीं करता है । वह स्थितियों से समझौता करता है । उसका समझौता उसके आक्रोश को दबा नहीं पाता है । "इस देश में सभी जगह नौजवानों को अपने स्वाभाविक प्रेम के क्षेत्र में इसी तरह देश-निकाला दिया जाता है । अच्छी मोटर, अच्छी शराब, अच्छा पैसा, अच्छी प्रेयसी -- यह सब यहां कुछ ही लोगों को मिलता है और यह भी ज्यादातर चालीस की उम्र पार करने के बाद।"[36]

"रथ से गिरी बांसुरी" की शीला, "बीमार शहर" की मंजरी, "उसका शहर" का मित्र, "आपका बंटी" का बंटी, "रिहर्सल" की सुचित्रा "गली आगे मुड़ती है" का तिवारी आदि समझौतावादी पात्र हैं । वास्तव में जीवन स्वयं एक समझौता है और जो जीवित है उसका अर्थ ही है कि उसने कहीं न कहीं पहुंचकर, किसी न किसी क्षेत्र में, किसी न किसी मात्रा में समझौता किया है । आज के युग में समझौतावादी

इसे

होना जीवन की एक शर्त है । इसे ठुकरानेवाला या तो "रिहर्सल" तथा "महाभोज" की रीना तथा वृंदा की तरह मर जाता है या सजा भोगता है या फिर "तीसरा आदमी" के नरेश की तरह निर्वासित हो जाता है।

3.4• असामान्य युवा :

वर्तमान युग की भौतिक एवं यांत्रिक प्रगति के कारण, जीवन की परिस्थितियों में इतनी अस्थिरता और गतिशीलता आ गयी है कि वर्षों व शताब्दियों की बात तो दूर कल और आज की बात का अंतर बीते युगों के वर्षों और महीनों का अन्तर बन गया है । सामान्य व्यक्ति ही नहीं बौद्धिक व आदर्श व्यक्ति भी अपनी कही गयी बातों पर ठहर नहीं पाता । ऐसे पर्यावरण में अतिसंवेदन मन असामान्य बन जाता है और यह असामान्य मन कुछ ऐसा जल-जीवन से पृथक व्यवहार करने लगता है जो उसका नीजी हो या देखने में अलग हो तो उसे असामान्य मानस की उपज माना जाता है । विशेष प्रवृत्तियों में पल कर ऐसे पात्र अति संवेदनशील और अन्तर्मुखी हो जाते हैं और असामान्य आचरण करने लगते हैं । छोटी सी भी असफलता, घटना दुर्व्यवहार इनके कोमल मन को चोट पहुंचाता है और इससे बचने के लिए इस तरह के युवक/युवतियां औरों से अलग नैतिकता बनाते हैं । इनके व्यवहार में स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दता दिखाई देती है । ये सामाजिक विधि-निषेधों को नहीं मानते । इनके इस व्यवहार के पीछे बाल्यावस्था में घटित दुर्घटनाओं का प्रभाव होता है ।

"सुरजमुखी अंधेरे का" की रत्ती इसी प्रकार की असामान्य प्रवृत्ति की लड़की है । बचपन की एक दुर्घटना उसके मानस पर इस कदर हावी हो जाती है कि वह सामान्य रह ही नहीं पाती है । वह महसूस करती है कि -- "वह खुद सिर्फ है । उसका तीखापन, कड़वापन सब मर गये हैं वह फीकी है । एक फीकी औरत । एक लड़की जो कभी लड़की

नहीं थी । एक औरत जो कभी औरत नहीं थी ।"[37] स्त्री इस कदर अन्तर्मुखी होकर कुण्ठित हो जाती है कि उसकी नजर में उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है । "मुझे जहां होना चाहिए मैं वहीं हूं और मुझे कोई मलाल नहीं रीमा ..... प्यारी रीमा, मेरा "आगे" है कहीं । मुझे तो आंखों के सामने आगे-पीछे होती तस्वीरों को देखना भर है बस । ..... मेरा कोई भविष्य नहीं । मेरे आगे कुछ नहीं ।"[38] वास्तव में स्त्री अपराध भावना की शिकार हो जाती है जो उसने किया ही नहीं है ।

"आपका बंटी" का बंटी असामान्य पात्र है । उसकी उम्र मात्र नौ वर्ष है लेकिन इतनी कम उम्र में ही उसकी सोचने-समझने की चेतना तेज़ी से विकास करती है । वह मां-बाप को समझने का प्रयत्न करता है । पिता के साथ से वंचित बंटी भावुक, हठी और अत्यधिक संवेदनशील हो जाता है । वह मां की दूसरी शादी को सहन नहीं कर पाता है और सोचता है अपने आपको तकलीफ देकर मैं मां से बदला लूंगा । मां के साथ डॉ० जोशी को रात के अंधेरे में देखकर उसमें काम की भावना जन्म लेने लगती है । वह असमय ही युवा हो जाता है । "एक बड़ा भारी सा रहस्य था जो उसे एकाएक ही पता लग गया है जैसे। पहले बड़ा डर लगा था फिर अजीब सी घिन उठी और मन गुस्से और घिन के साथ-साथ इच्छा हो रही है कि बार-बार उसी दृश्य को देखें ।"[39]

"गली आगे मुड़ती है" का हरिमंगल भी असामान्य युवा वर्ग के अन्तर्गत आता है । हरिमंगल जैसे युवक सामाजिक अनैतिकता से समझौता नहीं कर पाते हैं । नैतिक वर्जन के कारण उनको कहीं भी ठिकाना नहीं मिलता है । इसलिए उनका सामाजिक मान्यताओं तथा शिष्टाचारों पर से विश्वास टूट जाता है । फलस्वरूप उनके व्यवहार में असाधारणता आ जाती है । हरिमंगल की बात-चीत तथा आचार-व्यवहार में शिष्टता

नहीं है । "अपना मोर्चा" के छात्र इसी प्रकार की असामान्य प्रवृत्तियों के युवक हैं । ज्वान कहते हैं कि -- हे बबुआ । ये चहकती, मचलती, सुबकती, ऊंची एड़ियोंवाली जूतियों के कारण भटकती, बम आंखों और मखमली पुट्टोंवाली अपनी ही बेटियां हैं, अपनी ही बहनें हैं ।"40 ज्वान का यह व्यंग्य सभ्यता के खिलाफ है ।

"रेत की मछली" के पात्र भी असामान्य व्यवहार करते हैं । कुंतल और शोभन पति-पत्नी हैं लेकिन उसकी चचेरी बहन मीनल दाम्पत्य जीवन में दरार ही नहीं डालती बल्कि उन्हें इतनी दूर कर देती है कि दोनों कभी एक नहीं हो पाते । मीनल शोभन की बहन है लेकिन शोभन के साथ उसका रिश्ता प्रेमी-प्रेमिका का है । मीनल और शोभन का रिश्ता सामाजिक संबंधों के लिए कलंक है । कुंतल इनके संबंधों को उजागर करती हुई कहती है -- "मीन के प्रति उनकी आसक्ति के उत्तर में जब कभी मैंने अपनी स्वीकृति जाहिर की थी, उन्होंने कहा था -- "यह तो आवश्यक है कुंतल । मेरे अपने सृजन के लिए आवश्यक है कुंतल । तुम मुझे महान लेखक बनाना चाहती हो ना ? उसके लिए पत्नी के अतिरिक्त प्रेरणा भी तो लेनी होती है न ।"41 पत्नी के अतिरिक्त प्रेरणा भारतीय संस्कृति व मूल्य के खिलाफ है ।

3.5. रूढ़ि व परम्पराविरोधी युवा मानस :

एक युग के विश्वास चाहे उनका आधार धार्मिक हो अथवा सांस्कृतिक, दूसरे युग में आकर रूढ़ि का रूप ग्रहण कर लेते हैं । जो विश्वास अथवा आदर्श, औचित्य, उपयोगिता और अपना युग सापेक्ष्य मूल्य खोकर भी तर्क-बुद्धि के अभाव में पूर्वजों के प्रति श्रद्धा अथवा मात्र परम्परा के नाम पर परम्परा के आग्रहवश जन-जीवन से चिपके रहते हैं, उन्हें ही

रूढ़ि कहा जाता है । भारतीय समाज की अनेक रूढ़ियाँ जनता की धर्मपरायणता का अनुचित लाभ उठानेवाले पंडे-पुजारियों तथा ब्राह्मणों की स्वार्थ दृष्टि का परिणाम हैं । इसी तरह मुस्लिम काल में धर्म, संस्कृति और शील-रक्षा के लिए भी अनेक ऐसी परंपराओं का जन्म हुआ जो आज मूल्यहीन होकर भी अशिक्षित और ग्रामीण समाज में किसी न किसी रूप में विद्यमान है । सती, प्रथा, दहेज प्रथा, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, अस्पृश्यता तथा विविध प्रकार के अंधविश्वास आदि इन रूढ़ियों के अनेक रूप हैं ।

आज के अधिकांश युवक व युवतियां परम्परा तथा रूढ़ियों का विरोध करते हैं । ये समाज में नये मूल्यों की स्थापना के लिए उत्सुक हैं । नये मूल्यों की स्थापना के पीछे युवामानस में वैज्ञानिक तर्कों का आधार है । आज का युवा ऐसी किसी भी मान्यता को अपनाना नहीं चाहता जो उसके जीवन में बाधा उपस्थित करें । इस तरह नैतिक मूल्यों का दिनों-दिन ह्रास होता जा रहा है ।

आठवें दशक के उपन्यासों के युवा रूढ़ियों एवं परम्पराओं का खुलकर विरोध नहीं करते हैं । वे कहीं न कहीं परम्पराओं व रूढ़ियों से जुड़े हुए हैं उनका विरोध परोक्ष रूप से है । "रूकोगी नहीं राधिका" में राधिका द्वारा पिता की दूसरी शादी का विरोध इसी प्रकार का विरोध है । वह पिता की दूसरी शादी और वह भी अपनी सहेली से, का विरोध करती है । परंतु उसका यह विरोध मात्र इसी कारण नहीं है कि उसके मन में यह बात घटित होती है कि वह अपनी सहेली को अब मां के रूप में कैसे देख सकती है, बल्कि उसके विरोध की अभिव्यक्ति प्रेम विभाजन के कारण होता है । वह अपने पिता को किसी दूसरे के साथ बांटना नहीं चाहती है ।

"सीमाएं टूटती हैं" में परिवारवालों से चांद का विरोध भी मान्यताओं एवं परम्पराओं के कारण नहीं है बल्कि वह एक अपराधी पिता की पुत्री कहलाना मानसिक रूप से स्वीकार नहीं कर पाती और इसी प्रतिक्रिया में वह विमल के साथ हो जाती है । चांद का विद्रोह एक तरफ अकेलेपन के कारण है तो दूसरी तरफ उसके पारम्परिक संस्कारों के कारण है । वह अपने दुख-सुख को अपने परिवार के साथ नहीं बांट सकती और पिता का अपराध उसे और भी अन्तर्मुखी बना देता है ।

"उसका शहर" की लूपिका परम्पराओं का विरोधी है लेकिन उसकी व्याख्या स्वतंत्र व्यक्तित्व के पोषण से है । वह ऐसे विवाह की प्रथा को अस्वीकार करती है जिसमें व्यक्तित्व का विकास रूक जाये या विवाह बंधन सा प्रतीत हो । लूपिका पिता के अनैतिक कार्यों से घृणा करती है । लूपिका के लिए एक जिन्दगी जीने के लिए काफी नहीं है । "जिन्दगी को जीने और उसे पूरी तरह निकटता से देखने के लिए एक जिन्दगी काफी नहीं है और जन्मान्तर एक छलावे के अतिरिक्त और कुछ नहीं, इसीलिए किसी भी बाधाओं की अपेक्षा यात्रा करते हुए जीने में ही वह अधिकतम सुविधा महसूस करेगी ।"[42]

"चितकोबरा" में मनु, महेश ने सारी नैतिक परम्पराओं की व्याख्या को बदल दिया है । "बलिदान देने से आत्मा कुंठित हो जाती है ।" जबकि परम्पराओं में बलिदान का अर्थ महानता से है ।

"बीमार शहर" के पात्र हर स्तर पर रूढ़ियों एवं परम्पराओं का विरोध करते हैं । शादी से पूर्व पुरूषों से शारीरिक संबंध स्थापित करना, उनके नैतिक घेरे में आता है । शोभना कहती है कि -- एक टूटने न पाए दूसरा जुड़ जाये यही तो परम्परा है । और मैं परम्परा से घबराती हूं । इसी परम्परा ने मुझे अंधेरे का अभ्यासी बना दिया।"[43]

परम्परा की कट्टरता का भय युवा मानस को अपराध करने या फिर उसे तोड़ने को विवश करता है ।

"अन्तराल" में श्यामा तथा सीमा दोनों परम्पराओं तथा रूढ़ियों का अपनी तरह से विरोध करती हैं । श्यामा जो कि एक (विधवा) है, परम्पराओं को तोड़ने से पहले अनेक बार द्वन्द्व में फंसती और अन्त में तोड़ती हुई एक नयी नैतिकता गढ़ती है । "संबंधों को दिए गए सब नाम केवल सुविधा के लिए हैं ..... वास्तविक संबंध इतने सूक्ष्म होते है और व्यक्ति-व्यक्ति के साथ इतने अलग कि उन्हें नाम दिये ही नहीं जा सकते । मैं तुम्हारे और अपने संबंध में बिना नाम दिये उसमें से सब कुछ पा लेना चाहती थी ।"[44] श्यामा का यह कथन उसके इस मानस को दर्शाता है जिसमें पारम्परिक मूल्यों के प्रति अविश्वास व अनास्था जन्म लेती है ।

इस दशक के कुछ ऐसे भी युवक सामने आते हैं जो परम्परिक मान्यताओं से जकड़े हुए हैं । "बेघर" का परमजीत, अलग-अलग वैतरणी का बुझारथ, "रिहर्सल" की टोना ऐसे ही पात्र हैं । परमजीत, सुमन को चाहता है । लेकिन उसे अपनी पत्नी इसीलिए नहीं बना सकता क्योंकि सुमन के लिए वह पहला व्यक्ति नहीं है । "तीसरा आदमी" का नरेश अपनी पत्नी सुषमा को बहुत प्यार करता है लेकिन सुमंत की शंका उसके मानस में तीसरे का भय उत्पन्न करता है । परिणामस्वरूप वह बिना सोचे-समझे पत्नी को छोड़ देता है ।

उपरोक्त सर्वेक्षण से यही निष्कर्ष निकलता है कि आठवें दशक के युवक परम्पराओं व रूढ़ियों को लेकर मानसिक द्वन्द्व में फंसे हुए हैं । संस्कार इन्हें तोड़ने से रोकते हैं तो परिस्थितियां उन्हें तोड़ने को मजबूर करती हैं ।

3.6. विद्रोही और क्रान्तिकारी मानस :

विद्रोही मनोवृत्ति की चरम परिणति है अपराध भावना। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार विद्रोही मनोवृत्ति के विकास के लिए व्यक्ति की कुंठाएं ही उत्तरदायी हैं। आधुनिक युग का वातावरण एवं परिस्थितियां बढ़ी हुई जीवन की आवश्यकता, आर्थिक असमानता, अर्थोपार्जन की प्रतिस्पर्धा और व्यस्तता भोगवादी जीवन-दर्शन, युगव्यापी बौद्धिकता और अविश्वास, संत्रास एवं असुरक्षा की भावना, अन्तर्बाह्य अशान्ति और घुटन, आवास की समस्या, भीड़-भाड़ भरा पारिवारिक जीवन, दाम्पत्य कलह आदि विविध रूपिणी कुण्ठाओं के लिए उर्वर भूमि प्रस्तुत करते हैं। महानगरीय सभ्यता में आज दाम्पत्य जीवन का जो रूप विकसित हुआ है उसमें बच्चे अल्पायु से ही प्यार के अभाव में कुंठित होने लगते हैं। जिन परिवारों में पति-पत्नी दोनों ही नौकरी करते हैं, अथवा अधिक समय क्लब सिनेमा या मनोरंजन में बिताते हैं और संतान का अधिक समय ऐसे लोगों के सम्पर्क में बीतता है, जिनका उसके साथ केवल कर्त्ता और कर्त्तव्य का संबंध है, जिन परिवारों में माता-पिता आर्थिक तंगदस्ती आपसी तनाव एवं परस्पर अविश्वास से ग्रस्त हैं तथा जिन परिवारों में बच्चे अधिक है और आय भी कम है, उन परिवारों में प्राय: बच्चों का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता। अपने प्रति माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों की उपेक्षा देखकर उसके मन में विभिन्न प्रकार की भावना-ग्रंथियां बनने लगती है, जिनमें से मातृ-विरोधी अथवा पितृ विरोधी भावना अथवा मातृ-पितृ विरोधी भावना ग्रंथियां प्रमुख हैं।

"रूकोगी नहीं राधिका" में इसी उपेक्षा के कारण राधिका पिता का विद्रोह करती है। इस विद्रोही मानस के पीछे मातृविहीन

राधिका के मन में पिता द्वारा भविष्य में की जानेवाली उपेक्षा का डर है। वह नहीं चाहती कि कोई पिता के प्यार में हिस्सेदारी करे या पिता के इतने करीब हो जहां राधिका के प्रति पिता का प्यार बंट जाये। विदेश से वापस लौटने के बाद वह अपने विद्रोह को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विद्रोह बताती है। "किस घर में बाप-बच्चों में संघर्ष नहीं होता? फिर झगड़ा पीढ़ियों के दृष्टिकोण को लेकर नहीं हुआ था। राधिका अपने व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए लड़ी थी। लीक पकड़कर न चलना उसे पापा ने ही तो सिखाया था।"[45] राधिका के लीक पकड़कर न चलने की भावना का सीधा अर्थ स्वतंत्र व्यक्तित्व से है। उसमें पिता के व्यक्तित्व के सामने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व व विचार को बनाने - रखने की लालच है। राधिका का विद्रोह एक जिद्दी बच्चे का विद्रोह है जो किसी प्रतिक्रिया में ना-समझी के कारण मन में उपजता है।

"आपका बंटी" में बंटी का मां के प्रति किया गया विद्रोह राधिका की तरह ही प्रतिक्रिया में ना समझी का ही विद्रोह है। इस विद्रोह का उद्देश्य मां या पिता को दुखित करना है, उन्हें अपने किये पर पुन: सोचने व विश्लेषण के लिए उन्मुख करना है। परन्तु ऐसा होता नहीं है। परिणाम इन युवाओं के पक्ष में नहीं जाता बल्कि वही होता जो बडे लोग चाहते हैं। सकुन और अजय का दाम्पत्य जीवन बिखर गया है। इसके बिखराव के पीछे अहम् की भावना काम करती है। एक दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयास में नित्य नये कारनामों का असर बंटी पर बड़ी तेज़ी से होता है और वह मानसिक कुंठाओं से ग्रस्त हो जाता है। "दोनों ही एक दूसरे की हर बात, हर व्यवहार और हर अदा को एक नया दांव समझने को मजबूर थे और इस मजबूरी ने दोनों के बीच की दूरी को इतना बढाया, इतना बढाया

कि फिर बंटी भी इस खाई को पाटने के लिए सेतु नहीं बन सका, नहीं बना ।"[46] बंटी की सारी उपेक्षा उसके सेतु न बनने के कारण है ।

"महाभोज" में बिंदा और बिसू का विद्रोह प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ है । बिंदा और बिसू का विद्रोह सदियों से पीड़ित निम्न वर्ग का विद्रोह है । चुनाव तथा जीत में इनका इस्तेमाल कर व्यवस्था किस तरह इनका शोषण करती है, इसका ब्यौरा "महाभोज" के इन पात्रों के विद्रोह से सामने आता है । "जब से उसने आगजनी के घटना के प्रमाण जुटाये, वह पागलों को तरह पीछे पड़ा हुआ था, दिल्ली चलने के लिए । मैं यही कहता था अब कुछ होनेवाला नहीं ····· जब सरकार ही सारी बात को दाब-ढांक रही है तो मेरे तेरे भाग दौड़ने से क्या होगा ?" ····· हमने तो सबको देख लिया साहब, एक शराबी सरकार थी, एक यह पिशाची सरकार ····· ससुरे सबके सब एक से ।"[47]

"उसका शहर" में लूपिका का विद्रोह जीवन की एकरसता से है । लूपिका व्यक्तित्व के विकास में एकरसता को बाधक समझती है । एकरसता का अर्थ वह पारम्परिक वैवाहिक जीवन से लेती है । इसीलिए वह विवाह को अनावश्यक मानती है । वह व्यक्तित्व विकास में विवाह के साथ अन्य और सुविधाओं (स्वतंत्रता) की बात स्वीकार करती है । "हर आदमी दूसरे से इतना भिन्न होता है कि उसके विकास के लिए एक ही तरह की सुविधा काफी नहीं है और ऐसा न मिल पाना प्रकारान्तर से उनकी तटस्थता की हत्या है ।"[47] लूपिका का विद्रोह व पिता के प्रति नफरत की भावना दोनों ही मां-पिता के प्रेम के अभाव के कारण पनपता है । मां जिसको उसने देखा ही नहीं है और पिता जो हमेशा मां के प्रति आक्रोश लिए हुए है, लूपिका के व्यक्तित्व में विद्रोह की भावना भरते हैं ।

"अन्तराल" में सीमा तथा श्यामा का विद्रोह नैतिक मान्यताओं के खिलाफ है, सीमा एक फैशनपरस्त युवती है । वह किसी भी नैतिकता को नहीं मानती । उसके अपने शौक हैं, कुछ आदते हैं जो वह छोड़ना नहीं चाहती और आर्थिक तंगी के कारण परिवारवालों के साथ बनी हुई है । जबकि श्याम विधवा होते हुए अन्तर्द्वन्द्वों में उलझी है । वह कभी जिम्मेदारियों से ऊबती है तो कभी नैतिक मूल्यों व अकेलेपन से ।

"अपना मोर्चा" तथा "गली आगे मुड़ती है" में छात्र युवकों की समस्या तथा विद्रोह का स्वर एक है परन्तु स्थितियाँ अलग-अलग । अपना मोर्चा के छात्रों का पूरा का पूरा आक्रोश वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर है । वे क्लास रूम में बैठकर पढ़ना नहीं चाहते । बल्कि वे कुछ करना चाहते हैं । काम उन्हें मिलता नहीं इसलिए पढ़ रहे हैं । पढ़ने और न पढ़ने के पीछे जो द्वन्द्व व विवशता है वही उन्हें विद्रोही बनाती है । घर की आर्थिक तंगी, परिवारवालों की उम्मीदें, भाई-बहनों की आशाएं, माँ-बाप पर लदा कर्ज, बेरोजगारी की बढ़ती तादाद युवकों को हताश कर देती है । उनके सामने संविधान से जुड़े प्रश्न उगे हुए हैं । शिक्षा ऐसी है जिसका रोजगार व व्यवसाय से नाता नहीं है । उसे पढ़कर तथा पैसा खर्च करके क्या फायदा, फिर भी उन्हें पढ़ना है और पढ़ते हैं । उनके हाथों में काम नहीं है । इसीलिए छात्र आन्दोलन करते हैं । कुछ करना चाहिए और इसीलिए मार-पीट करते हैं । छात्रों के इस विद्रोह के पीछे भविष्य का अन्धकार में खो जाना है । इन छात्रों को कोई भविष्य नहीं दिखाई देता है । इसीलिए ये घर से भाग कर विश्वविद्यालय के होस्टल में रहते हैं । भविष्य का खोना ही इनके विद्रोह का कारण है और ये विद्रोही बनने के लिए अभिशप्त हैं ।

३.७· पलायनवादी युवामानस :

व्यक्ति जब बाहर के संघर्ष से पराजित होता है तो उसे हत्या अथवा अन्य अपराध करने की प्रेरणा मिलती है, पर जिस समय उसे अपनों से अनपेक्षित और अप्रत्याशित विश्वासघात मिलता है, उस समय उसमें आत्मघात अथवा जीवन-संग्राम से पलायन की प्रेरणा मिलती है। आधुनिक औद्योगिक सभ्यता ने जो बौद्धिक वातावरण हमारी चारों ओर तैयार किया है, उसमें आज का व्यक्ति अपने ही संबंधियों के बीच अनाथ है, । स्वजनों की भीड़ में अकेला है। उसका कोई नहीं है और न ही वह किसी का है। केवल पैसा वह पोषक है, जो उसको अपनों और औरों से मिलाता है, जोड़ता है। यूं तो हर व्यक्ति इससे अवगत है परन्तु जो नहीं है वह भी अनुभव के बाद इस सत्य को स्वीकार कर लेता है। अधिकांश टूटकर, दोहरे होकर, अपराधी बनकर इस सत्य को झेल जाते हैं। युगानुकूल नया जीवन-दर्शन स्वीकार कर लेते हैं। पर कुछ ऐसे भी होते हैं, जो इस सत्य को तेज़ नहीं सहन कर पाते, और भीरू तथा पलायनवादी बन जाते हैं। वे समय-चक्र की गति को नहीं पहचान पाते और अपनी असफलता और निराशा के मूल कारणों को न समझकर या फिर समझकर भी उससे उबरने के लिए आत्मबल नहीं बटोर पाते या परिस्थितियों में स्वयं को जकड़ा हुआ महसूस करते हैं और उससे उबर नहीं पाते। ऐसा व्यक्ति अपने जीवन की हर विषमता और असफलता को अपनी नियति समझता है। इस नियति से छुटकारा पाने के लिए वह कभी नगरीय सभ्यता से पलायन करता है, तो कभी परिवार से तो कभी दोस्तों से, तो कभी दाम्पत्य जीवन से। यहाँ तक कि कभी व्यक्ति स्वयं से भी पलायन करता है और आत्मपीड़ा की खोल में घुस जाता है। हर दोष, अपराध या गलती के लिए वह स्वयं को जिम्मेदार ठहराता है।

"तीसरा आदमी" का नरेश दाम्पत्य जीवन से पलायन करता है । दाम्पत्य जीवन में तीसरे के उदय के कारण वह पत्नी को गर्भावस्था में छोड़कर अपने नगर आ जाता है । उसके इस कार्य से उसका भीरूपन, अविश्वासी तथा उत्तरदायित्व हीन व्यक्तित्व उभरता है । वर्षों पहले पत्नी को बेसहारा छोड़नेवाला नरेश दाम्पत्य जीवन से पलायन करता है और आत्मचिन्तन में कहता है कि "मैं दुनिया में शायद सबसे शक्की आदमी हूं ।"[48] "अब मेरी दुनियां में मैं हूं और एक वह छाया है जो मुझे अब भी चैन से नहीं बैठने देती ।"[49]

"अलग-अलग वैतरणी" का विपिन पारिवारिक संबंधों से पलायन करता है । वह शहर से पढ़-लिखकर गांव में अपने परिवार में वापस लौटता है लेकिन बदली हुई पारिवारिक स्थिति तथा आंचलिक राजनीति में वह पुन: घुल-मिल नहीं पाता । भ्रष्टाचारों के जाल को पहचानता है लेकिन वह निकल नहीं पाता और न ही कुछ बोल पाता है। वह अपने आप को अकेला महसूस करता है । भाई की चरित्रहीनता तथा भाई के दाम्पत्य जीवन की दरार उसे सामान्य नहीं रहने देते । गांव की राजनीति तथा गुंडई के आगे उसकी सोचने की सामर्थ्य समाप्त हो जाती है और वह शहर की तरफ रुख करता है । विपिन में यह पलायनवादी प्रवृत्ति उसके घर तथा बाहरी परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होती है ।

"रेत की मछली" में कुंतल का पलायन दाम्पत्य जीवन में तीसरे के प्रवेश के कारण है । दाम्पत्य जीवन में तीसरे का प्रवेश कुंतल के लिए असहाय हो जाता है । वह परिस्थितियों से संघर्ष करती है लेकिन भीरू व्यक्ति की तरह और अन्त में हारती है तो उसे अपनी नियति मानती है । " मैं वह अभियुक्त हूं जिसके आदालत में पहुंचने से पहले ही सजा सुना दी गयी । सजा एकान्त कारावास ।"[50]

"सूरजमुखी अंधेरे को" में स्त्री का जीवन तथा काम भावना से पलायन बचपन में घटी एक दुर्घटना तथा उससे उत्पन्न बाहरी अपमान के कारण है । "एक लंबी लड़ाई । हर बार बाजी हार जानेवाली और हर बार हार न माननेवाली ।

हर बार अकेले जूझना । हर बार सिर उठा आगे बढ़ना । हर मोड एक मोड था । भविष्य नहीं ।

भविष्य वह अन्धी आंखोंवाला वक्त बना रहा जिससे रत्ती ने कभी साक्षात्कार नहीं किया ।"[51] रत्ती का बार-बार हारना और हार न मानना भविष्य के लिए संघर्ष है लेकिन वह कभी अपने अपराधबोध से उभर नहीं पाती है । "रत्ती ने बेरहमी से अपने को रौंद दिया -- कल आधी जिन्दगी गुज़र जाने के बाद मैंने वह गुजरा हुआ वक्त देखा था जो मेरा हो सकता था ।"[52] रत्ती में कामभावना के प्रति पलायन प्रवृत्ति है जो धीरे-धीरे उसके व्यक्तित्व को कुंठित करती है । उसका ठंडापन पलायन या विरक्ति के कारण है ।

4. आचरण :

युवा व्यक्तित्व का आकलन उसके आचरण से ही होता है । परिवार तथा समाज में व्यक्तियों के बीच रिश्तों की भरमार रहती है । युवा भी हर किसी से किसी न किसी रिश्ते से बंधा हुआ होता है । इन रिश्तों में कुछ खून के रिश्ते होते हैं तो कुछ सामाजिक तथा धर्म के रिश्ते । आचरण व्यक्तित्व की पहचान है । भाई-बहन के बीच, माता-पिता के साथ, धर्म के रिश्तों के साथ व्यवहार करने हेतु समाज ने कुछ आचरण बनाये हैं जैसे -- बड़ों से विनम्रता से बात करना, बड़ों की बातों को आदेश के रूप में समझना, बड़ों की गलतियों को सही तरह से विश्लेषित करके नम्रतापूर्वक उन्हें बतलाना । भाई-बहनों के साथ

मर्यादा रखना आपस में प्रेमपूर्वक रहना, एक दूसरे को समस्याओं को समझना व समझाना आदि । किसी भी युवा के व्यक्तित्व को जानने के लिए समाज में विभिन्न लोगों के प्रति उसके व्यवहार को देखकर जाना जा सकता है । आचरण पर प्रभाव डालनेवाले बहुत से तत्व होते हैं लेकिन मनोवृत्तियों का प्रभाव सबसे ज्यादा पड़ता है । किसी के भी प्रति अच्छा व्यवहार उसके बाहरी सौन्दर्य में चार चाँद लगा देता है ।

साधारण परिस्थितियों में युवा के आचरण में विनम्रता, स्नेह, मदद की भावना तथा शिष्टता की प्रवृत्ति मिलती है । विषम परिस्थितियों में युवा के आचरण में झुंझलाहट, उग्रता, धर्महीनता तथा अभद्रता अधिक होती है । परिवेशगत विषमता अर्थात् पारिवारिक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के असंतुलन का प्रभाव युवा के आचरण पर पड़ता है । व्यवस्थाजन्य टूटन या व्यक्तिगत टूटन के कारण भी आचरण में उद्दंडता, ढोंग तथा दिखावापन आ जाता है । "महाभोज" में बृंदा के आचरण में राजनैतिक विषमता के कारण असंतुलन पैदा हो गया है । वह खुले आम व्यवस्था को गाली देता है । पुलिस अधिकारी सक्सेना के बुलाने पर पहले वह जाता नहीं है और जब जाता है तो गालियों की बौछार करता है । राजनीतिक की दोहरी चाल उसे एकदम बौखला देती है । वह दा साहब की सभी चालों को समझता है लेकिन सिवाय गाली देने के कुछ कर नहीं सकता । बृंदा के दोस्त बिसू की मौत राजनीति की मोहरा बन चुकी है, सभी उसे भुनाने के लिए लालायित हैं ।

युवक के व्यक्तित्व पर सबसे ज्यादा और पहला प्रभाव घर के परिवेश का होता है । क्योंकि उसके चरित्र गठन का कार्य परिवार में ही होता है । परिवार में रहकर ही वह एक ओर वंशाभिमान की भावनाएं अपनाता है तो दूसरी ओर प्रेमासक्ति ही प्रेम करना सीखता है ।

परिस्थितियों को समझते हुए युवक धीरे-धीरे अपनी जिम्मेदारी, अपना कर्त्तव्य तथा अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जाते हैं । "भ्रमभंग" में चन्दन के व्यक्तित्व में परिवार से स्नेह व घर में बड़े होने के कारण जिम्मेदारी की भावना है । वह अपने भाई-बहनों तथा पिता की जिम्मेदारी को अपने ऊपर लेना अपना नैतिक कर्त्तव्य समझता है । लेकिन जब कर्त्तव्य शोषण में बदल जाता है तो वह उसे परे फेंककर मुक्त भी हो जाता है । चन्दन का आचरण आरंभ से अन्त तक मध्यवर्गीय संस्कार से जकड़ा हुआ है ।

चन्दन की तरह "रिहर्सल" की रीना का आचरण भी उत्तरदायित्व से बंधा हुआ है । वह दिन-रात भूख-पेट मेहनत करती है और किसी तरह अपने भाई-बहनों को बड़ा करना चाहती है । जिम्मेदारी तथा संस्कारों के बोझ तले रीना तथा उसकी बड़ी बहन का दम घुट जाता है लेकिन वे अपने शराबी पिता के प्रति आक्रोश व्यक्त नहीं करती । उनकी गरीबी उनका भाग्य है । "अलग-अलग वैतरणी" के शशीकान्त तथा विपिन का आचरण सभ्य तथा मदद की भावना से भरा हुआ है । विपिन बड़े भाई के दुराचारों को सहन कर जाता है क्योंकि वह छोटा है । जबकि शशीकान्त गाँव के, घर के बड़े बूढ़ों की इज्जत करता है परन्तु सच्चाई से मूँह नहीं मोड़ता । गाँव के ही युवा हरीया के आचरण में कुंठा तथा आक्रोश है । वह विषम परिस्थितियों में पत्नी को गाली बकता है तथा मार-पीट भी करता है । जगेसर एक पुलिस है लेकिन उसके व्यवहार में उद्दंडता तथा नीचता है । वह बड़ा-छोटा नहीं देखता, उसे उम्र का लिहाज नहीं है । सबको जलील करने में ही उसे मजा आता है । जगेसर उन युवाओं का प्रतिनिधि है जो दुराचारों के पुतले होते हैं ।

"अपना मोर्चा" के युवा छात्र बेरोजगारी अध्यापकों को चरीत्रहीनता तथा शिक्षा की अर्थहीनता को लेकर कुंठित हैं जिसके परिणाम-स्वरूप वे कभी व्यवस्था को गाली देते हैं तो कभी घरवालों से दूर भाग कर होस्टल में रहते हैं । शिक्षा की अर्थहीनता उनके मन को आक्रोशी बना देती है । उनके आचरण में उद्दंडता आ जाती है । वे बिना सोचे-समझे भाषा के खिलाफ आन्दोलन करते हैं । पुलिस द्वारा मार-पीट मचाने पर हताश हो जाते हैं । उन्हें जीवन अन्धकारमय लगने लगता है । अपमान को झेलते हुए युवा पुन: संगठित हो पुलिस से उलझते हैं । इन युवा छात्रों के इस आचरण के पीछे दिशाहीनता है । शिक्षा जो वे विश्वविद्यालय से प्राप्त कर रहे हैं, रोज़गार दिलाने में असफल रही है । राजनीतिज्ञ उनकी शक्ति का गलत इस्तेमाल करते हैं। ऐसे विषम वातावरण में उनके व्यवहार में संयम नहीं है । उत्तरदायित्व से भागते हुए ये छात्र युवा जीवन संघर्ष से पहले ही हताश हो जाते हैं । आजकल युवाओं में वैयक्तिकता की भावना बढ़ती जा रही है । इसीलिए वे अपनी वैयक्तिकता के कारण घर से कटे हुए या अलग-अलग महसूस करते हैं । वे परिवार के लोगों की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत लाभ और सुख को ही महत्व देते हैं । "भ्रमभंग" का नन्दू, पुष्पा, "उसका शहर" की दीपिका, "रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका, "सीमाएं टूटती हैं" की चांद आदि ऐसे ही पात्र हैं जो व्यक्तिगत हित के लिए परिवार के सदस्यों को दुखी करते हैं ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि युवा साधारण परिस्थितियों में जितना सहज व भद्र आचरण करता है विषम परिस्थितियों में उतना ही विध्वंसात्मक रूख अपनाता है । उसके आचरण पर मनोवृत्तियों तथा परिस्थितियों का प्रभाव ज्यादा है ।

5. वेषभूषा :

किसी देश की व्यक्ति की वेषभूषा उस देश की संस्कृति को व्यक्त करती है। जिस देश की जैसी सभ्यता होगी वहाँ की वेषभूषा भी वैसी ही होगी। इसीलिए यह कहा जाता है कि जैसा देश वैसा भेष। वेशभूषा देश की सभ्यता व संस्कृति के साथ युवा के व्यक्तित्व व उसकी मनोवृत्तियों को भी जाहिर करती हैं। प्राय: यह देखा जाता है कि - ढीले-ढाले वस्त्र ढीले व सुस्त व्यक्तित्व का परिचायक है जबकि साफ-सुथरा, सही माप व अच्छी दिखनेवाली वेष-भूषा चुस्त व्यक्तित्व को दर्शाता है। परन्तु फैशन के इस सैलाब में किसी विशेष वेश-भूषा का कोई विशेष अर्थ नहीं रह गया है। फैशन का संबंध युवा व्यक्ति से ज्यादा ~~इसे~~ जुड़ा होता है। बदलते फैशन के इस बहाव में सभी व्यक्ति अपने को सजाना चाहते हैं लेकिन युवा वर्ग विशेषकर अपनी वेष-भूषा के प्रति सचेत होता है।

आधुनिक युवकों की वेश-भूषा पर पाश्चात्य प्रभाव के साथ उनकी आर्थिक स्थिति और मनोवृत्ति का प्रभाव अधिक है। किसी पोशाक की पसन्दगी, रंगों का चयन, डिजाइन आदि के पीछे युवा के संस्कार काम करते हैं। वैसे तो आर्थिक स्थिति उनकी मनोवृत्तियों को भी प्रभावित करती है और फैशन तथा आधुनिक दिखने की लालच में व्यक्ति कुछ ऐसी पोशाक भी अपना लेता है जो उसके व्यक्तित्व से मेल नहीं खाती, परन्तु इससे उसकी मानसिक स्थिति (फैशन की रूझान) का पता चलता है।

युवकों की तरह युवतियां भी फैशन का अंधानुकरण करती हैं। लोगों को आकर्षित करने के लिए वे अपने को खूब सजाती-संवारती हैं। "अपना मोर्चा" का ज्ञान युवतियों की फैशनपरस्ती पर व्यंग्य करता

है कि -- "फैशन की होड़ में आप बहुत पीछे हैं । कूतड-उभार साड़ियां, चोंचमार ब्लाउज, लुंगियां -- सब पहनिए । सुनसान सड़क पर भी चलिए तो सैकड़ों आंखों का दबाव झेलिए मगर बताइए तो सही कि आप किधर जा रही हैं ? क्षितिज के पार तो बहुत जा चुकी आप, अब किधर चली ? बबुई ! सच कहूं कि मैं आपको बहुत-बहुत प्यार करता हूं लेकिन इस तरह सजी-संवरी फूल के गजरे की तरह लहराते कहीं देखता हूं तो शर्म से गड़ जाता हूं । कभी तो ऐसा होता कि आप सड़क पर निकलती और मारे डर के मकानों की खिड़कियां और दरवाजे बंद हो जाते, रास्ते विरान पड़ जाते और उन्हें लगता कि यह लड़की नहीं, चमकती हुई कटार आ रही है ।"[53] ज्वान का यह कथन दो बातों की ओर इशारा करता है । पहला तो लड़कियों की फैशनपरस्ती की ओर और दूसरा लड़कों का साथ न देने की ओर । लड़के समस्याओं से लड़ रहे हैं और लड़कियां फैशन और अपनी अदाओं में व्यस्त हैं । उन्हें न तो लड़कों से मतलब है और न ही व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार से ।

"चितकोबरा" में मनु हमेशा अपने वेश-भूषा के प्रति सचेत है । कभी बाल-संवारती है तो कभी आंचल । "सीमाएं टूटती है" में चांद वेश-भूषा को महत्व देती है । चांद भारतीय पहनावे साड़ी की तुलना विदेश नीति से कर उपहास उड़ाता है । "मैं जानती हूं साड़ी अच्छी पोशाक है । इसे पहनकर नारियां बड़ी ग्रेसफूल दिखती है । साड़ी बिल्कुल हमारी फारेन पालिसी की तरह है । इसमें सबकुछ छिपा हुआ है और सब कुछ दिखता भी है । दोनों की धाक सारी दुनिया पर है ।"[54] चांद के इस व्यंग्य से यही जाहिर होता है कि उसे भारतीय पोशाकें पसंद नहीं है । वह पैंट शर्ट पहनती है । जबकि "उसका शहर" में लूपिका साड़ी में ही अपने व्यक्तित्व का निखार पाती है ।

युवतियों की तरह युवक भी अपनी पोशाक बदलते हैं । "अलग-अलग वैतरणी" का शशीकान्त एक अध्यापक होने के नाते खद्दर पहनता है । "भ्रमभंग" में चन्दन एक प्रोफेसर होने के नाते कोट, पैंट, टाई लगाता है । युवतियों की अपेक्षा युवकों के सामने समस्याओं का ढेर तथा उत्तरदायित्व का बोझ अधिक है । इसीलिए इन उपन्यासों में युवक वेश-भूषा के प्रति ज्यादा जागरूक नहीं हैं । उनके सामने रोज़गारी की समस्या, सामाजिक तथा पारिवारिक दायित्व को निभाने की समस्या वेशभूषा से कहीं ज्यादा है ।

6. बात-चीत का ढंग :

बात-चीत भी युवा के व्यक्तित्व को उजागर करती है । बातचीत के दौरान युवा की विनम्रता या अभद्रता, लापरवाही या संयम, धैर्य या आक्रोश, आक्रामकता, एकनिष्ठता तथा कर्मठता आदि झलकते हैं । बातचीत करने का ढंग समाज, परिवार, दोस्त, कालेज तथा कार्यालय आदि में बदलता रहता है । परिवेश व परिस्थितियों के बदलने से बातचीत की भाषा में भी परिवर्तन आ जाता है । परिवार के लोगों में युवा जिस तरह से बात करता या जिस भाषा का प्रयोग करता है उसमें रागात्मक संबंधों की झलक मिलती है । वही युवा जब बाहरी दुनिया के व्यक्तियों से वार्तालाप करता है तो उसमें व्यवहारिकता तथा व्यवसायिकता ज्यादा झलकती है । वह कालेज तथा दोस्तों के बीच बात-चीत में अधिक खुलता व सांकेतिक भाषा का इस्तेमाल करता है । वह दोस्त के बीच हास्य-व्यंग्य की भाषा का प्रयोग करता है । इसके अतिरिक्त यदि युवा समस्याओं से जूझ रहा हो तो उसकी बात-चीत में कडुवापन तथा आक्रोश की भावना अधिक दिखाई देती है । उसकी मानसिक हलचल बातचीत में स्पष्ट होती है ।

बातचीत का ढंग तथा विभिन्न संदर्भों में विभिन्न तरह की भाषा का प्रयोग पारिवारिक संस्कारों से ही मिलता है । परिवार ही वह संस्था है जहां व्यक्ति बातचीत करने की कला व कौशल को प्राप्त करता है और बाहरी दुनियां में वह उसे संवारता या उपयुक्त बनाता है ।

"अपना मोर्चा" के युवा छात्रों की आपसी बातचीत से उनके मन की गांठें खुलती हैं । ज्वान कहते हैं कि -- "कहिए, यहां क्या कर रहे हैं ? मैं पूछता हूं । वे मुझ पर व्यंग्य करते हैं -- खुराफात ढूंढ रहा हूं -- क्यों, अबकी तो शान्ति के आसार हैं ? वे बड़ी ही अवहेलना और दुख से सुनाते हैं -- देखिए, अब तक है !"[55] लड़कों के साथ इस बात-चीत में आक्रोश की भावना विद्यमान है । भाषा और व्यवस्था पर बात-चीत करते हुए ये लड़के पुन: आन्दोलन करने की तैयारी कर रहे हैं । "भाषा ? भाषा मेरे लिए वह नहीं है जो आपके लिए है । हमारे पिछले अनुभव मुझे यह कहने के लिए बाध्य करते हैं कि भाषा का अर्थ हिंदी या अंग्रेजी नहीं है । भाषा का अर्थ है जीने की पद्धति, जीने का ढंग । भाषा यानी जनतंत्र की भाषा, जनतांत्रिक अधिकारों की भाषा, आजादी और सुखी जिन्दगी के हक की भाषा । हम जीने के इस तौर तरीके के लिए लड़ रहे हैं ।"[56] लड़कों के इस चिंतन से उनके राजनैतिक सूझ-बूझ की पहचान मिलती है । ये ही लड़के जब लड़कियों की तरफ मुखातिफ होते हैं तो लड़कियों की निष्क्रियता पर व्यंग्य करते हैं । "आखिर आप क्या चाहती हैं ? पढ़ना ? फिर घण्टे भर से घास पर तिनके क्यों चुग रही हैं ? और अव्वल तो यह पढ़ाई किसलिए ? सिर्फ एक घर और वर के लिए ? केवल यह जान लेने के लिए कि "पन्त छायावादी कवि हैं" या मसालादोसा कैसे बनता है ?"[57] इस व्यंग्य से दो बातें सामने आती है । एक तो यह कि भारतीय समाज में लड़कियों की शिक्षा का अर्थ क्या है ? दूसरा

लड़कियों का सहयोग न पाकर लड़कों के मानस में उनके प्रति नफरत है। उनकी कोमल अदायें युवकों के दिल-दिमाग में घात करती हैं। वे लड़कियों का सहयोग चाहते हैं। छात्र व छात्रा की मानसिकता को एक धरातल पर लाने का प्रयत्न व्यंग्य द्वारा करते हैं। "सीमाएं टूटती है" में राजनाथ एक नैतिक जिम्मेदारी से बंधा हुआ है वह पिता के जेल में रहते बाप नहीं बनना चाहता वह अपनी पत्नी नीता से कहता है कि -- पापा के जेल में रहते मैं बाप नहीं बनना चाहता। मैं नहीं चाहता कि हमारा बच्चा जैसे ही हमारी बोली समझने लगे, वैसे ही उसके कान में पड़े कि उसके दादा ने खून किया है और वे जेल काट रहे हैं। पापा के वापस आ जाने पर बात बदल जायेगी।"[58] राज के इस वार्तालाप से उसके मानसिक हलचल तथा पिता के प्रति नैतिक जिम्मेदारी झलकती है।

"रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका, "अन्तराल" की सीमा "लाल पीली ज़मीन" के पंडित, कल्लू तथा शिवमंगल आदि की आपसी बातचीतों में अक्खड़पन व आक्रोश है। ये युवा पात्र किसी की परवाह नहीं करते। इनकी नज़र में केवल वही ठीक है बाकी सब गलत हैं।

"आपका बंटी" में शकुन के कालेज की स्टाफ अध्यापिकाएं आपस में फैशन तथा पोशाकों की बातचीत करती हैं और एक दूसरे की नकर उतारती हैं। "अलग-अलग वैतरणी" में जगेसर को बड़ों से बात करने की तमीज नहीं है। वह पिता के हम उम्र मिसिर का मजाक उड़ाता हुआ कहता है -- "सब जानते हैं। कौन नहीं जानता इस गांव में? हमको आंख दिखाने की कोशिश मत करो पण्डित। समझे, हमने बड़े-बड़े गुंडों की हेकड़ी निकाल दी है। हां।"[59]

जिस तरह विद्रोह के समय युवकों की बातचीत में उद्दंडता और तीखापन ज्यादा मुखरित होता है ठीक उसी तरह स्नेह व प्यार के वार्तालाप में कोमलता मुखरित होती है । "भ्रमभंग" में चन्दन और सुमन के बीच का वार्तालाप इसका उदाहरण है ।

"मुझे कभी याद करोगे ?

तुम्हें क्या लगता है ?

"यही कि याद करना चाहिए ।

क्यों ?

इसीलिए कि इतनी बुरी स्त्री तुम्हारे जीवन में कभी और नहीं आयेगी ।

सुमन, तुम पागल हो गयी हो .. ?"

मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूं चन्दन । सोचती हूं कई बार सोचा है ।"[60]

7. आदतें और व्यसन :

युवकों में खाने-पीने की आदतें और व्यसन उनकी आर्थिक स्थिति व मनोवृत्तियों से नियंत्रित है । युवक जिन आदतों को बचपन से ही अपनाते आये हैं उनको बड़े होकर छोड़ना मुश्किल हो जाता है लेकिन बहुत सी ऐसी आदतें होती हैं जो वे बड़े होकर अपनाते हैं । व्यसन करने की आदत भी उन आदतों में से एक है । जहां तक खाने-पीने की बात है जिन चीजों को वे पाते हैं उनसे उनकी आर्थिक स्थिति तथा जिस ढंग से खाते-पीते हैं उससे उनकी मानसिक स्थिति का पता चलता है । घर की आर्थिक स्थिति तथा बढ़ती हुई महंगाई के कारण मध्यवर्ग के युवकों को अच्छा खाना नहीं मिल पाता । अत: उनके सामने खाने की पसंदगी का उतना महत्व नहीं है जितना पेट भरने का है । इसके विपरीत उच्च वर्ग के युवकों के सामने यह समस्या

नहीं होती वे अच्छा से अच्छा खाना और विशेष समय में विशिष्ट तरह के व्यंजनों की उनकी मांग होती है । निम्न वर्ग के युवकों के लिए भोजन एक समस्या होती है ।

हर वर्ग के व्यक्ति की वर्ग के अनुरूप अपनी कुछ आदतें होती हैं । प्राय: यह देखा गया है कि समस्याओं में उलझा हुआ व्यक्ति किसी न किसी व्यसन का शिकार हो जाता है । उदाहरण के लिए "बेघर" का परमजीत बंबई में अकेला रहता है और अपने इस अकेलेपन को समाप्त करने के लिए शराब पीता है । शादी के बाद पत्नी की यातनाओं से परेशान होकर परमजीत शराब में डूब जाता है । "भ्रमभंग" का चन्दन नेगी अपनी समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए सिगरेट का सहारा लेता है । वह जानता है कि सामने मुंह बायी समस्याओं का समाधान सिगरेट या शराब नहीं है फिर भी वह अपने आप को रोक नहीं पाता है । जिनमें भावनाओं की गहराई कम लोक परम्पराओं के बाज अधिक होते हैं, ऐसे लोग जीवन के सामान्य धरातल पर जीते और मरते हैं । उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद भी ऐसे लोगों की जीवन शैली सामान्य होती है । असामान्यता से ऐसे लोग या तो पलायन करते है या उनके घोर विरोधी बन जाते हैं ।"रथ से गिरी बांसुरी" का नायक ऐसा ही युवक है । भावुकता में वह कावेरी को अपने घर अपनी पत्नी बनाने के उद्देश्य से लाता है लेकिन सामाजिक भय के कारण वह कावेरी को एक परिचिता बताता है और चिंतित हो शराब पीता है । उसकी नज़र में शराब पीना सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ना नहीं है, बल्कि किसी वेश्या या गानेवाली की नेक लड़की से शादी करना सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन करना है ।

"सोया हुआ जल" में दिनेश शराब पीकर ही क्रांति की बातें करता है । मनों शराब का संबंध ज्ञान से हो । वह नशे में मानवीय नियति की भविष्यवाणी करता है । "याद रखो, आवाज खत्म कर सकते हो लेकिन ये हिलते हुए होंठ नहीं रोक सकते । और एक दिन यही हिलते हुए होंठ दूसरी क्रांति को जन्म देंगे जिसका आधार करूणा पर, संवेदना पर और मानवता पर होगा । तुम्हारा युग शीघ्र ही समाप्त होगा ।"[61]

आजकल के छात्र युवकों में सिगरेट तथा शराब फैशन की तरह चलती हैं । प्रेम में असफलता, लक्ष्य की असफलता, खुशी का आलम, पिकनीक-पार्टी या फिर घर से दुतकार ये सभी स्थितियाँ युवा छात्रों को सिगरेट और शराब की ओर ले जाती है । सिगरेट और शराब युवा संस्कृति का एक हिस्सा बन चुका है । शोर मचानेवाली उजूल-फिजूल की आवाजें युवा संगीत बनती जा रही है । "अपना मोर्चा" में इस स्थिति को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । लड़के सिगरेट पीना अपनी शान समझते हैं । "युवक गर्व से भर जाता है । उसकी आँखें चमक उठती हैं । वह अपनी झेंप मिटाने के लिए सिगरेट की राख झाड़ता है ।"[62] युवकों की इन आदतों व व्यसन को व्यापारी अच्छी तरह समझते हैं । इसीलिए खान चंद लड़के-लड़कियों की तरफ इशारा करते हुए अपने नौकर को समझाता है -- "इनके मूंह न लगो, इनसे दिल्लगी न करो, इन्हें सहो । झेलो । क्योंकि ये हमारे रोज़गार हैं, उसकी आमद हैं । इन्हीं के चलते शहर आबाद है । सड़कें रोशन है, जिन्दगी में खुशियां हैं, मजे ही मजे हैं । जरा सोचों तो सही, ये न होंगे तो हमारी "नेस्कफे" और "बुकब्रांड" का क्या होगा ?, "पांड्स", "सिलफ्कोन", "नाविया", "बिनाका" कहाँ जायेंगे ? "धारीवाला", "लाल इमली" और "माडेला" के उना मालों को कौन पूछेगा ? "टेरालीन" और "टेरिकाट" को मिले क्या होंगी ? "गागल्स",

"रेडियो", "जूते", "ट्रांजिस्टर" "कैमरे", "घड़ियां", "सर्फ", "लक्स" -- गरज कि पूरे देश का क्या होगा ? यह देश जो हमारा है, तुम्हारा है । जब तक दिल्ली को यह राजधानी है न, तभी तक हमारी गंगा में ..... समझा ? इसलिए बोलो मत, ओंठों को सिले रहो । अगर मूंह गालियां उगलता हो और जेबें पैसा, तो सौदा घाटे का नहीं है।"62

इन व्यसन के पीछे मध्य वर्ग के युवक का बेरोजगारी है तो उच्च वर्ग के युवकों की पारिवारिक उपेक्षा । यदि हम उनके मन की गहराई तक जा सके तो उसका कारण निकलेगा परिवारवालों से मुख्य रूप से मां-बाप से उनका असंतोष या परिवार में फैला हुआ तनाव । इन युवकों के मन में अपने परिवारवालों के प्रति एक आंतरिक पीड़ा पायी जाती है । जिसे मिटाने के लिए वे बदनाम रास्तों पर चलकर मानसिक शान्ति प्राप्त करने के प्रयास करते हैं ।

आज का युवक परिस्थितियों के शिकंजे में ऐसा जकड़ा हुआ है कि उससे छूटने की कोशिश में वह दुखों को झुठलाने के लिए नशा करने लगता है । व्यवस्था से संघर्ष करने की शक्ति युवकों में कम है । अपने निराशापूर्ण आक्रोश से मन बहलाने के लिए युवक शराब पीना शुरू करता है । आज के यांत्रिक युग में फिल्म जैसे मनोरंजन के साधन भी व्यसनोत्पादक बन गये हैं । आज का युवक मनोरंजन के इस साधन को ही अधिक मात्रा में अपनाता है । फिल्मों के माध्यम से ही वह व्यसन अपनाने के तरीके कारण तथा परिणाम से आसानी से परिचित हो जाता है । चाय, काफी, बीड़ी, सिगरेट, गांजा, चरस, बियर, ब्रांडी की तरह नाटक और सिनेमा को आज का युवक व्यसन के रूप में अपनाता है । सिनेमाओं में मारधाड़ सेक्स और हिंसा के साथ पाप संगीत की ओर रुझान का यही कारण है । स्टंट फिल्मों की तरह युवकों में हिंसा और सेक्स संबंधी सस्ती पुस्तकों की लोकप्रियता का भी यही राज है । आदत व व्यसन के मामले में युवतियां भी युवकों के पीछे नहीं हैं ।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आठवें दशक के युवकों के व्यक्तित्व में बहिर्मुखता से ज्यादा अन्तर्मुखता है। घर की परिस्थितियों का प्रभाव इन युवकों के व्यक्तित्व पर अधिक है। मध्यवर्गीय युवक घर की परिस्थितियों एवं आर्थिक संकट से घिरे हैं। वे जानते हैं कि विषमता कहाँ है फिर भी वे कुछ कर नहीं सकते हैं। मध्यवर्गीय युवक की प्रमुख समस्या पैसा है जिसको प्राप्त करने की आकांक्षा में वह परिवार को छोड़कर शहर की तरफ गमन करते हैं। जबकि उच्च वर्गीय युवकों का व्यक्तित्व संस्कारों व अकेलेपन से ग्रस्त है। आलोच्य दशक के प्रथम युवक असफलता की स्थिति में हताश व निराश तो होते हैं परन्तु उसे अपनी जिन्दगी की चरम उपलब्धि नहीं समझते और फिर हिम्मत कर संघर्ष करने के लिए खड़े हो जाते हैं। यही उक्त दशक की विशेषता रही है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि ये युवक परम्पराओं और मूल्यों को नकारते तो हैं फिर भी इनसे पूरी तरह मुक्त नहीं है। इनके ना में हां का समर्थन भी है। यही कारण है कि आठवें दशक के उपन्यासों में चित्रित युवाओं के व्यक्तित्व द्वन्द्वित है। ये युवा वर्ग बात-चीत व्यवहार के प्रति काफी सतर्क हैं। बहुत कम ऐसे पात्र हैं, जो मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि आलोच्य दशक के युवा व्यक्ति व मानस अन्य दशकों की तुलना में स्वस्थ व ज्ञानी है। यदि कहीं वह चूक करता है तो वह परिस्थितियों की देन है।

.....

चौथा अध्याय

संदर्भ सूची

1. किशोर मनोविज्ञान की भूमिका, उद्धरित - पृ. 188
2. भ्रम भंग - पृ. 20
3. - वही - पृ. 48
4. - वही - पृ. 139
5. - वही - पृ. 182
6. - वही - पृ. 106
7. अलग अलग वैतरणी - पृ. 165
8. बीमार शहर - पृ. 19
9. - वही - पृ. 1
10. - वही - पृ. 10
11. - वही - पृ. 15
12. रथ से गिरी बांसुरी पृ. 147
13. आपका बंटी पृ. 7
14. - वही - पृ. 8
15. - वही - पृ. 15
16. - वही - पृ. 109
17. - वही - पृ. 114
18. आठवें दशक के हिंदी उपन्यास - पृ. 94
19. रूकोगी नहीं राधिका - पृ. 14

20. अलग-अलग वैतरणी पृ. 420

21. अपना मोर्चा पृ. 25

22. पृ. 26

23. भ्रम भंग पृ. 25

24. - पृ. 87

25. अपना मोर्चा पृ. 27

26. तीसरा आदमी पृ. 54

27. सीमाएं टूटती हैं पृ. 86

28. अलग-अलग वैतरणी पृ. 130

29. - वही - पृ. 133

30. अब मैं नाचौ बहुत गोपाल - पृ. 117

31. मुरदा घर पृ. 170

32. महाभोज पृ. 78

33. अन्तराल पृ. 186

34. भ्रम भंग पृ. 179

35. महाभोज पृ. 106

36. सीमाएं टूटती हैं पृ. 87

37. सुरजमुखी अंधेरे को पृ. 9

38. - वही - पृ. 31

39. आपका बंटी पृ. 150

40. अपना मोर्चा पृ. 15

41. रेत की मछली पृ. 152

42. उसका शहर पृ. 101

43. बीमार शहर पृ. 35

44. अन्तराल पृ. 213

45. रूकोगी नहीं राधिका पृ. 9

46. आपका बंटी पृ. 37

47. महाभोज पृ. 137

48. उसका शहर पृ. 102

48. तीसरा आदमी पृ. 54

49. - वही - पृ. 97

50. रेत की मछली पृ. 195

51. सुरजमुखी अंधेरे की पृ. 38

52. - वही - पृ. 19

53. अपना मोर्चा पृ. 14

54. सीमाएं टूटती हैं पृ. 82

55. अपना मोर्चा पृ. 39

56. - वही - पृ. 79

57. - वही - पृ. 14

58. - वही - पृ. 38

59. अलग-अलग वैतरणी पृ. 318

60. भ्रमभंग पृ. 118

61. सोया हुआ जल - पृ. 55

62. अपना मोर्चा पृ. 15

पांचवां अध्याय

युवामानस : दिशाएं व सम्भावनाएं

"विकसित और विकासमान देशों में सामान्यत: और भारत में विशेषत: युवा अशान्ति पर पुनर्विचार करने से यह स्पष्ट होगा कि किशोर और युवा के संवेग, भावना एवं वृत्ति और उनकी सांस्कृतिक सामाजिक और आर्थिक जीवन-स्थितियां ही उनके वर्तमान अशान्ति, युयुत्सा तथा विद्रोह के लिए एक लंबी सीमा तक प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उत्तरदायी हैं । विकासमान देशों में प्रचलित शिक्षा-व्यवस्था भी युवकों को निराशा और कुंठा को बढ़ाने में सहायक है । क्योंकि शिक्षा व्यवस्था में देश की वर्तमान सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के अनुरूप परिवर्तन नहीं हो सका है ।"[1] आधुनिकीकरण के फलस्वरूप विकासमान समाज में भौतिक उपलब्धियों को हस्तगत करना ही जीवन का उद्देश्य हो गया है । यह भौतिक दृष्टि व्यक्ति तथा समूह दोनों के लिए अभिष्ट बन गयी है । भौतिकता, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, मतभेद की जननी है । यद्यपि आज भारत में ऐसे समाजवादी समाज की स्थापना पर काफी ज़ोर दिया जा रहा है जिसमें सामाजिक न्याय और समता हो, परन्तु वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज मुद्रा-अभिमुख होता जा रहा है ।

पारम्परिक समाज में युवा की भूमिका न के बराबर थी किंतु आधुनिक युग की वर्तमान प्रक्रिया में विज्ञान और तकनीकी ने ऐसी भूमिका अदा की जिसके लिए युवा मानस और युवा शक्ति व दृष्टिकोण ही उपयुक्त है । आज का युवा अपनी शक्ति, सम्भावना और सार्थकता से भली-भांति परिचित है जबकि प्रौढ़ समाज युवा की ऊर्जा और शक्ति को नहीं पहचनाता या पहचानते हुए भी न पहचानने का रवैय्या अपनाता है और युवा को समाज में सम्मानयुक्त स्थान नहीं देता । फलत: अन्तर पीढ़ी संघर्ष का जन्म होता है । आज हमारे देश के सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू में परम्परा और परिवर्तन, प्राचीनता और आधुनिकता में द्वन्द्व है । अग्रज पीढ़ी परम्परा से प्रतिष्ठित जीवन शैली की समर्थक है -- युवा आधुनिकता की रोशनी के लिए आतुर है । फल यह हुआ है कि जीवन-साथी के चुनाव में स्वतंत्रता, व्यवसाय का चुनाव, पारिवारिक स्वरूप अवकाश व्यतीत करने के ढंग, शिक्षा के लोकतंत्रीकरण, विवाह पूर्व पवित्रता या विवाहपूर्व यौन व्यवहार के प्रसंग में दोनों पीढ़ियों का सोच में अन्तर तथा आपसी संघर्ष है ।

आधुनिकीकरण तथा ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी विस्तार का प्रभाव आजके जीवन पर अत्यधिक है और विशेषकर युवा वर्ग इन प्रभावों की चपेट में है । दिनों-दिन की उपलब्धियों और सुविधाओं युवा वर्ग को विशेष रूप से आकर्षित कर रही है । इन आकर्षणों के प्रति युवा वर्ग में ज्ञान, योग्यता, आलोचनाशक्ति तथा उसके विचारों व कार्य में विज्ञान-युग की झलक है । पुस्तकों, भ्रमण तथा संचार माध्यमों के द्वारा ग्रामीण युवक साधारण रूप से तथा शहरी युवक विशेष रूप से आधुनिक रहन-सहन को अपनाना चाहता है । आधुनिक कहलाने व बनने की अभिलाषाएं व आकांक्षाएं क्रमश: तीव्र होती जाती है । किन्तु सीमित आर्थिक साधनों के कारण उनकी इच्छाएं सीमा में बंधकर अतृप्त रह जाती हैं । ये अतृप्त इच्छाएं व महत्वकांक्षाएं मरती नहीं

बल्कि कुंठा, आक्रोश, विद्रोह, निराशा व पलायन के रूप में उभरती हैं। आज का युवा इसी भंवर में फंसा हुआ है।

आर्थिक आवश्यकताएं तथा महानगरों की जीवनशैली परंपरागत जीवन शैली को पूर्णतः बदल दिया है। व्यक्ति विभिन्न प्रकार के धन्धों, व्यवसायों में इस प्रकार व्यस्त है कि वह अपनी सन्तान को जीवन मूल्य, नैतिकता, अधिकार व दायित्व, संबंध, स्नेह, सुरक्षा तथा संपर्क आदि दे नहीं पाते हैं। परिणाम यह होता है कि युग को समझने की शक्ति व दृष्टि युवा को अपने में पैदा करनी पड़ती है। संबंधों की इस भावनात्मक रिक्तता में युवा हर स्तर पर संघर्ष करते हैं। अधूरे ज्ञान व नैतिकता तथा रूढ़ि की गलत व्याख्या उसे परम्परा से अलग कर देती है। इसीलिए वह हर वस्तु को अपनी सुविधानुसार देखना व परखना चाहता है। प्रौढ़ तथा युवा के बीच यहीं से संदेह, संकोच, विचार-वैषम्य व संघर्ष उत्पन्न होता है।

आज का युवक किसी भी जीवन मूल्य या दर्शन को परंपरा के आधार पर अपनाना नहीं चाहता है। वह उसे भलीभांति समझने की कोशिश करते हुए हर तथ्य को खुद भोगकर तथा अपनी मान्यताओं को कसौटी पर कसकर पहचानना चाहता है। वह तर्कपूर्ण व्याख्या के प्रमाण पर ही उसे स्वीकार करता है। इस तरह नयी पीढ़ी की सोच व विचार में वैज्ञानिक प्रवृत्ति अधिक है। वास्तव में इस सोच के पीछे युवा का सुविधापरस्त मानस कार्य करता है। आज वह इस मुकाम पर पहुंच गया है जहां से आगे की राह वैयक्तिकता की ओर जाती है। इसीलिए वह हर तथ्य को वैयक्तिक दृष्टि से तौलता है। उसे अपनी सोच व समझ की परिधि में काट-छांट कर फिट करना चाहता है। वैयक्तिक सुख के इस प्रयास में ही परम्परागत मूल्य तथा नैतिकता टूटते हैं। जीवन में प्राप्त सफलता तथा असफलता ही युवा की भविष्यद्रष्टा बन गयी है और यही उसकी दिशाएं तथा संभावनाओं को तय करती है।

1. सामाजिक व मनोवैज्ञानिक चेतना :

सामाजिक चेतना का अर्थ सामाजिक मान्यताओं के प्रति रुझान से है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और जब वह समाज में रहता है तो उसे सामाजिक मान्यताओं व उसकी प्रणालियों को अपनाना पड़ता है । चूँकि समाज व्यक्तिविशेष से ऊपर होता है । इसीलिए उसकी मान्यताएं वैयक्तिक मान-दण्डों को अस्वीकार करती हैं । आज के औद्योगीक युग में व्यक्ति का आपसी संपर्क कम हो गया है तथा अर्थ जीवन के केन्द्र में स्थापित हो गया है । इसीलिए व्यक्ति में सामाजिक भावना की जगह वैयक्तिक भावना ने ले लिया है । जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति हर तथ्य को वैयक्तिक सुख-सुविधा की दृष्टि से देखता है और यहीं से सामाजिक चेतना में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया है । युवा चिन्तन में यह बदलाव सर्वाधिक है ।

1.1 आस्था का स्वरूप व ईश्वरहीनता :

जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि अपनाने और भावना के स्थान पर तर्कों के प्रयोग की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही हमें परम्पराओं और परम्परागत आदर्शों का खोखलापन दिखायी पड़ा । इस खोखलेपन की अनुभूति ने ही जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यापक अनास्था को जन्म दिया । जनसाधारण के भीतर धर्म और ईश्वर के अस्तित्व के प्रति उठनेवाला संदेह प्रभाव के अभाव में धीरे-धीरे विश्वास में बदल गया और लोगों ने यह अनुभव किया कि अंधविश्वासों में पड़े रहकर वर्तमान युग की परिस्थितियों में अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं की जा सकती । किंतु परम्परा के प्रति जागृत अनास्था केवल परम्परा तक ही सीमित नहीं रही, हम आधुनिकता के प्रति भी अनास्थावान हो उठे । इस अनास्था और अविश्वास का अर्थ यह हुआ है कि हम कहीं के नहीं रहे । अतीत

के त्याज्य होने पर हमें विश्वास तो हो गया लेकिन वर्तमान के ग्राह्य होने पर हमारा विश्वास जम न सका है । आज के युवामानस में यही द्वन्द्व विद्यमान है । एक तरफ वह असफलता, निराशा, हताशा की स्थिति में ईश्वर व जीवन के प्रति अविश्वास तथा अनास्थावान हो उठता है तो वही सफलता में जीवन के प्रति आस्थावान ईश्वर के प्रति आभारी हो उठता है ।

आधुनिक युग में पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में बिखराव के कारण युवकों का विश्वास ही नहीं उनकी जीवन आस्था भी टूटती है । मध्यवर्ग के युवकों में जीवन के प्रति आस्था टूटने का मुख्य कारण आर्थिक लड़ाई में मिलनेवाली निरंतर हार है । "अपना मोर्चा" के छात्र युवा इसी श्रेणी में आते हैं । ये युवक विश्वविद्यालय में कुछ बनने के लिए आते हैं लेकिन व्यवस्था उन्हें हर मोर्चे पर मात देती है । निरंतर हार मिलने के कारण ये युवा जीवन से हताश हो जाते हैं । मार्गदर्शन के अभाव में विद्रोही होकर सड़कों पर जुलूस निकालते हैं । लड़कों का यह सारा संघर्ष रोजगार की तलाश के लिए है । कुछ ऐसे भी युवक हैं जो आर्थिक लड़ाई निरंतर लड़ते रहते हैं । लेकिन जीवन में आस्था रखते हैं । "भ्रम भंग" का चन्दन ऐसा ही युवक है मध्य वर्गीय संस्कारों से ग्रस्त चन्दन जीवन की लड़ाई लड़ता है । उसे जीवन में विश्वास है । "जीवन जीना कितना दर्दनाक है लेकिन मरना कितना शान्त होता है । आदमी मरने के लिए पैदा नहीं होता । अनुभव लेते रहो । अनुभवों का नाम ही जिन्दगी है ।"[2] चन्दन की यह विचारधारा ही उसे जीवन में आस्था रखने को मजबूर करती है । एक बार जब व्यक्ति दर्द को मानसिक स्तर पर स्वीकार कर लेता है तो उसे दर्द नहीं महसूस होता है । चन्दन इसी तरह जीवन दर्द को मानसिक स्तर पर स्वीकार कर चुका है । "गली आगे मुड़ती है" का तिवारी भी इसी तरह जीवन

से संघर्ष करता है । आर्थिक कठिनाई के कारण उसकी माँ उसे आगे पढ़ाना नहीं चाहती लेकिन वह ट्यूशन करके रिसर्च करने का प्रयत्न करता है । जीवन में कुछ करने की प्रबल आकांक्षा ही उसे कठिनाइयों का सामना करने के लिए आत्मबल प्रदान करती है ।

कुछ ऐसे भी युवक होते हैं जो व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और विषमता को सहन नहीं कर पाते और विद्रोही हो जाते हैं । "सीमाएं टूटती है" का राजनाथ इसी प्रकार का युवक है । पिता की गिरफ्तारी पर वह एकदम बौखला उठता है । वह पिता के दोस्त विमल अंकल को पीटना चाहता है लेकिन बड़ा भाई उसे समझाता है कि -- "तुम तो इतने साल यूरोप में रहे हो । दूसरे महायुद्ध के बाद वहाँ आवारगी और अनास्था भले ही पनपी हो, फिर भी नयी पीढ़ी के एक हिस्से में तुम्हें क्या वहाँ किसी विश्वास को खोजने का प्रयास नहीं दिखा ? इसके लिए तुमने उनमें कोई छटपटाहट नहीं पायी ।"[3] राजनाथ को दी गयी इस सीख में युवा की उस मानसिकता की झलक मिलती है जिसमें युवा किसी विश्वास की खोज में रत है । वास्तव में बिना आस्था या विश्वास के जीवन जीना, दर्द सहना या फिर संघर्ष करना, असंभव है । इस बात की पुष्टि आठवें दशक के उपन्यासों के युवा पात्र की विचारधारा से होती है । "बीमार शहर" की शोभना इसी बात को दूसरी तरह से कहती है । "ईश्वर के अस्तित्व की बात जो अब करते हैं, मैं इन्हें भ्रमित समझती हूं । अपने भ्रम को झुठलाने के लिए शायद वे यह कल्पना कर लेते हैं । कल्पना बुरी चीज नहीं है । वह जीवन और जिन्दगी को एक नया उत्साह दे पाती है । इसीलिए ईश्वर की कल्पना की आँखों से देखना गलत नहीं मानती । किन्तु उस पर आँख मूंदकर आस्था रखना पाप समझती हूं।"[4] शोभना की इस व्याख्या में वैज्ञानिक तर्क की झलक है । वह अंधानुकरण के खिलाफ है ।

"सोया हुआ जल" को रतना जीवन का आधार सत्य नहीं मानती । क्योंकि सत्य व्यवहारिक जीवन से अलग कर देता है । "आज की जिन्दगी का आधार सत्य नहीं है । जो जिन्दगी से दूर हटा ले जाय, उस सत्य को लेकर हम क्या करेंगे ।"[5] रतना की यह सोच उसकी व्यवहारिकता को बताता है । रतना जानती है कि सत्य कडुवा होता है और कडुवापन जीवन के लिए अच्छा नहीं होता । अत: जीवन को व्यवहारिक होना चाहिए । "नरक दर नरक" का जगन, "रथ से गिरी बांसुरी" का नायक भी जीवन में आस्था रखते हैं । इसीलिए ये युवा जीवन संघर्ष में हारते नहीं अन्तत: विजय प्राप्त करते हैं । ये युवक इस संघर्ष के दौरान हताश होते हैं लेकिन रणभूमि से हारकर वापस नहीं लौटते हैं ।

प्राय: प्रेम की असफलता युवकों को जीवन राह से गुमराह कर देता है उन्हें जीवन में कुछ और नजर नहीं आता है । लेकिन आठवें दशक के युवा पात्र प्रेम की असफलता को जीवन की असफलता नहीं मानते हैं । "सीमाएं टूटती है" का मुकर्जी, "रूकोगी नहीं राधिका" का अक्षय, मनीष, "अलग-अलग वैतरणी" का विपिन, "बेघर" की मंजरी आदि इसके उदाहरण हैं । ये युवा पात्र प्रेम को जीवन का आवश्यक अंग मानते हैं लेकिन प्रेम की असफलताएं इन्हें जीवन लक्ष्य से दूर नहीं ले जाती है । वास्तव में ये युवा पात्र प्रेम और जीवन दोनों को अलग-अलग मानते हैं । प्रेम में स्वयं को होम करना आज के युवा वर्ग को तर्कसंगत नहीं लगता । ये युवा प्रेम की असफलताओं को मात्र एक दुर्घटना समझते हैं ।

आजकी परिस्थितियां युवतियों को भी अकेले ही जीवन संघर्ष करने पर विवश कर रही है । जीवन में कई प्रकार की टकराहटों के बाद उनमें एक प्रकार का विद्रोह और प्रतिक्रिया के फलस्वरूप आत्म-विश्वास

पैदा हुआ दिखाई देता है । युवतियों के लिए भारतीय समाज में अकेले जीवन बिताना सरल नहीं है । इसके लिए उन्हें बहुत संघर्ष करना पड़ता है । "तीसरा आदमी" की सुषमा पति का साथ छूट जाने के बाद अकेले ही जीवन संघर्ष करती है । उसे पति से अपमान व नफरत प्राप्त होती है । दिल्ली जैसी नगरी में सुषमा अकेले अपने बच्चों के साथ जीवनयापन करती है । "कड़ियां" की नायिका, "अन्तराल" की श्याम "रेत की मछली" की कुंतल ऐसे ही युवतियां हैं जो पति के शाप से शापित हैं लेकिन जीवन में आस्था रखती हैं । अनेक यातनाओं से गुजरते हुए इन युवतियों में आत्मविश्वास आता है । "मरने की बात सोचने से मन में विद्रोह जागता है । अपना-आप एक ऐसे यंत्र की तरह लगता है जो उपयोगी न होने से व्यर्थ पड़ा सड़ रहा है ।"[6]

1.2 मूल्य चेतना :

मूल्य चेतना का अर्थ जीवन के प्रति विचार तथा उसकी मान्यताओं से है । समाज के कुछ अपने जीवन मूल्य होते हैं जिनका संबंध परम्परा तथा ऐतिहासिक संदर्भों से होता है । परिवेश के अनुसार व्यक्ति के जीवन मूल्य में बदलाव आता है । जब व्यक्ति के जीवन मूल्य तथा समाज के मूल्य में अन्तर आता है तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें मूल्यों की विसंगति होती है । ऐसी स्थिति में प्राय: युवा सामाजिक मूल्यों को स्वीकार नहीं करता । वह अपने जीवन मूल्यों की स्वीकृति के लिए प्रयत्नरत होता है । उसे अपने मूल्यों को सामाजिक स्वीकृति देने के लिए संघर्ष करना पड़ता है । कभी-कभी यह संघर्ष इतना तीव्र होता है कि युवा अपने आपको समाज से बहिष्कृत, अकेला या कटा हुआ महसूस करता है । वह समाज तथा अपने परिवार में ही अपने को अकेला तथा बेगाना महसूस करने लगता है । इसके

मानस में सामाजिक मूल्यों को न स्वीकारने तथा अपने मूल्यों को न मनवाने का द्वन्द्व तथा पीड़ा होती है । इसी कारण कभी वह विद्रोह करता है तो कभी खामोशी अपना कर मात्र दर्शक बन जाता है । उसे सारा परिवेश ही टूटा हुआ लगता है । "अलग-अलग वैतरणी" का विपिन तथा "लाल-पीली जमीन" का देशव इसी स्थिति को भोगते हैं । ये युवक सामाजिक मान्यताओं को रूढियों का दर्जा देकर त्यागना चाहते हैं लेकिन परिवेश उन्हें ऐसा नहीं करने देते । विपिन चाहता है कि बड़ा भाई बुझारथ समय की गति को पहचाने । अब सामन्ती प्रथा समाप्त हो गयी है । अत: वह मजदूरों पर जुलम करना छोड़ दे । सभी के साथ मिलकर एक नये परिवेश की रचना करें लेकिन बुझारथ उसे ही अपने समाज से परे कर देता है । वह पत्नी से मेल-मिलाप नहीं रखता, परन्तु गांव की लड़कियों की इज्जत खराब करने में उसे जरा भी संकोच नहीं है ।

युवक जिस समाज में रहता है उसके मूल्यों को स्वीकार करके तथा अनिष्ट मूल्यों को त्याग करते हुए ही जीवन में आगे बढ़ता है । आगे बढ़ने की इस प्रक्रिया में ही नवीन मूल्यों की योजना तथा नये समाज के निर्माण की नींव पड़ती है । ये जीवन मूल्य वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवेश के अनुरूप ही तैयार होते हैं । अत: जब इन परिस्थितियों में अन्तर आता है तो नये मूल्यों को समाज भी स्वीकार करके चलता है ।

आधुनिक युग की अर्थ-सभ्यता ने हानि-लाभ की भावना से प्रेरित व्यावसायिक बुद्धि को जन्म दिया । दया, क्षमा, प्रेम, सहानुभूति आदि मानव मूल्यों का क्षेत्र संकुचित होता गया । अत: जीवन के सभी क्षेत्रों और समाज के सभी वर्गों में यह मनोवृत्ति समान रूप से विकसित नहीं हो सकी । प[illegible]म यह हुआ है कि जीवन मूल्यों में

विरोधाभास उत्पन्न हो गया । आधुनिक युग के पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में इस विरोधाभास की बहुत बड़ी भूमिका है । जहां व्यवहारिक बुद्धि का व्यवसायिक बुद्धि से संघर्ष है, वहीं संबंधों में शिथिलता आ रही है और जहां संघर्ष या विरोधाभास व्यावसायिक बुद्धि और मानवीय मूल्यों के बीच है, वहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति द्वारा शोषित और प्रताड़ित है । यही शोषित तथा प्रताड़ित व्यक्ति कुण्ठाओं और व्यक्तित्व की विकृतियों का शिकार होकर रह गया है । "सीमाएं टूटती हैं" की चांद के व्यक्तित्व में यही विरोधाभास विद्यमान है । एक तरफ वह पिता की गिरफ्तारी से कुण्ठित हो जाती है तो दूसरी तरफ विमल जो पिता का दोस्त और शायद असली अपराधी भी है, से प्रेम करती है । उसका प्रेम-प्रेम नहीं बल्कि अपने अकेलेपन को भरने का साधन है । वह विमल को अंकल कहती है और उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करती है । वह पिता के अपराध (जो शायद गलत है) को मानसिक स्तर पर स्वीकार नहीं कर सकती लेकिन अपराधी विमल को अपना सब कुछ दे सकती है । चांद की यह मूल्य चेतना सामाजिक मूल्य चेतना के खिलाफ है लेकिन उसके वर्तमान परिवेश के खिलाफ नहीं है । उसके विवाह का टूटना, पिता का अपराध उसे समाज से ही अलग कर देता है । राधिका का चरित्र भी इसी तरह समाज से बहिष्कृत है । इसीलिए वह आश्रय के बदले मनीष को अपनाती है ।

परिवर्तन सृष्टि का नियम है । परिवर्तन का संबंध चेतना से है । समाज की गतिशीलता के कारण होनेवाले संक्रमण तथा क्रांति के फलस्वरूप भी जीवन मूल्यों में परिवर्तन आते हैं । इस परिवर्तन के मूलाधार और संभावनाओं से भरपूर युवामानस ही जीवन मूल्यों को एक नयी दृष्टि प्रदान करता है । आठवें दशक के उपन्यासों के युवा पात्रों में जीवन के प्रति एक नयी दृष्टि है । वे नैतिक मूल्यों की नयी परिभाषा गढ़ते हैं ।

.2·। <u>नैतिक चेतना :</u>

भारतीय परम्परा में धर्म के प्रति आस्था के कारण नैतिकता अनैतिकता का माप दण्ड पाप-पुण्य की मान्यताओं पर आधारित था। धर्म ग्रन्थों के वाक्य या धार्मिक विधि-विधान ही पाप-पुण्य को निर्धारण करता था। परन्तु विज्ञान और यंत्र ~~मवक~~ वाद ने धार्मिक विधि-विधान की व्यर्थता और अवैज्ञानिकता प्रमाणित कर दी। पूंजीवादी व्यवस्था ने कर्म-फल संबंधी इहलौकिक मान्यता को झूठा सिद्ध कर दिया। आज युवा वर्ग को पग-पग पर महाभारत सा युद्ध करना पड़ रहा है, जो सत्य-झूठ या पाप-पुण्य का नहीं -- सत्य से सत्य का, झूठ से झूठ का, पाप से पाप का, पुण्य से पुण्य का संघर्ष है। आज के युवा के सामने एक ही सत्य के अनेक रूप, अनेक पक्ष हैं, किसी एक के चयन की समस्या ही एक बड़ी समस्या है। जीवन की यह जटिलता ही युवा को और अधिक जटिल बना देती है।

नैतिक मूल्य सदैव एक बड़ी सीमा तथा देशकाल-सापेक्ष रहे हैं। परन्तु आज के युग में यह एक समस्या बन गया है। व्यक्ति के साथ नैतिकता बदल जाती है। इसका कारण औद्योगिक विकास महानगरीय सभ्यता, नित्य नयी मान्यताओं का टूटना तथा एक ऐसी सभ्यता को अपनाना है जिसकी पृष्ठभूमि में नैतिकता-अनैतिकता का बीज ही न हो। औद्योगीकरण और वैज्ञानिक विकासों ने मनुष्य के मन में रिक्तता की भावना भर दी है। महायुद्धों की विनाश-लीला ने मनुष्य के अस्तित्व पर ही प्रश्न लगा दिया है। अस्तित्व की अनिश्चितता ने मानव मन की नैतिकता को बदलकर भोगवादी दर्शन को बढ़ावा दिया जिसके परिणामस्वरूप युवा मानस ने नैतिकता के पूरे स्वरूप को ही बदल दिया है।

"आपका बंटी" में शकुन यह स्वीकार नहीं करती कि उम्र बीतने

से यौवन समाप्त हो जाता है । इन भावनाओं को समाप्ति वह तृप्ति में ही मानती है । इसीलिए वह अजय को छोड़कर डा० जोशी से शादी करती है । दूसरी शादी करने के लिए उसे समाज या अपने परिवार से इजाजत नहीं लेनी पड़ती बल्कि इसके लिए उसे स्वयं मानसिक स्तर पर तैयारी करनी पड़ती है और वह सोचती है -- "बंटी उसके और अजय के बीच सेतू न बन सका तो वह बाधा भी नहीं बनने देगी ।"[7] शकुन की यह भावना पारम्परिक नैतिकता को तोड़ती है । संतान साधन नहीं होता है लेकिन शकुन बंटी को एक साधन के रूप में भी इस्तेमाल करना चाहती है ।

"बीमार शहर" के युवा पात्र यह मानते हैं कि "पाप कभी पाप से नहीं करता उसके लिए पुण्य ज़रूरी है" लेकिन वे खुलेआम पाप करते हैं क्योंकि उन्हें पारम्परिक नैतिकता में विरोधाभास दिखायी देता है । "पुरूष और स्त्री का आकर्षण एक सहज प्रक्रिया है । ..... सृष्टि को सहज प्रकृति के लिए रात का अन्धेरा चाहिए, लेकिन अंधेरे में जो कुछ होता है, उसका परिणाम किसी को विचित्र नहीं लगता । कि कितने गर्व से नवजात शिशु को दिखाया जाता है । प्रक्रिया तिरस्कृत हो और परिणाम स्वागतेय"[8] इसी की प्रतिक्रिया में वे अंधेरे को पाप नहीं समझते -- "अंधेरा पाप नहीं है । पाप होता तो अंधेरे का प्रतिफल आदर का पात्र नहीं बनता । वह राजसत्ता अधिकारी नहीं बनता ।"[9] यही कारण है कि मिस गोरा की तीनों बेटियां बिना विवाह के धन से सम्पन्न युवकों के साथ रहती है । उन्हें कुछ भी अनैतिक नहीं लगता । जो वास्तव में नैतिकता के प्रति विद्रोह है । शोभना एक सम्पन्न घर की शिक्षित युवती है लेकिन रात-रात भर घर से गायब रहती है । शेखर से उसका अवैध संबंध है लेकिन उसे समाज व परिवार से मुंह छुपाने की ज़रूरत नहीं है । वह जिस परिवेश में पली बड़ी हुई है । वहां पर ये कर्म नैतिकता के विरूद्ध नहीं हैं । शेखर एक युवा साहित्यकार है लेकिन जिन्दगी में स्नेह भी जरूरी है । वह

इसमें

हमारे मन को कलुषित होने से बचा लेता है। तालाब के पानी को मछलियाँ ही साफ रख सकती है।"[10] शेखर पांडवों की द्रौपदी और आज की शोभना की तुलना में कहता है कि -- "यदि वहाँ शोभना होती तो वह निश्चित रूप से चीखकर कहती -- मेरा इन पांच नपुंसक लोगों से कोई संबंध नहीं है। मैं यदि नारी हूँ तो पुरुषों के लिए, शिखंडियों के लिए नहीं। इसीलिए मुझे न जूए में हारा जा सकता है और न खरीदा जा सकता है।"[11] शेखर की यह तुलना परम्परागत नैतिकता तथा वर्तमान नैतिकता की तुलना है। वह यह बताना चाहता है कि आज की नारी पति की सम्पत्ति नहीं है जिसे जुए में हारा जा सके। जिसका सौदा करना पति का अधिकार है। पाप की व्याख्या करता हुआ शेखर कहता है कि -- पाप हमारे मन की कल्पना है। जब यही भ्रम हमारे मन में जमकर बैठ जाता है, तब हम रास्ता भूल जाते हैं।"[12]

विवाह जैसी मान्यताएं शेखर के लिए एक काण्टेक्ट है। "मैं विवाह को एक काण्ट्रेक्ट मान सकता हूँ। सभी अन्य काण्ट्रेक्टों की तरह वह भी तोड़ा या जोड़ा जा सकता है ..... लेकिन इसके लिए सामाजिक ढोंग क्यों ज़रूरी है।"[13] शेखर की इसी मान्यता को अन्तराल का कुमार दुहरता है। "दो आदमी जिस आसानी से जिंदगी भर के रिश्ते में अपने को बांध सकते हैं, उसी आसानी से उससे मुक्त क्यों नहीं हो सकते ? इसीलिए की बांधने में उन्हें समाज का समर्थन प्राप्त था और मुक्त होने में अपने को अकेले महसूस करते हैं।"[14]

"चितकोबरा" का महेश यह मानता ही नहीं कि पति को पत्नी या पत्नी को पति से प्रेम होता है। वह इन रिश्तों को एक अलग नैतिकता गढता है। "अगर समाज में रहनेवाले हर पति को अपनी पत्नी से प्यार होगा और हर पत्नी को पति से तो समाज की भला कौन परवाह करेगा ? बच्चों की परवरिश बंद हो जाएगी ।......

प्यार होने पर कुछ नहीं सूझता है न ? महेश की इस मान्यता के खिलाफ "रिहर्सल" की उर्मिला की मान्यता है कि विवाह के आगे और कुछ नहीं है । वह यह मानती है कि "जो नारी अपने पति को धोखा देती है, वह अगले जन्म में जवानी में ही विधवा हो जाती है और उसे नारकीय दुःख भोगना पड़ता है । उर्मिला की यह नैतिकता आत्मपीड़न से उभरी है । वह गाँव की रहनेवाली भोली भाली लड़की है और दहेज प्रथा की शिकार है । वह इस प्रथा को समाप्त नहीं कर सकती । अतः इसी प्रक्रिया में स्वयं को समाप्त कर देती है । उसे मिट्टी के तेल में जलकर मरना पड़ता है । उर्मिला का पति कामता गँवार तथा अहमी युवा पुरुष का प्रतिनिधित्व करता है । वह अपनी माँ के साथ मिलकर उर्मिला को मारता-पिटता है । वह नैतिक रूढ़ियों से ग्रस्त है । "जर, जोरू और जमीन को अपने हाथ में रखना चाहिए ।"[15] "बेघर" का परमजीत भी इसी तरह कौमार्य की रूढ़ियों से जकड़ा हुआ है । वह एक तरफ बंबई जैसे शहर में रहता है । बंबई जैसी लड़कियों की तरह ही फैशनेबुल लड़की को पत्नी के रूप में देखना चाहता है तो दूसरी तरफ लड़की का कौमार्य मात्र खून निकलने से आँकता है । "सुमन" को वह पत्नी इसलिए नहीं बना सकता कि वह उसके लिए पहला पुरुष नहीं था ।

इस तरह आठवें दशक के युवा पात्रों में नैतिकता को लेकर प्रत्येक युवा की अपनी मान्यताएं हैं । कुछ आधुनिक रंग में इस तरह रंगे हुए हैं कि उन्हें नैतिकता से कोई सरोकार ही नहीं है । उनके वैयक्तिक भोग से ही नैतिकता उत्पन्न होती है, तो वहीं कुछ ऐसे भी पात्र है जो आज के युग में भी नैतिकता की रूढ़ियों में फँसे हुए हैं और अपना जीवन तबाह कर लेते हैं ।

.2·2 अधिकार और दायित्व की भावना :

अधिकार और दायित्व का प्रश्न भी मानव मूल्य चेतना से ही जुड़ा हुआ होता है। युवा का अधिकार तथा दायित्व बच्चों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। युवा से बड़ों के व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। युवा को अपने विवेक के आधार पर अच्छा और बुरा का निर्णय लेना होता है। समाज का नैतिक मापदण्ड क्या है इसका उसे बोध होना चाहिए। नैतिक बोध से ही युवा में अधिकार और दायित्व की भावना जागृत होती है। यदि इन सबको समझने में वह गलती करता है तो सारा उत्तरदायित्व उसी का है।

आठवें दशक के उपन्यासों में चित्रित युवा पात्रों में अधिकार तथा दायित्व की भावना समान रूप से मिलती है किंतु स्वतंत्रता से पूर्व लोगों में दायित्व की भावना ही सर्वोपरि थी लेकिन पश्चात विशेषकर युवा वर्ग में अधिकार की भावना भी जागृत हुई। युवा यह सोचने लगा है कि घर तथा समाज में मेरा भी कुछ अधिकार होता है और उसी अधिकार भावना की सीमा में दायित्व तथा कर्तव्य की भावना नीहित होती है। अत: उसे अपने अधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ा है और आज भी वह संघर्षरत है। लेकिन इस दशक तक आते-आते वह दोनों पक्षों (अधिकार तथा दायित्व) पर समान रूप से चिन्तन करने लगा है। मध्य वर्गीय युवकों में इसका बोध अधिक है। जबकि उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग के युवक इसके प्रति तने जागरूक नहीं है। "गली आगे मुड़ती है" के हरि मंगल, "भ्रम भंग" के चन्दन, "बेघर" के परमजीत, संजीवनी, "सीमाएं टूटती हैं" के राजनाथ, "रूकोगी नहीं राधिका" के अक्षय में यह भावना समान रूप से मिलती है। ये पात्र जहां एक ओर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हैं वही दायित्व को निर्वाह में भी सक्षम हैं।

"भ्रम भंग" का चन्दन एक प्रोफेसर है । वह अपने वर्गीय संस्कार से जकड़ा हुआ है । लेकिन घर का बड़ा लड़का होने के नाते वह अपने अधिकार और दायित्व को अच्छी तरह समझता है । वह रिटायर पिता की शेष सारी जिम्मेदारी को पूरा करना अपना कर्त्तव्य समझता है । परन्तु अपने अधिकारों को छीनते देखकर विचलित हो उठता है । "कर्त्तव्य जिसकी अपेक्षा हर माता-पिता अपनी संतान से करते हैं । मानों सन्तान को दी गयी ममता उसे लिखाना, पढ़ाना सब एक इन्वेस्टमेंट हो जिसे आगे चलकर सूद-दर-सूद चुकाना पड़ता है।"[16] चन्दन का यह विलाप माता-पिता द्वारा शोषण किए जाने के कारण है । उसके माता-पिता कभी समझ ही नहीं पाते कि चन्दन की भी कुछ आवश्यकताएं हैं, उसकी भी कुछ इच्छाएं हैं । वह अनजाने में ही चन्दन का शोषण करते हैं ।

"सीमाएं टूटती हैं" का राजनाथ एक व्यवसायिक युवक है । वह अपनी बहन के लिए सदैव चिन्तित रहता है । "मुझे चाँद पर तरस आता है पापा की गिरफ्तारी के पहले ही उसकी शादी हो गयी होती तो झंझट खत्म होता । पर देरी हमी ने की, उसके बाद पापा पर मुकदमा चल निकला और उन लोगों ने शादी तोड़ दी ।"[17] राजनाथ चाहता है कि चाँद परिस्थितियों को समझे, जैसे वे सभी परिस्थितियों से संघर्ष कर रहे हैं । चाँद भी करे । दुर्घटनाओं के कारण जीवन से मुँह चुराकर अनैतिक कार्य करना कहाँ तक उचित है । वह हर तरह से चाँद को समझना अपना कर्त्तव्य समझता है । अपनी नैतिक जिम्मेदारी मानता है ।

अस्तित्व की लड़ाई के साथ ही अधिकारों की लड़ाई जुड़ी होती है । अधिकार के बिना अस्तित्व शून्य होता है । अधिकार के उपरान्त ही दायित्व या कर्त्तव्य का प्रश्न उठता है । "अपना मोर्चा"

में युवा छात्र पहले अपने अधिकार के लिए ही संघर्ष करते हैं । उनके दिमाग में कुछ प्रश्न उठते हैं । वे सोचते हैं कि संविधान में जब सभी को समान अधिकार प्राप्त हैं तो एक भूखा, नंगा, बेकार और दूसरा स्वर्गीय सुख को क्यों भोग रहा है । "यह संविधान कहता है कि तुम जो चाहो, खा सकते हो, जो चाहो बोल सकते हो, जैसे चाहो रह सकते हो । लेकिन हमें इनमें से कुछ भी करने की छूट क्यों नहीं है ? हम देख रहे हैं कि सामने फलों या मिठाइयों की एक सजी दुकान है, हम भूखे हैं तो क्या, अगर हमारे पास पैसे नहीं हैं तो मौज करें ? भूखों मरें ?[17] भूखे हैं तो क्या, अगर हमारे पास पैसे नहीं है तो मौज करें ? "अलग-अलग वैतरणी" का शशीकान्त एक अध्यापक होने की सारी जिम्मेदारियों व अधिकारों को पहचानता है । वह करैता गांव के स्कूल के लिए नयी ईमारत बनवाना चाहता है और इसके लिए वह गांव के असामाजिक तत्वों से संघर्ष करता है । बच्चों के खेल व मनोरंजन के लिए खेलों का प्रारंभ करता है । वह छात्रों में भी अपने अधिकार और दायित्व को, प्राप्त करने तथा पूरा करने की सीख देता है ।

इन उपन्यासों में कुछ युवा पात्र ऐसे भी मिलते हैं जो परिवार तथा समाज की अपेक्षा वैयक्तिक भलाई में ही संलग्न हैं । घर की भलाई के प्रति जिम्मेदारी तथा निज की उन्नति के बीच जब कभी टकराव होता है तो ये युवा निज की उन्नति को ही प्राथमिकता देते हैं । "बेघर" में संजीवनी का भाई, "रूकोगी नहीं राधिका" में राधिका का भाई, "सीमाएं टूटती है" में चांद का बड़ा भा[illegible] "भ्रम भंग" में नन्दू तथा पुष्पा "आपका बंटी" का अजय आदि ऐसे ही प्रवृत्ति के पात्र हैं । ये पात्र अपनी भलाई व सुख सुविधा के आगे किसी की जिम्मेदारी लेना नहीं चाहते हैं ।

1.3 सामाजिक संबंध और आर्थिक समस्याएं :

वर्तमान युग की औद्योगिक व्यवसायिक प्रगति ने वैज्ञानिक उपलब्धियों को फूलने-फलने का अवसर देकर मानव-समाज की आवश्यकताओं को सीमाहीन बना दिया है। आधुनिक महानगर के बाजारों में पहुंचकर सम्पन्न व्यक्ति को भी अपनी सामर्थ्य के बौनेपन का एहसास हो जाता है। निम्न वर्ग और मध्यवर्ग की बात ही दूसरी है। बढ़ती हुई आवश्यकताओं के साथ-साथ बदलते हुए आर्थिक ढांचे से, मुद्रास्फीति तथा पूंजीवादी, जनित अन्य प्रवृत्तियों के कारण सामान्य व्यक्ति की आय सीमित होती जा रही है। आवश्यकताओं का अनन्त होना और महंगाई के द्वारा आय का सीमित होते जाना, दोनों ही ऐसी परस्पर विरोधी परिस्थितियां हैं, जिसमें ~~समन्व~~ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते-करते आज का सामान्य व्यक्ति टूटता जा रहा है। मध्यवर्गीय व्यक्ति के साथ आर्थिक तंगी के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा का भी जुड़ते जाना उसकी स्थिति को और भी दयनीय बना देता है। बढ़ी हुई आवश्यकताओं और मूल्य वृद्धि के दबाव से उत्पन्न आर्थिक तनाव सामाजिक संबंधों में दरार उत्पन्न कर देता है।

आठवें दशक के उपन्यासों के सामाजिक संबंधों में दरार पड़ने का मुख्य कारण आर्थिक तंगी है। मध्य वर्गीय परिवार, विशेषकर वे परिवार जिनकी सामाजिक प्रतिष्ठा इनकी आय की अपेक्षा कहीं अधिक है, उनका दाम्पत्य जीवन कलहग्रस्त हो उठता है। ऐसे परिवारों के पति-पत्नी को सामाजिक मान-सम्मान की रक्षा और परिवार-पालन के लिए जो यातनाएं झेलनी पड़ती है, उसके परिणामस्वरूप उनके बीच के संबंधों की भावनात्मक मधु[illegible] [illegible]ाघ [illegible] नष्ट हो जाती है। "नरक-दर-नरक" तथा "तीसरा आद[illegible] के [illegible] पात्र आर्थिक समस्याओं के शिकार हैं। आर्थिक संकट ने [illegible] दा[illegible] जीवन को संकट में डाल दिया है।

"अलग-अलग वैतरणी", "लाल-पीली जमीन", "पचपन खम्भे लाल दीवारें" में सामाजिक संबंधों के बीच धन का ही बोलबाला है । युवा से लेकर प्रौढ व्यक्ति तक आर्थिक सुदृढ़ता के लिए नैतिक-अनैतिक कार्य करता है । "अलग-अलग वैतरणी" में पुष्पा का परिवार आर्थिक संकट से घिरा हुआ है । सिर्फ चार सौ रूपयों के लिए उसके घर की कुर्की होनेवाली है । ऐसे समय में वह विपिन की मदद लेती है लेकिन उसे सामाजिक लांछना का शिकार होना पड़ता है । पूरे करैता गांव में वह बदनाम हो जाती है । विपिन का बड़ा भाई इस एहसान के तहत पुष्पा की इज्जत का सौदा करने का असफल प्रयास करता है ।

आज के जीवन में संबंध पैसे के आधार पर बनते-बिगड़ते हैं । इज्जत, मान-मर्यादा सभी का आधार पैसा है । यदि पैसा है तो सबकुछ छुपाया जा सकता है और नहीं है तो सब कुछ सामने आ जाता है ।

पैसा ही समाज की मर्यादा बन चुका है । "सोया हुआ जल" में रतना अपनी प्रेमी के साथ भाग जाती है और जब आर्थिक समस्यायें सामने ~~आतजाती हैं~~ एक-एक करके उभरनी प्रारंभ होती हैं तो वे वापस अपने-अपने घर लौट जाना ही उचित समझते हैं । रतना का प्रेमी किशोर इस बात को लेकर रतना पर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि -- "भैयुया के हाथ में पड़ने से मेरी तो दुर्गत हो जायेगी और तुम्हारा कुछ नहीं होगा । अपने बाबूजी की तुम लाडली बेटी हो। वह तुम्हें दुलार-चुमकार कर फिर रख लेंगे । समाज में भी कोई उंगली उठाने की हिम्मत नहीं कर सकेगा । लोग यही समझ लेंगे कि लड़की अपनी किसी सहेली से मिलने गयी थी । पैसा समाज के नियमों पर हुकुमत करता है । लेकिन हम तो गरीब हैं ।"[8] किशोर का यह कथन समाज के दोहरे नियमों पर चोट करता है । आज तक प्यार में लड़कियां ही धोखा खाती थी

लेकिन अब लड़कों को भी प्यार में धोखा महसूस होने लगा है । किशोर इतना पर यही इल्जाम लगाता है । "इस एक सप्ताह में कितनी परिस्थितियां बदल गयीं ? बाहर से कहीं कुछ नहीं बदला, तुम्हारे मन के भीतर कुछ बदल गया है, बदला हुआ नजर आता है । अच्छा हुआ यह सब अभी से स्पष्ट नजर आ गया । अभी से यह हाल है तो आगे क्या होगा ? तुमने मुझे धोखा दिया है, गहरा धोखा दिया है।"[19] किशोर का यह इल्जाम आर्थिक समस्याओं से संघर्ष करते एवं परास्त होते हुए युवा मानस का उबाल है । उसका दर्द प्रेमिका को सही हालत में न रख पाने के कारण है । उनके प्रेम को आर्थिक संकट का ग्रहण लग जाता है । यही कारण है कि एक सप्ताह में ही गहरा प्रेम नफरत में बदल जाता है ।

आठवें दशक के उपन्यासकारों ने युवा मानस में आर्थिक संघर्ष को मानसिक तथा सामाजिक दोनों ही स्तर पर चित्रित किया है । "भ्रम भंग" का पारिवारिक संबंध आर्थिक अभाव के कारण ही बिखर जाता है । "अन्तराल" में सीमा तथा श्यामा वैचारिक भिन्नताओं के बावजूद एक साथ रहने के लिए विवश हैं । इन युवा पात्रों के सामाजिक संबंधों पर भी आर्थिक अभाव प्रभाव डालता है । सच तो यह है कि आर्थिक स्तर के आधार पर ही युवा वर्ग का सामाजिक संबंध बनता है । बेरोजगार युवक बेरोजगार युवक के साथ जितना हल्का महसूस करता है उतना किसी अन्य के साथ नहीं । "अपना मोर्चा" के युवा पात्र इसके ही पर्याय हैं । समस्याएं एक होने से छात्रों में आपसी संबंध दोस्ताना है ।

आज की समस्याओं, विशेषकर आर्थिक समस्या ने युवा-मानस को इतना विचलित कर दिया है कि अब उसे सामाजिक व पारिवारिक संबंधों पर विश्वास ही नहीं रहा है । घर से बाहर तक उसके सामने समस्याएं ही समस्याएं हैं । यदि वह बेरोजगार है तो, घरवालों का

बूरा-भला सुनना पड़ता है और यदि रोज़गारवाला है तो कार्यालय में कम अनुभव, सहन शक्ति व धैर्यता के कारण मानसिक यातनाओं से गुजरना पड़ता है । समाज व परिवार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिलता जो युवा को सही ढंग से समझ सके । यही वजह है कि जब वह समस्याओं से परास्त होता है तो उसे आत्महत्या करनी पड़ती है या फिर आत्मपीडन की खोल में घुसकर पलायनवादी रास्ता अपनाना पड़ता है और ये दोनों ही रास्ते उसे सामाजिक संबंधों से काटते हैं ।

1.4 साध्य और साधन का स्वरूप :

साध्य और साधन का संबंध भी नैतिकता व मानव जीवन से जुड़ा हुआ प्रश्न है । साध्य का अर्थ लक्ष्य से है । लक्ष्य जो मानव मन पहले बनता है । जीवन का कुछ लक्ष्य होता है । जब व्यक्ति धरती पर जीवन जाता है तो उसके जीने का अवश्य कुछ मकसद होता है । साध्य के अभाव में कर्म विफल हो जाता है । साध्य को प्राप्त करने के लिए जो कर्म किया जाता है वही साधन है । अनेक प्रक्रियाओं से गुजरकर ही मानव अपनी मंजिल तक पहुंचता है । आज के युवा मानस में साध्य व साधन दोनों का स्वरूप अनिश्चित है । वास्तव में आज के युवा वर्ग में सांस्कृतिक भटकाव आ गयी है । उसके सामने न तो कोई आदर्श बचा है और न ही कोई मूल्य । वह जिसे अच्छा समझता है वही बूरा निकलता है । भ्रष्ट राजनीति ने उसे इस कदर बौना बना दिया है कि वह सब कुछ समझ-बूझकर भी मात्र दर्शक बनने के लिए मजबूर है । जिधर देखता है उधर ही उसे राजनीतिक दांव-पेंच के सिवाय कुछ नजर नहीं आता । जीवन की विषमता तथा जटिलता तो वह बचपन से ही देखता आ रहा है । लेकिन उसका स्वरूप उसे आज तक समझ में नहीं आया है कि एक सुखी जीवन की क्या परिभाषा हो सकती

है ? सुख क्या है ? जीवन का मतलब क्या है ? उसको जीवन में एक शून्यता दिखाई देती है । बेरोजगार युवकों के आगे रोजगार का लक्ष्य है लेकिन उसके आगे क्या है वे स्वयं नहीं जानते । लक्ष्य की दिशाहीनता ने साधन के स्वरूप को भी दिशाहीन कर दिया है । सही साधन के अभाव में लक्ष्य प्राप्त नहीं होता । आजके युवा पात्रों में यही दिखाई देता है । वे कुछ करना चाहते हैं लेकिन क्या करना चाहते हैं वे नहीं जानते । इसके लिए क्या करना होगा, उनके लिए यह भी एक प्रश्न है ।

आठवें दशक के उपन्यासों में चित्रित युवाओं के सामने साध्य और साधन दोनों का अभाव है । "रूकोगी नहीं राधिका", "सीमाएं टूटती है", "अन्तराल", "सुरजमुखी अंधेरे की", "तीसरा आदमी", "काली आंधी", "अलग-अलग वैतरणी", "लाल पीली जमीन" आदि उपन्यासों के युवा पात्रों के सामने जीवन का लक्ष्य नहीं है । वे मौजूदा व्यवस्था से खुश नहीं है । व्यवस्था की विसंगतियाँ उन्हें कुण्ठित करती हैं । लेकिन वे कुछ कर नहीं पाते । राधिका के सामने न तो कोई लक्ष्य है और न ही उचित साधन । वह पिता से बदला लेना चाहती है और प्रतिक्रिया में घर छोड़ देती है । इससे उसके जीवन का लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता । लक्ष्य के अभाव में इसका विद्रोह भी असफल होता है और यही परिणाम "सीमाएं टूटती हैं" की चाँद का होता है । दोनों ही वापस घर आती हैं । राधिका अक्षय को इसलिए छोड़ देती है कि शायद वह उसकी बिखी जिन्दगी को बर्दाश्त न कर सके। वह पिता के रोकने पर भी मनीष के साथ चली जाती है । बिना लक्ष्य की राधिका देश से विदेश तक भटकती हुई गलत साधनों का चुनाव करती है । इस तरह भविष्य को समय की धारा में डालकर साध्यहीन जीवन जीना ही जीवन में भटकाव उत्पन्न करता है ।

"अन्तराल" में श्यामा के सामने भी एक लक्ष्यहीन जीवन है । वह देव से शादी करती है, लेकिन शादी उसे रास नहीं आती । वैवाहिक जीवन की कटुता देव के मरने के बाद वह भूला नहीं पाती है और उसमें ही वह अन्तर्द्वन्द्वों का जाल बुनती है । वह कभी स्वयं को दोषी पाती है तो कभी देव व देव के घरवालों को दोषी ठहराती है । उसका पूरा व्यक्तित्व अकेलेपन के तंत्र में उलझा हुआ है । दूसरी तरफ सीमा एक आधुनिक लड़की है लेकिन उसके सामने भी जीवन का लक्ष्य नहीं है । फैशन, रात भर घूमना व सिगरेट पीना ही उसके जीवन की चरम उपलब्धि है ।

"गली आगे मुड़ती है" का हरिमंगल, "नाचो अब मैं बहुत गोपाल" का मोहन इन दोनों के सामने पैसा कमाने का लक्ष्य है । इसीलिए ये साधन पर विचार नहीं करते । मौजूदा व्यवस्था में घिरकर ये युवक अनैतिक साधनों का प्रयोग कर पैसा कमाना चाहते हैं । "रूकोगी नहीं राधिका" में राधिका का भाई ऐशो-आराम की जिन्दगी को प्राप्त करने के लिए ससुराल में ही बस जाता है । "बेघर" का परमजीत, नाटा आदि ऐसे ही युवा पात्र हैं जो पैसा को ही जीवन का लक्ष्य समझते हैं और इसे किसी भी साधन से कमाने में हिचकिचाते नहीं हैं ।

आज के जीवन का लक्ष्य पैसा बन चुका है । औद्योगीक विकास ने पैसे को इतना महत्व दिया है कि सभी रिश्तों व भावनाओं से ऊपर पैसा है । अतः इसके प्रति युवा का अत्यधिक रूझान असामाजिक नहीं लगता है । उच्च वर्ग के युवक पैसा आसानी से कमा लेते हैं । इन्हें जीवनयापन के लिए आर्थिक यातनाओं से गुजरना नहीं पड़ता है । "भ्रम भंग" का चन्दन उच्च वर्ग के युवकों की विलासिता की ओर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि -- "एक और वर्ग है हम लोगों से अलग । ..... जो नर्सिंग होम में जनमते हैं, जिनके लिए जन्म से पहले ही आयाएं रख दी जाती हैं, जो शिक्षा पूरी करने से पहले अपनी कंपनियों के

डायरेक्टर और पार्टनर बन जाते हैं, उनके लिए पत्नी का चयन इस तरह होता है जैसे कोई आकर्षक और प्रिजेन्टेबल खिलौना खरीदने चले हों, और जो जिन्दगी का एक-एक दिन आराम के साथ जीते हैं और अन्त में चन्दन की लड़कियों पर सुलाये जाते हैं।"[20] चन्दन के इस कथन से उच्च वर्ग का आर्थिक परिवेश स्पष्ट होता है। जबकि मध्य-वर्ग के युवकों के सामने हर कदम पर समस्याएं मुँह बायें खड़ी रहती हैं। रोजगारी की समस्या मध्यवर्ग के साथ अधिक जुड़ी होती है। इसीलिए इस वर्ग के युवकों के बचपन का लक्ष्य पढ़ना और पास होना होता है तो युवा होने पर सरकारी नौकरी प्राप्त करना है। लक्ष्य जब साफ हो तो व्यक्ति अपनी मनोवृत्तियों के अनुसार साधन का चयन करता है। "अपना मोर्चा" के अधिकांश छात्र मध्यवर्गीय युवा हैं। इसीलिए उनका लक्ष्य रोजगार प्राप्त करना है। शिक्षा की दिशाहीनता के कारण ये युवा छात्र लक्ष्य से भटक जाते हैं। उद्देश्यहीन डिग्रियां उन्हें रोजगार नहीं दे सकती। इसीलिए वे अपना आक्रोश जूलूस निकाल कर अभिव्यक्त करते हैं। उनके सामने लक्ष्य तो स्पष्ट हैं, लेकिन वे गलत साधन का प्रयोग करते हैं। इसीलिए भटकते हैं। "अलग-अलग समस्याओं के लिए अलग-अलग आन्दोलन करते हैं। इसलिए ज्वान उन्हें समझाते हैं कि आन्दोलन के विफल होने का कारण मतभेद है जिसका फायदा राजनीतिज्ञ लोग उठाते हैं।

जीवन की विषमताओं और विविधताओं ने युवा को इतना आन्दोलित कर दिया है कि वे अपने लक्ष्य को निर्धारित नहीं कर पाते। पारिवारिक कलह, पारिवारिक उपेक्षा, भ्रष्टाचार तथा शिक्षा की दिशाहीनता व शिक्षा संस्थाओं के विषाक्त परिवेश के कारण वे सही साधन का चुनाव भी नहीं कर पाते हैं। उद्देश्यहीन शिक्षा युवकों को उद्देश्यहीन जीवन प्रदान करती है। "अलग अलग वैतरणी" का विपिन इसका उदाहरण है। लाल-पीली जमीन के युवा पात्रों का

लक्ष्य लड़कियों को फंसाना और गांव में मार-पीट करना है । युवतियों के जीवन का लक्ष्य विवाह है और विवाह होते ही बूढ़ी हो जाना है । मालती इसी प्रकार की युवती है ।

भारतीय समाज में लड़कियों के जीवन का लक्ष्य शादी व बच्चे पैदा करना है । आज भी यह परम्परागत लक्ष्य अपनी जगह विद्यमान है । "अपना मोर्चा" की युवतियों के चरित्र उनके लक्ष्य पर प्रश्न चिह्न अंकित करता है । लड़के जब जुलूस निकालते हैं, शिक्षा प्रणाली का विद्रोह करते हैं, पुलिस से मुठभेड़ में मार खाते हैं लेकिन युवतियों पर इसका कोई असर नहीं है । उनकी नजाकत में कोई फर्क नहीं पड़ता । इसीलिए ये युवा छात्र लड़कियों पर गंदे व्यंग्य करते हैं और सोचते हैं कि समान अधिकार की मांग करनेवाली ये युवतियाँ कब समानता के धरातल पर आएँगी । "मैं जब भी इन झुण्ड की झुण्ड लड़कियों को देखता हूं तो सोचता हूं -- इनका क्या होगा ? दरअसल ये क्या चाहती होंगी । ये क्या कर सकेंगी ? जिस देश को लेकर इतने सारे लोग परेशान हैं, उसके बारे में इनकी भी कोई राय है या नहीं ?" ये कक्षा में बैठकर लगातार क्यों लिखती हैं ? कहीं ऐसा तो नहीं कि पढ़ने की इच्छा केवल उन्हीं में बाकी रह गयी हो जिन्हें पढ़ने का अर्थ नहीं मालूम है ?"[21]

1.5 सफलता और असफलता की दिशा :

लक्ष्य की सफलता तथा असफलता का प्रभाव युवा मानस पर बहुत गहरा पड़ता है । सफलता पाकर जहां युवा मन झूम उठता है, वहीं असफलता की चेतना उसके जीवन के प्रति नकारात्मक सोच पैदा करती है । सफलता जीवन के लिए स्वास्थ्यवर्धक दवा का काम करती है । युवक सफलता की स्थिति में जीवन के प्रति सही सोचते हैं । उनकी सोच जीवन में आस्था रखनेवाली होती है । जीवन की एक

सफलता दूसरा सफलता के लिए प्रेरित करती है । "बेघर" का परमजीत तथा "भ्रम भग" का चन्दन दोनों ही बंबई नौकरी की तलाश में आते हैं । इस तलाश की प्रक्रिया में वे कभी-कभी भयभीत से दिखायी देते है । लेकिन नौकरी प्राप्त हो जाने के उपरान्त इन दोनों ही युवाओं में जीवन के प्रति आस्था पैदा हो जाती है । ये युवा अपने कर्त्तव्य एवं दायित्व के प्रति स्वस्थ विचार रखते हैं । वे जीवन संघर्ष से घबराते नहीं हैं बल्कि अपने दायित्व को सहर्ष निबाहना चाहते हैं । परन्तु जीवन की एक असफलता इन युवाओं को अन्तर्मुखी बना देती है तथा उन्हें अतीत को पुन: विश्लेषित करने के लिए मजबूर करती है । चन्दन स्वयं के बारे में सोचता हुआ कहता है कि "यहां किसने मेरे मुंह पर कीचड़ नहीं फेंका है । किसने मुझे समझने की कोशिश की है । मेरे लिए तो जिंदगी ही गोबर बन गयी है न इसे जी सकता हूं न इससे मुक्त ही हो सकता हूं । जीना और मरना दोनों ही मेरे लिए दूभर हैं । जिन्दगी जैसे मौत से भी बदतर हो गयी है ।"[22] चंदन की इस असफलता का कारण उसके अपने भाई-बहन हैं । अपनी हर खुशी को चन्दन अपने परिवारवालों पर न्योछावर कर देता है, फिर भी परिवार के सदस्य उससे खुश नहीं होते हैं । अत: दायित्व की असफलता ही चन्दन को अन्तर्मुखी बना देती है । परिवारवालों से बेहद प्यार करनेवाला चन्दन अब भाई-बहनों से नफरत करता है । रिश्ते-नाते उसे सब झूठे लगते हैं ।

"तीसरा आदमी" का नरेश पूरी कोशिश करता है कि वह अपने परिवार को एक अच्छी व खुशहाली की जिन्दगी दे सके, लेकिन आवास के अभाव में दाम्पत्य जीवन में तीसरे का प्रवेश ही उसके मन को शकी बना देता है । अब यह शंक ही उसकी असफलता का कारण है । शंक की चपेट में आकर नरेश का दाम्पत्य जीवन असफल हो जाता है । वह अब भी बच्चों की ममता में बंधा हुआ है लेकिन अपने संकोच के

कारण उनसे मिल नहीं सकता । "बच्चों की ममता ज़रूर मुझे खोंचती है, पर उस ममता का जो जरिया है, जब वही भावनाहीन हो गया है तो अब इस इच्छा में भी कोई अर्थ नहीं दिखाई देता ।"[23] नरेश के इस कथन के पीछे दाम्पत्य जीवन को निबाह न पाने की असमर्थता की चेतना है ।

"रेत की मछली", "आप का बंटी" आदि उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन की असफलता से उत्पन्न आक्रोश, कुण्ठा तथा विद्रोह को दिखाया गया है । दाम्पत्य जीवन की असफलता जहाँ कुंतल को अन्तर्मुखी व बेसहारा बना देती है, वहीं शकुन को विद्रोही बना देती है । कुंतल का वैवाहिक जीवन असफल हो जाता है परन्तु वह न तो दूसरा विवाह करती है और न ही माँ-बाप पर बोझ बनती है वह जीवन से संघर्ष करती है । कुंतल का संघर्ष कमजोर आदमी का संघर्ष है इसीलिए मीनल जीत जाती है और कुंतल केन्द्र से निकल जाती है । जबकि शकुन का अजय के साथ बराबर संघर्ष चलता है इसका संघर्ष अस्तित्व का संघर्ष है । वह अपने आप को असफल होने देना नहीं चाहती । अजय द्वारा दूसरी शादी करने के उपरान्त वह भी डा० जोशी से दूसरा विवाह कर लेती है । उसका यह विवाह मात्र प्रतिक्रिया है । असफलता को महसूस करती हुई कहती है कि -- "सामनेवाले को पराजित करने के लिए जैसा सायास और सन्नद्ध जीवन उसे जीना पड़ा उसने उसे खुद ही पराजित कर दिया । सामनेवाला व्यक्ति तो पता नहीं कब परिदृश्य से हट भी गया और वह आज तक उसी मुद्रा में उसी स्थिति में खड़ा है ।"[24] दस वर्ष का उसका वैवाहिक जीवन एक अंधेरी सुरंग में चलते चले जाने की अनुभूति से भिन्न नहीं है । बंटी जो बाल युवा है असफलता की स्थिति में असामान्य व्यवहार करना चाहता है । उसका लक्ष्य माँ को दुखित करना है । "मन हुआ पेड़ से कूद पड़ें । अपने हाथ-पाँव तोड़ ले तब ममी को पता लगेगा कि बंटी को

चांटा मारने का क्या मतलब होता है और उसको अपनी ही आंखों के सामने अपना पट्टियों से बंधा शरीर घूमने लगा । वह पलंग पर कराह रहा है, सब लोग चारों ओर खड़े हैं । ममी रो रही है ।"[25] बंटी को यह चेतना आत्मघाती है । इस चेतना से प्रेरित युवक असफलता की स्थिति में स्वयं को दुखित करके दूसरों से सहानुभूति बटोरना चाहते हैं । "कड़ियां" की प्रमिला, "रिहर्सल" की रीना ऐसी ही युवतियां हैं । प्रमिला का धार्मिक उबाल तथा रीना का खून बेचना व आधुनिक युवतियों के बारे में अनाप-शनाप बकना इसका प्रतीक है ।

सफलता तथा असफलता दोनों ही जीवन में धूप-छांव की तरह हैं । लेकिन सफलता एक आत्मविश्वास देती है तो असफलता उसे तोड़ती है । "अपना मोर्चा" के छात्र इस बात को बखूबी महसूस करते हैं । आन्दोलन की असफलता उसके जीवन पर प्रश्न लगाती है । वे हताश और क्षुब्ध हो जाते हैं । यह असफलता शायद लड़कों की पस्त हिम्मत को और कुण्ठित कर दे ।"[26] लड़कों की यह हताशा व कुण्ठा ही उन्हें फिर प्रेरित करती है कि वे सरकार से अपने अपमान का बदला लें । वे पुन: संगठित हो सही लक्ष्य निर्धारित कर बाज़ार में लुटे अपने मान को प्राप्त करने के लिए आन्दोलन करते हैं और सफल होते हैं । अत: कभी-कभी असफलता भी जीवन संघर्ष के लिए प्रेरित करती है । अपनी गलतियों को समझने के लिए एक मौका देती है ।

इस प्रकार आठवें दशक के उपन्यासों में चित्रित युवा मानस में सफलता व असफलता का बोध है । सफलता में वह अपने आपको हल्का महसूस करता है । जिम्मेदारियों व मर्यादाओं को भली-भांति समझता है, जबकि असफलता की घड़ी में वह आत्महत्या नहीं करता, बल्कि अपनी गलतियों को विश्लेषित करता हुआ आगे बढ़ना चाहता है । असफलता उसे कुंठित, अन्तर्मुखी तथा विद्रोही भी बना देती है । लेकिन कहीं भी असफलता के घेरे में बंधकर नहीं रहना चाहता है । असफलता को सफलता में बदलने की चेतना उसमें सक्रिय है ।

1.6 कुंठा और आक्रोश :

आधुनिक मनोविज्ञान ने व्यक्ति के व्यक्तित्व की विकृतियों का कारण उसकी कुण्ठाओं को माना है । मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों ने भी व्यक्तित्व में होनेवाली सभी विस्फोटों के लिए व्यक्ति की कुण्ठाओं को ही उत्तरदायी माना है । जहाँ जनता का बहुसंख्यक वर्ग अपने युग-जीवन और परिस्थितियों से समझौता करता हुआ चलता है अपने मौलिक व्यक्तित्व को अपने पर्यावरण के प्रति समर्पित कर देता है । वही, एक वर्ग विशेषकर युवा वर्ग ऐसा भी है, जो या तो समझौते के सिद्धान्त का विरोध करता है या चाहकर भी अपने संस्कार, प्रतिभा और स्वभाव के कारण परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाता । ऐसे युवाओं में प्रतिभा संपन्न बुद्धिजीवी, नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था रखनेवाले और चिन्तनशील प्रवृत्ति के युवा आते हैं । "रिहर्सल" की रीना, उर्मिला, इसी प्रकार की युवतियां हैं । रीना, प्रतिभा सम्पन्न है, लेकिन अपने शरीर का सौदा नहीं कर पाने के कारण उसे रेडियो स्टेशन के नाटकों में काम नहीं मिलता । गरीबी की मारी रीना को आर्थिक मोर्चे पर लड़ना पड़ता है । -- "अर्थ से न सही, बचपन से हां सही इस परिवार के अनेक आर्थिक मोर्चों पर रीना को लड़ते रहना पड़ता है । मकान-मालिक का लड़का जो जवान है और शायद रसिया भी, किराया मांगने आता है, तो राजाल बाबू स्वयं पीछे रह जाते हैं और रीना को आगे कर देते हैं ।"[26] आर्थिक मोर्चे पर लड़ते-लड़ते रीना कुण्ठित हो जाती है उसे अपना जीवन व्यर्थ जान पड़ता है । समाज में फैले नारी के शरीर का गोश्त ~~के~~ खानेवाले भेड़ियों ने उसे हर मोर्चों पर परास्त किया है । उसका युवती होना ही उसकी असफलता का कारण है । इसलिए वह अपने नारी जन्म को ही व्यर्थ समझती है ।" इसी का अफसोस है मां ! भगवान ने मुझे क्यों पैदा किया और अगर पैदा किया तो लड़का बनाकर क्यों नहीं

पैदा किया । मेरी उम्र के लड़के बाप के सहायक हो जाते हैं । कमाने लगते हैं, घर संसार संभालने लगते हैं । मैं तो पेट पाल रही हूं ..... बाबा के लिए एक समस्या बनी हुई हूं ।"[27] रीना की यह कुण्ठा असमर्थता से उत्पन्न हुई है । वह गुणवती है, रूपवती है, लेकिन बाज़ार में उसके गुणों को कोई नहीं पूछता । सभी उससे अर्थ के बदले में उसका शरीर मांगते हैं । रीना की इस कुण्ठा के पीछे सामाजिक आदर्श, नैतिक मान्यताओं का अतिक्रमण न कर पाने की असमर्थता भी है ।

आज न्याय और सत्य के अस्त्रों की धार इतनी कुंठित हो चुकी है कि इसके द्वारा नया कुछ पाना तो दूर, पूर्वाधिकृत वस्तु की रक्षा कर पाना कठिन है, पर जीवन-संग्राम में तो सबको उतरना ही होता है और युवा भी उतरते हैं, और पराजित होते हैं । ये सत्य और न्याय, अर्थ और प्रभुत्व के जोरदार तर्कों के सामने टिक नहीं पाते और ये भिन्न-भिन्न कुण्ठाओं के शिकार होते हैं । "अलग-अलग वैतरणी" का विपिन इसी प्रकार की कुण्ठाओं से घिरा हुआ है । वह पढा-लिखा तथा समझदार युवक है लेकिन परिस्थितियों के आगे बौना बन जाता है। वह पुष्पा से प्रेम करता है लेकिन सामाजिक मान-मर्यादा के कारण उसे जीवन संगिनी नहीं बना सकता और अकेले में अपनी इस असमर्थता के कारण रोता है । वह गांव-घर को छोड़कर शहर चला जाता है । ...ठाओं से घिरा विपिन विद्रोह नहीं कर पाता । परन्तु स्वयं को ...ड़ा पहुंचाता है ।

आधुनिक युग के बौद्धिक और यांत्रिक वातावरण में कुण्ठाओं का प्रारंभ पारिवारिक जीवन से ही हो जाता है । बच्चे बचपन से ही स्नेह और सहानुभूति के अभाव में कुण्ठाओं के शिकार होने लगते हैं । "लाल-पीली जमीन" के युवा ... कि... र केशव, "चितकोबरा" का महेश, "रेत की मछली" की कु... "...[illegible]..." का श्यामा, "बीमार

शहर" की मंजरी, "सीमाएं टूटती हैं" की चांद आदि ऐसे ही पात्र हैं जो यौवन के द्वार पर पहुंचते-पहुंचते आत्मनाशी तथा तूफानी अशान्ति से ग्रस्त हो जाते हैं। "बीमार शहर" का शेखर बौद्धिक जाल में उलझ गया है। महानगर की सभ्यता उसे अन्दर से कुण्ठित कर देती है।

पूंजीवादी व्यवस्था के समस्त अभिशापों, प्रेम के उचित प्रतिदान, समुचित पारिवारिक एवं सामाजिक संरक्षण तथा जीविकोपार्जन के सम्मानित एवं नैतिक अवसरों के अभाव व लोगों की स्वार्थी और व्यवसायिक मनोवृत्ति के कारण कुण्ठाग्रस्त हो जाना युवा की नीयति बनती जा रही है। "रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका तथा मनीष दोनों ही सांस्कृतिक भटकाव के कारण कुण्ठाग्रस्त हो जाते हैं। सामाजिक संरक्षण के अभाव में "आपका बंटी" की शकुन कुण्ठित हो जाती है परन्तु उसकी सोच आक्रामक है। "बंटी को दरार ही बनना है तो मीरा और अजय के बीच में बने। अजय भी तो जाने कि बच्चे को लेकर किस तरह की यातना से गुजरना होता है। पुरानी स्लेट इतनी जल्दी और इतनी आसानी से साफ नहीं होती।"[28]

कुण्ठाओं एवं आक्रोश के परिणामस्वरूप या तो व्यक्ति जीवन-संग्राम से पलायन करता है या संघर्ष करते-करते टुकड़ों-टुकड़ों में बिखर जाता है या फिर व्यक्तित्व के भयंकर विस्फोटों का शिकार होता है। ये विस्फोट व्यक्ति की वैयक्तिक भिन्नताओं -- बहिर्मुखी-अन्तर्मुखी प्रतिभाओं के कारण कभी अन्तर्मुखी होते हैं, कभी बहिर्मुखी। व्यक्तित्व बहिर्मुखी विस्फोट समस्त समाजघाती प्रभावों सहित व्यक्ति की विद्रोह-जनित अपराध भावना में देखा जा सकता है। और अन्तर्मुखी आत्मघाती विस्फोट के उदाहरण हैं -- मानस रोग, विविध मानसिक विकृतियां। आठवें दशक के युवक असफलताओं एवं परम्परागत जीवन मूल्यों की अप्रासंगिकता से कुंठित अवश्य हैं लेकिन ये परिस्थितियों को बेहतर समझते हैं। इसलिए कुंठित अवश्य हैं।

लेकिन परिस्थितियों को बेहतर समझते हैं । इसीलिए कुण्ठित होने के बावजूद भी हारकर मुँह नहीं छुपाते बल्कि पुनः साहस बटोरकर और तीव्र रूप से संघर्ष करते हैं । लक्ष्य की अस्पष्टता के बावजूद भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लालायित है । "अपना मोर्चा" के छात्र युवा की कुछ कुण्ठाओं में यही चित्र झलकता है ।

2. विद्रोह एवं अपराध की भावना :

विद्रोही मनोवृत्ति की चरम परिणति अपराध है । आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार विद्रोही मनोवृत्ति के विकास के लिए व्यक्ति कुण्ठाएं ही उत्तरदायी हैं । आधुनिक युवा का वातावरण एवं परिस्थितियां बढ़ी हुई जीवन की आवश्यकता, आर्थिक असमानता, अर्थोपार्जन की प्रतिस्पर्धा और व्यस्तता, भोगवादी जीवन-दर्शन, युगव्यापी बौद्धिकता और अविश्वास, संत्रास एवं असुरक्षा की भावना, अन्तर्बाह्य अशान्ति और घुटन, आवास की समस्या, भीड़-भाड़ भरा पारिवारिक जीवन, दाम्पत्य-कलह आदि युवा मानस की विविध-रूपिणी कुण्ठाओं के लिए उर्वर भूमि प्रस्तुत करते हैं । पारिवारिक तथा सामाजिक विषमताएं युवा को विद्रोह के मार्ग पर ला खड़ा करती हैं ।

परम्परा से चले आ रहे जीवन मूल्य आज युवा वर्ग के लिए अप्रासंगिक हो गया है । बदली हुई परिस्थितियों में युवा के लिए पुराने जीवन मूल्यों को बनाये रखना कठिन हो गया है । अतः वह उन सभी जीवन मूल्यों के प्रति आक्रोशी भावना रखता है जो उसके मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं । "भ्रमभंग" का चन्दन मध्यवर्गीय जीवन मूल्यों के प्रति आक्रोशी हो गया है । मध्यवर्ग की नायित के खिलाफ वह विद्रोह करता है । वह कहता है कि यदि मध्यवर्ग कोई व्यक्ति होता तो मैं उस पर थूक देता, लेकिन मध्य वर्ग व्यक्ति नहीं

एक मानसिकता है । वह मध्यवर्गीय मूल्यों को निभाने के हद तक निभाता है और जहाँ अधिक तनाव महसूस करने लगता है वह सब कुछ उतार कर फेंक देता है । वह स्पष्टत: खुले शब्दों में माँ को अपने घर से चले जाने के लिए कहता है । इसके लिए "टूटने का मतलब सब कुछ टूटना होता है । ..... नो लिंगरिंग ।"[30] माँ के व्यवहार के प्रति चन्दन का यह विद्रोह वर्षों से चले आ रहे मध्यवर्गीय संस्कार के खिलाफ है ।

"अलग-अलग वैतरणी" में विपिन तथा कनिया, शशिकान्त, कुमारस्थ को सामंती प्रवृत्तियों का विरोध करते हैं । विपिन में खुलकर विद्रोह करने की शक्ति नहीं है अत: वह खामोशी से ही अपना विद्रोह व्यक्त करता है । सिरोया अपने चमार होने और इज्जत को लेकर ठाकुर से सवाल करता हुआ कहता है कि -- "इज्जत तो सबकी एक ही है बाबू चाहे, चमार की हो, चाहे ठाकूर की । हम आपका काम करते हैं, मजूरी लेते हैं । हमें गरज है कि करते हैं । आपको गरज है कि कराते हो । इसका मतलब ई थोड़े हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये।"[31] सिरोया का यह कथन सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह है । वह ठाकूर और चमार की इज्जत को समानता के स्तर पर आंकता है ।

आन्दोलन या विद्रोह कभी भी सामूहिक कुण्ठा का परिणाम [illegible] है । "अपना मोर्चा" के छात्रों का आन्दोलन छात्रों की सामूहिक कु[illegible] का ही परिणाम है । उनकी कुण्ठा का कारण उद्देश्यहीन शिक्षा प्र[illegible] तथा अन्धकारमय भविष्य है । युवकों को इस व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश किसी न किसी तरह व्यक्त करना था । अत: वे भाषा विधेयक के खिलाफ विद्रोह करते हैं। उनका विद्रो[illegible] चूँकि कुण्ठा का उपशमन था इसीलिए नियोजित नहीं था और न ही उसमें समानता थी । इसीलिए अंग्रेजी हटाओ [illegible] प्रा[illegible] हुआ आन्दोलन पी॰ए॰सी॰ हटाओ पर समाप्त होता है [illegible] लौ[illegible] मुड़ती है में भी यही घटित

होता है । छात्रों के विद्रोह का कारण स्पष्ट नहीं है । लेकिन संघ के चयन में मार-पीट अवश्य होता है ।

आठवें दशक के युवा (युवतियाँ) परम्परागत वैवाहिक मान्यताओं के खिलाफ विद्रोह करते हैं । इस संदर्भ में युवतियों का विरोध अधिक है । "रूकोगी नहीं राधिका" परम्परागत वैवाहिक बंधन का विरोध करती है । वह पिता की शादी को सहन नहीं करती और विद्रोह के रूप में एक विदेशी युवक के साथ विदेश चला जाती है । उसकी मानसिकता में यह स्वीकार्य ही नहीं है कि पिता की दूसरी शादी राधिका के रहते हुए क्यों होना चाहिए ? विदेश से वापस लौटकर आने के बाद भी राधिका पिता के साथ सहज रूप से नहीं रह सकती । वह पिता द्वारा वरण की गयी जिन्दगी को एक बार फिर ठुकराकर पिता के विरुद्ध मनीष का वरण करती है । राधिका के इस चिन्तन के पीछे उसका अपराधबोध भी सक्रिय है । वह सोचती है कि अक्षय भारतीय परिवेश में पला हुआ है, वह उसकी पिछली जिन्दगी को सहज रूप से स्वीकार नहीं कर सकेगा । "उसका शहर" की दीपिका परम्परागत विवाह में विश्वास नहीं रखती । अपने माता-पिता के कड़ुवे अनुभव उसके सामने हैं । इसीलिए वह अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए स्वतंत्रता की माँग करती है । अपने प्रोफेसर दशानन के साथ दोस्ती करती है, लेकिन दशानन की नीयत पर शक हो जाने पर उनसे हट जाती है । वैवाहिक मान्यताओं का तीव्र विद्रोह "बीमार शहर" की शोभना तथा मिस गोरा में मौजूद है । शोभना विवाह में विश्वास नहीं रखती है लेकिन शेखर से उसका शारीरिक संबंध है । वह घर से रात-रात भर गायब रहती है । गर्भपात भी करवा चुकी है । लेकिन इससे उसके जीवन में कोई फर्क नहीं पड़ता है । भाई ने भी समझाया था, लेकिन वह क्या करें । वास्तव में शोभना का एक गलत कदम उसमें अपराध भावना जागृत करता है और वह गलत रास्ते पर चल जाती है ।

"अन्तराल" की श्यामा, कुमार तथा "रथ से गिरी बांसुरी" की कावेरी नैतिकता के खिलाफ विद्रोह करती हैं। श्यामा अपने दाम्पत्य जीवन के प्रति असंतुष्ट है। पति की मृत्यु के बाद भी श्यामा अपने को संयमित व तनावरहित नहीं महसूस करती है। उसमें देव के प्रति अपराध बोध की भावना है अतः वह कुमार से शारीरिक संबंध स्थापित करके अपने विद्रोह को नया मोड़ देकर अपने अपराध भावना से मुक्त होना चाहती है।

आज अस्तित्व की लड़ाई सर्वोपरि है। अस्तित्व के बाद ही युवा आगे की लड़ाई की भूमिका तैयार करता है। "आपका बंटी" में शकुन का विद्रोह अपने अस्तित्व बनाये रखने के लिए है। शकुन तथा अजय अलग-अलग रहते हैं फिर एक दूसरे के प्रति आक्रोशी भावना से भरे हुए हैं। "अजय के किसी के साथ संबंध बढ़ने की सूचना और फिर सैटल हो जाने की सूचना ने उसे कितना तिलमिला दिया था, अकेले रहने के बावजूद तब एक बार फिर नये सिरे से अकेलेपन का भाव जागा था। बहुत तीखा और कटु होकर। अपमान की भावना ने उसे दंश को बहुत बढ़ा दिया था।"[31] शकुन का यह विद्रोह दूसरी शादी के रूप में अभिव्यक्त होता है। वह बंटी को अजय के पास भेज देती है ताकि अजय से बदला ले सके। अपनी दूसरी शादी के बाद भी शकुन परिस्थितियों के दबाव से इनकार नहीं कर पाती। अजय से विलग होकर भी शकुन राहत का अनुभव नहीं कर पाती है। भीतर ही भीतर वह गहरी अभाव महसूस करती है। बंटी भी एक संवेदनशील पात्र है। वह माँ की दूसरी शादी की प्रतिक्रिया में माँ को छोड़कर चला जाता है। परन्तु कलकत्ता पहुँचते ही, वह यह समझ जाता है कि यहाँ पापा मम्मी बन गये हैं। माता-पिता के तनाव से उखड़ा हुआ बंटी दोनों से दूर होस्टल चला जाता है।

किसी दुर्घटना या आवेश में किया गया कार्य भी मन को अजनबी बना देता है । "सुरजमुखी अंधेरे की" में रत्ती के साथ एक दुर्घटना घटित होती है और वह उसमें अपराधबोध जगाती है । रत्ती में अपराध बोध इतना गहरा हो जाता है कि वह जीवन से ही पलायन करने लगती है । "मुझे तुमसे माफी मांगनी है राजन ..... वह एक काला जहरीला क्षण हर बार मुझे झपट लेता है और हो जाती हूं ।"[32]

इसी प्रकार "तीसरा आदमी" का नरेश, "रेत की मछली" की कुंतल तथा "सीमाएं टूटती है" की चांद एक विशेष परिस्थितियों में विद्रोही भावना से परिचालित हैं । ये सामाजिक व नैतिक मान्यताओं का विरोध करती है जो एक सामाजिक अपराध है । "नाचो अब मैं बहुत गोपाल" का मोहन समाज में व्याप्त उच्च व नीच जातियों के लिए अलग-अलग नैतिकता के प्रति विद्रोह करता है और विद्रोह की इस प्रक्रिया में वह डाकू बन जाता है ।

आठवें दशक के युवकों का विद्रोह कानून, पुलिस तथा सरकार की भ्रष्ट नीतियों के प्रति भी मिलता है । "महाभोज" में वृंदा, बिसू, तथा सक्सेना का विद्रोह प्रशासन के प्रति है । विद्रोह की प्रक्रिया में वृंदा और बिसू की मौत हो जाती है । अन्याय के प्रति उनका विद्रोह ही प्रशासन की दृष्टि में अपराध है ।

2·1 निषेध की भावना :

निषेध की भावना अनास्था से उत्पन्न होती है । आधुनिक युग के वैज्ञानिक परीक्षणों ने जीवन तथा मनुष्य की मान्यताओं एवं आस्थाओं का तेजाबी परिक्षण कर सत्य और असत्य को तत्वों में बांट दिया है । इसका परिणाम यह हुआ है कि पारम्परिक मूल्यों के प्रति आज युवा भावुक नहीं रह जाता है । उसने वैज्ञानिक परीक्षणों तथा

तर्कों के सहारे आस्था के रेशे-रेशे को अलग-अलग कर दिया है । इसी के कारण इसमें पारम्परिक मूल्यों एवं मान्यताओं के प्रति निषेध भावना आ गयी है और जो कुछ निषेध था, वह उसे अपनाने लगा है । युवकों की इस निषेधात्मक प्रवृत्ति के पीछे आज की सार्वजनिक अनास्था और उसकी कुण्ठा भी काम करती है । "भ्रम भंग" में चन्दन जीवन के निषेध से तंग आ गया है । "कितने सारे निषेध । क्या बची हुई जिन्दगी निषेधों के बीच गुजारनी होगी । अभी तो आधा ही जी पाया हूं । आधी जिन्दगी अभावों अपेक्षाओं और अपमानों के बीच बीती । आगे की आधी निषेधों के बीच बीतेगी । ..... अभिशाप्त जिनसे वरदानों की व्याख्या मिलती है ।"[33] वास्तव में इसी निषेध के प्रति चन्दन का यह उबाल परिवार के प्रति है । परिवार के सदस्यों से उपेक्षित चन्दन सोचता है कि "क्या पाया तुमने चन्दन ? तुम्हारे ही घर में यह सब क्यों हो गया ? यह सब क्या होना ही था ? चन्दन सोचो कहीं तुम ही तो गलत नहीं थे ? कितने-कितने भ्रम तुमने इस परिवार को लेकर पाले थे । सब भंग हो गये न ? तुम्हें क्या मिला ?"[34]

"रिहर्सल" में हनुमान पारम्परिक निषेधों को ही अपनाता है । वह शराब सिगरेट तथा औरत का भोग करना पुरूष जाति के लिए गौरव की बात मानता है । "वह तो इन तीनों खिडकियों के नीचे एकदम दीन-हीन बना खड़ा है । वह चेन-स्मोकर है, हर शराब की दुकान के सामने उसके पांव थमते हैं और वह ऐसा मानता है कि जिस आदमी को औरत का नशा नहीं, वह मर्द नहीं है ।"[35] हनुमान की तरह ही "बेघर" का वालिया निषेधों को ही अपनाने में अपने आपको हीरो महसूस करता है । "मैं इसे भी छोड़ दूंगा । यह समझती क्या है । मैंने दस मिनट में अपने मां-बाप को छोड़ दिये थे । ..... मैं ने अपनी पहली पत्नी को हनीमून के दौरान ही छोड़ दिया था ।"[36] वह पत्नी का मतलब परिवार और परिवार का मतलब आराम से लगाता है । "रेत की मछली" में मीनल और शोभन का संबंध सामाजिक

रिश्तों पर कलंक है । मीनल शोभन की बहन है, लेकिन राखी की आड़ में यह रिश्ता प्रेमी-प्रेमिका से होता हुआ पति-पत्नी में बदल जाता है । "वह सोनमछली वह मोनल कौन थी शोभन की ? उस रक्त कमल ने पिछले वर्ष राखी बांधी थी शोभन की कलाई पर । ..... एकात्म हो जाने दो । कुंतल, हम सब आओ एकात्म हो जायें । मैं, मीनल, तुम ।"[37]

"अलग-अलग वैतरणी" का हरिया किसी की परवाह नहीं करता । वह सिगरेट पीता है । गांव में किसी को कुछ नहीं समझता । न नमस्ते न प्रणाम । न हालचाल न बात-चीत । अकाल पड़ने से वह और भी ज्यादा उत्तेजित हो जाता है । पत्नी से मार-पीट करने में उसे कोई बुराई नज़र नहीं आती । वह एक कुण्ठित युवा है । मानसिक कुण्ठाएं उसमें असामान्य प्रवृत्ति पैदा करती हैं ।

युवा समाज में किसी न किसी रिश्ते से बंधा हुआ होता है । इन रिश्तों के बीच ही वह जीवनयापन करता है । लेकिन आजका युवक रिश्तों की अवहेलना करता है । रिश्ते उसे सामाजिक मर्यादाओं में नहीं बांध सकते हैं । वह बिना नाम के संबंधों में ही सुख महसूस करता है । "अन्तराल" में श्यामा बेनाम के संबंधों में ही गहरा संबंध देखती है । "किसी से बात कर सकना भी अपने में एक संबंध है, इसे नाम चाहे जो दिया जाए । और कई संबंधों से यह कहीं गहरा संबंध है।"[37] श्यामा और कुमार का संबंध ऐसा ही है ।

आठवें दशक के युवक ज्यादातर युवक देवी-देवताओं में विश्वास नहीं करते हैं । "चितकोबरा" में मनु ईश्वर के अस्तित्व को नकारती है । वह ईश्वर की स्थिति को स्पष्ट करती हुई कहती है कि -- "जब तक भगवान था, इंसान अपराध करता था, सजा की जिम्मेदारी भगवान पर छोड़ देता था । ..... अब भगवान नहीं रहा, तमाम जिम्मेदारी व्यक्ति पर आ पड़ी ।"[38] मनु के अनुसार

आज के युवकों का अपराधी होने का कारण जिम्मेदारी का बढ़ना तथा अपने आपको अकेला महसूस करने से है । विवाह की सामाजिक मान्यताओं को भी युवा वर्ग नहीं मानता । वह विवाह, प्रेम तथा सेक्स की अलग नैतिकता गढ़ता है । वैवाहिक जीवन में पड़नेवाली दरार इसका उदाहरण है । वह पत्नी- पति को मात्र पत्नी/पति के रूप में ही नहीं देखना चाहते हैं । "कड़ियाँ" में महेश अपनी पत्नी को इसीलिए छोड़ देता है क्योंकि वह केवल पत्नी बनकर रहना चाहती है । आज भी युवक अनेक निषेधों के बीच जीते हैं । समाज इनके सामने कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं कर सका है । अत: वे निषेधों को वैयक्तिक आवश्यकता के अनुसार व्याख्या करते हैं । पारम्परिक निषेध आकर्षक लगते हैं । असफलता तथा बेकारी उन्हें समाज विरोधी कार्य करने के लिए प्रेरित करती है । आर्थिक अभावों से जूझते हुए युवक निषेधों को अपनाने में ही सुख महसूस करते हैं । दाम्पत्य जीवन में कलह, महत्वाकांक्षाएं तथा भोगवादी दर्शन उन्हें मर्यादित नहीं रहने देती । विषमता के वातावरण में वे आक्रोशी हो गये हैं और निषेधों को अपनाकर एक तरह से वे अपना विद्रोह व्यक्त करते हैं । "अपना मोर्चा" के छात्रों में यही भावना विद्यमान है । कुण्ठाओं के उपशमन में वे समाज तथा राष्ट्रविरोधी कार्य करते हैं ।

2·2 असमर्थता का बोध - अकेलेपन की पीड़ा :

महानगरीय सभ्यता का व्यक्ति आज भीड़ में अकेला है । सामाजिक संबंधों के तन्तु बौद्धिकता और यांत्रिकता की लू में सूखकर झड़ गये हैं । आज व्यक्ति के बीच एक ऐसी अभेद्य दीवार खड़ी हो गयी है, हर व्यक्ति अपने आपमें इस तरह सीमित और सिमटा हुआ है, जैसे घोंघे के भीतर रहनेवाले सैकड़ों हजारों जीव एक ही तालाब में रहते हुए भी अपनी खोलों में अलग-अलग बंद हों । जैसे-जैसे महानगरों

की जनसंख्या में बाढ़ आती गयी, बस्तियां और घनी होती गयीं तथा व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की दूरी कम होती गयी वैसे-वैसे व्यक्ति का मन दूसरे व्यक्ति से दूर भागता गया है। भौतिक सुख प्राप्त करने की ललक में मानव अपनों से कट गया है। उसके जीवन में विस्तार तो आया है लेकिन उसका आन्तरिक मानस सिकुड़ गया है। यही सिकुड़ा हुआ मानस व्यक्ति के मन में गांठ डालता है तथा उसे अनेकों सुख-सुविधाओं के बीच अकेले जीवन जीने के लिए अभिशप्त करता है। यह अकेलापन युवा व्यक्ति में अधिक मिलता है। युवा अवस्था में युवक न तो बच्चा होता है और न ही पूर्ण रूप से परिपक्व। अत: उसे बचपन का प्यार तथा सामाजिक सम्मान दोनों ही नहीं मिलते हैं। ऐसी स्थिति में युवा अपने विचारों इच्छाओं तथा सफलता व असफलता की दुनिया में अकेला हो जाता है। उसे अपने ही बेगाने नजर आने लगते हैं। "सीमाएं टूटती है" की चांद तथा "रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका इसी तरह अकेलेपन की अनुभूति से गुजर रही हैं। चांद की मां नहीं है पिता जेल में है तथा उसकी शादी टूट जाती है। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में चांद अपने आवेग को, अपनी मन की बात को किसी से कह नहीं पाती है और अपने आपको अकेला महसूस करती है। यही कारण है कि वह विमल के साथ चली जाती है। वह विमल के साथ अपने अकेलेपन को बांटने का प्रयास करती है। चांद की तरह ही राधिका भी देश से विदेश तक एक ऐसे व्यक्ति की तलाश में है जो उसके मन की रिक्तता को पूर्ण कर सके। वह अपने इस अकेलेपन की अनुभूति के दौरान ही पिता के जीवन का पुन: विश्लेषण करती है।

"भ्रम भंग" का चन्दन तथा "बेघर" का परमजीत भी इस तरह अकेलेपन की पीड़ा को भोगते हैं। बंबई शहर में दोनों ही अकेले रहते हैं। लेकिन दोनों की पीड़ा एक होते हुए भी अलग-अलग है। चन्दन जब बंबई आया था, तो उसके सामने एक उद्देश्य था। वह अपने

परिवार के लिए कुछ करना चाहता था। लेकिन महानगरीय सभ्यता की उलझन उसे असमय ही बूढा बना देती है। "मुझे यहाँ रहते दो साल हो आये हैं। लेकिन ऐसा कोई नहीं जिसे अपना बना पाया हूं। सब अपने में केन्द्रित हैं। अपने में सिमटे हुए।"[38] अपनी बात को दूसरों तक पहुंचाने के लिए चन्दन तरस जाता है। वह बंबई शहर में अजनबी है तो अपने ही परिवार में अकेला हो जाता है। परिवार और उसका संबंध मात्र आर्थिक है।

"अलग-अलग वेतरणी" का विपिन भी अकेलेपन की अनुभूति से ग्रस्त है। वह पढा-लिखा युवक है लेकिन परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाता और अपने-आप को अकेला महसूस करता है। भाई का विरोध वह खामोश रहकर करता है। वह अपने प्यार तथा मजबूरियों पर रोता है लेकिन उसे पुष्पा के सामने व्यक्त नहीं कर पाता। अपनी परिधि को तोड़ने में वह असमर्थ रहता है और अन्त में गांव छोड़कर शहर आ जाता है। इसी तरह "बीमार शहर" के पात्र भी अकेलेपन की पीड़ा से ग्रस्त है। हर पात्र इस पीड़ा को भोगने के लिए अभिशप्त है।

आज का परिवेश चाहे गांव का हो या शहर का युवक सभी जगह उखड़ा हुआ है। वह कहीं भी अपनी जड़ को छू नहीं पाता। गांव से शहर आये हुए तथा शहर से गांव लौटे हुए युवक कहीं भी जम नहीं पाते हैं। उन्हें शहर और गांव दोनों ही अजनबी लगते हैं। तिवारी तथा विपिन इसी के उदाहरण हैं। ये दोनों ही पात्र अपनी जड़ से कटे हुए हैं।

असमर्थता का बोध ही युवा में अकेलेपन की अनुभूति जगाता है। आज का युवक जिंदगी की लड़ाई लड़ने के लिए अपने को काफी असमर्थ महसूस करता है। विद्यालय की सारी शिक्षा-दीक्षा उसको जीवन की

वास्तविकताओं का सामना करने में समर्थ नहीं बना पायी है । फलस्वरूप विद्यालयों की चार-दीवारी के बाहर आते ही बाहरी दुनिया की कठोर वास्तविकताओं के सामने वह एकदम पस्त हो जाता है । विद्यालयी पाठ्यक्रम में जिन आदर्शों को वह पढ़-सुनकर आता है, जीवन के रंगीन सपनों का जैसा कि वह आदी हो जाता है, बाहर की दुनियां में आते ही उसका मोहभंग हो जाता है । आदर्शों की सारी प्रतिमाएं टूटकर बिखर जाती हैं और वह जीवन लड़ाई के मैदान में अपने को निहत्था, असहाय और एकदम अकेला महसूस करने लगता है । "अपना मोर्चा" के युवा छात्र ऐसे ही पात्र हैं जो व्यवस्था की विसंगतियों से लड़ते हैं और अकेलेपन की अनुभूति से ग्रस्त हैं । "गली आगे मुड़ती है" का तिवारी समाज में फैले भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाना चाहता है लेकिन उसकी आवाज अकेले की ही है । वह परिस्थितियों के सामने असमर्थ है । वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता है । इसीलिए अपने जीवन को निरर्थक समझता है । असमर्थता का बोध उसमें अकेलेपन की भावना को जगाते हैं ।

इस तरह आठवें दशक का युवा मानस अकेलेपन की भावना से ग्रस्त है । सभी परिचित दिशाओं का खो जाना बीसवीं शती के मनुष्य की नियति है और उसकी त्रासदी भी । खोई हुई दिशाओं का अनुभव सामाजिक तथा व्यक्तिगत दोनों स्तरों पर शहरी युवकों को अधिक हो रहा है । गांव में फिर भी अपनापन होता है लेकिन शहर में प्रत्येक व्यक्ति अपनों को भीड़ में खोया हुआ महसूस करता है । आज के आधुनिक व्यक्ति के लिए अकेलापन नियति बन गया है, जो अपने आपको समूह तथा रिश्तों से जोड़ नहीं पाता । नौकरी तथा व्यवसाय की तलाश इसे बड़े-बड़े नगरों में अकेले रहने के लिए विवश कर देती है । पारिवारिक कलह तथा बदलती नैतिकता उसे अन्दर से तोड़ती है और इसी स्थिति में युवा स्वयं को अकेला महसूस करता है । वह सामाजिक,

आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था के आगे असमर्थ है । उसकी शक्ति कुंठित होती जा रही है और वह अपने आपको अकेला महसूस करता है । "आदमी मन से अकेला होता है और मन का भोजन हर कोई नहीं दे सकता ।"[39] "इसीलिए अकेलापन जिन्दगी के मरण के क्षण हैं ।"[40] "सुरजमुखी अन्धेरे की" में रत्ती अपने इसी अकेलेपन की व्याख्या करती हुई कहती है कि -- "जिसके पास मीलों लंबा एकान्त हो, वह अकेले में, अपने लिए, अपने को क्यों न पढ़े । ..... दिखाकर अकेले में कोई क्या से क्या होता जाता है, यह सिर्फ देखकर पता लगाया नहीं जा सकता ।"[41]

2.3 स्वाभिमान की भावना :

आधुनिक युवा वर्ग में स्वाभिमान की भावना अधिक है । वह बजुर्ग पीढ़ी की तुलना में अधिक स्वाभिमानी हैं । उसमें आत्म-जागरूकता का तत्व अधिक उभरा हुआ दिखाई पड़ता है । शिक्षा और सामाजिक दर्शन के दिनों-दिन बदलते परिवेश तथा चरण ने उसे अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक बनाया है । यूं भी स्वाभिमान की भावना युवकों में ही अधिक होती है । युवक किसी भी परिस्थिति में अपने स्वाभिमान की रक्षा करना चाहता है । युवक प्रेम, आदर तथा सहयोग उसी हद तक दे सकते है जहाँ तक इनके स्वाभिमान को चोट नहीं पहुंचती है । आठवें दशक के उपन्यासों में वर्णित युवक व युवतियाँ अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हैं । "रेत की मछली" की कुंतल एक सीमा तक ही आघात सहती है और उसके बाद वह स्वयं को अलग कर लेती है । "शोभन की उदासीनता से जो अपमान महसूस हुआ उसने एक बड़ा काम जरूर किया । मेरी रूलाई रूक गयी । यह अच्छा ही हुआ क्योंकि अधिक रोती तो अपमान भी अधिक बढ़ता ।"[42] कुंतल हार कर भी आत्महत्या की ओर अग्रसर नहीं होती बल्कि जीना चाहती है ।

यही स्वाभिमान तथा अस्तित्व का संघर्ष "आपका बंटी" में दिखायी देता है । बंटी असामान्य युवा है, लेकिन स्वाभिमानी है । वह माँ की दूसरी शादी को सहन नहीं कर पाता । वह अरूप बच्चा है और दुनिया में अरूप बच्चा बनकर ही जीना चाहता है । माँ तथा डा० जोशी के समझाने के बावजूद भी वह माँ के पास नहीं रहता और पिता अजय के साथ चला जाता है ।

परिवेश चाहे घर का हो या दफ्तर का जिनके बीच युवकों को काम करना पड़ता है वे [illegible] स्वाभिमान को तिलांजलि नहीं देते हैं । वे ज्यादतियों को एक सीमा तक ही सहन करते हैं । "भूमिका" का चन्दन पिता की जिम्मेदारी को अपना समझता है तथा उसे निभाना अपना कर्त्तव्य मानता है । लेकिन जब उसकी जिम्मेदारी उसके स्वाभिमान पर चोट करती है तो वह तिलमिला जाता है । वह माँ को भी अपने घर में रखना अपना अपमान समझता है । परिवार द्वारा उसके स्वाभिमान पर किया गया चोट उससे नैतिकता का उल्लंघन करवाते हैं । वह सब कुछ एक मर्यादित सीमा के अन्दर सहन करने के लिए तैयार है लेकिन सीमा के बाहर नहीं ।

युवक घर में ही नहीं बाहर भी अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए संघर्ष करते हैं । "अपना मोर्चा" में छात्र आन्दोलन परास्त होने के बाद छात्र युवक विचलित हो जाते हैं । वे पुन: बाजार में अपनी खोई हुई इज्जत को वापस लाना चाहते हैं । इसीलिए एक बार फिर संगठित होकर आन्दोलन करते हैं । स्वाभिमान की भावना मनुष्य की व्यक्तित्व से जुड़ी होती है । युवक शक्ति से भरपूर होते हैं इसीलिए वे दुम हिलाना पसंद नहीं करते हैं । चमचा बनने से अच्छा संघर्ष करना पसंद करते हैं । यही कारण है कि व्यवस्था से वे बिना सोचे-समझे टकराते हैं और असफलता की स्थिति में हताश, कुण्ठीत व आक्रोशी हो जाते हैं । युवकों का इस प्रकार हताश, कुण्ठीत तथा विद्रोही

होने के पीछे उनका स्वाभिमान ही काम करता है । स्वाभिमानी व्यक्ति ही नीयति से टकराता है और कभी-कभी फल प्राप्त करता है । स्वाभिमान के कारण ही विद्रोह का जन्म होता है । राधिका चांद, विपिन, नरेश आदि पात्रों में स्वाभिमान की भावना है । स्वाभिमान के कारण ही ये पात्र अपनी परिस्थितियों से विद्रोह करते हैं । सामाजिक व नैतिक नियम इनके स्वाभिमान को कुचल नहीं पाते हैं । "रिहर्सल" की रीना तथा "रथ से गिरी बांसुरी" की कावेरी विपरित परिवेश में भी अपने स्वाभिमान पर आंच नहीं आने देती है । रीना मृत्यु को वरण कर लेती है, लेकिन समाज के भेड़ियों के हाथ अपनी इज्जत नहीं बेचती ।

"लाल पीली जमीन" के युवा पात्रों में स्वाभिमान की भावना इतनी गहरी है कि किसी उद्देश्य के वे एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या की भावना रखते हैं । गांव में आतंक फैलाया तथा मारपीट करना युवकों के लिए शान की बात है । सुरेश तथा पंडित का स्वाभिमान इसी प्रकार का है । लड़की को फंसाना तथा गैंग बना इन युवकों की शान है।

2·4 आत्मविश्वास की भावना :

आत्मविश्वास का अर्थ आत्म बल से है । जिस व्यक्ति में जितना आत्मबल होगा वह जीवन संघर्ष में उतना ही सफल होगा । आत्मबल या विश्वास मानस की देन है । उचित परिस्थितियों में सही शिक्षा से व्यक्ति के शरीर में शारीरिक शक्ति के साथ मानसिक शक्ति भी बलवान होती है । मानसिक शक्ति ही व्यक्ति में आत्म-विश्वास जगाती है । आत्मविश्वास के बल पर ही जीवन संघर्ष किया जा सकता है । सफलता के लिए आत्मविश्वास का होना बहुत जरूरी है । आत्मबल के अभाव में व्यक्ति को असफलता ही देखने को मिलती है।

आत्मविश्वास व्यक्ति को अन्दर से प्रेरणा देती है । युवा व्यक्ति में आत्मविश्वास की उपस्थिति बहुत नाज़ुक होती है । युवा एक तरफ परिस्थितियों को सही परिपेक्ष्य में रखकर पहचानने का प्रयत्न करता है तो दूसरी तरफ युवा सम्वेगों से परिचालित होने के कारण में उसमें अस्थिरता की भावना होती है । अस्थिरता की यह भावना उसके आत्मविश्वास को अस्थिर करती रहती है । इसीलिए वह कभी पूर्ण आत्मविश्वास से कुछ करने की सोचता है तो कभी निराशा की जटिलता में फंसकर आत्मविश्वास खो बैठता है ।

आत्मबल या विश्वास युवा के लिए एक ऐसी शक्ति का काम करती हैं जिसके द्वारा उसका संपूर्ण जीवन निर्धारित होता है । आशा और निराशा का संबंध भी आत्मबल से है । जिस युवक में जितना ज्यादा आत्मबल होगा वह उतना ही आशावान होगा । असफलताएं उसे उसके लक्ष्य से डिगा नहीं सकती हैं । जबकि आत्मबल की कमी के कारण व्यक्ति में निराशा की भावना अधिक होती है और उसमें आत्मघाती प्रवृत्तियों की बलवती होती है । कुछ ऐसे भी युवक होते हैं जो बीच की स्थिति में होते हुए भी आशावान होते हैं । "भ्रम भंग" का चंदन ऐसा ही युवक है । उसके सामने हजारों समस्याएं हैं । वह वर्तमान परिस्थितियों से संघर्ष करता है । निराशा भी होता है, अकेले में रोता भी है, फिर भी उसके अन्दर जीवन के प्रति विश्वास है । जीवन संघर्ष करने के लिए उसमें आत्मबल है । वह अपने आपको हारा हुआ नहीं मानता । "पचीस-छब्बीस वर्ष की आयु में हम थक जाते हैं ..... लेकिन मैं नहीं मानता कि थक गया हूं । ..... जिस दिन मान लूंगा मेरी मौत हो जायेगी । इसीलिए नहीं मानना चाहता । जब तक लकड़हारे का लड़का एब्राहम लिंकन बन सकता है, बेकर का बेटा नोपेलियन हो सकता है, या एक मध्यवर्गीय परिवार से सरदार पटेल या जयप्रकाश निकल सकते हैं तो मैं, चन्दन, नेगी भी कुछ विशिष्ट बन सकते

हैं । मैं बनूंगा ।"[43] चन्दन की इस सोच में उसका आत्मविश्वास झलकता है ।

आत्मविश्वासी व्यक्ति जिसको स्वयं अपने ऊपर विश्वास हो कि वह भी कुछ कर सकता है, महत्वाकांक्षी होता है । उसके सामने कुछ करने की इच्छाएं व स्वप्न होते हैं । लक्ष्य की पूर्ति के लिए ऐसे युवक परिस्थितियों से संघर्ष करते हैं । "नरक दर नरक" का नायक जगन निर्भीक व जुझारू युवक है वह कालेज में नये परिवेश की रचना करना चाहता है लेकिन असफल हो जाता है । असफलता की स्थिति में वह कुछ कमजोर अवश्य हो जाता है परन्तु जीवन संघर्ष से मुंह नहीं मोड़ता वह जीने के लिए आत्मविश्वास के साथ संघर्ष करता है । यही आत्मविश्वास "अलग-अलग वैतरणी" में शशिकान्त के व्यक्तित्व में देखने को मिलता है । शशिकान्त करैता गांव के स्कूल में एक अध्यापक होने के नाते वहां की कलुषित परिस्थिति में सुधार करना चाहता है । वह स्कूल के लिए भवन उपलब्ध करवाता है । छात्रों के खेल-कूद के लिए सामग्री की व्यवस्था करता है । शशिकान्त का लक्ष्य बिलकुल साफ है । इसीलिए वह पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जाता है ।

कथित दशक के युवा पात्रों में बहुतायत ऐसे ही युवक मिलते हैं जिनमें आत्मविश्वास समय के साथ सुदृढ होता है । प्रारंभ में युवक कर्म क्षेत्र में चंचल विश्वास के साथ उतरते हैं । थोड़ी सी उलझन ही युवक के लिए बड़ी जान पड़ती है और वह कुंठित तथा निराशावादी हो जाता है । परन्तु पुनः वह अपने इन प्रवृत्तियों से संघर्ष करता हुआ आशावान हो उठता है और एक नये सिरे से उसमें आत्मविश्वास की भावना उभरती है । "सीमाएं टूटती है" की चांद तथा राज, "रुकोगी नहीं राधिका" में अक्षय, "रेत की मछली" में

कुंतल, "रथ से गिरी बासुरी" की कावेरी में आत्मविश्वास समय के साथ सुदृढ होता है। प्रारंभ में ये पात्र निराशाजनक परिस्थितियों के शिकार हैं। परन्तु बाद में इन पात्रों में आत्मविश्वास आ जाता है। चाँद जो परिवार से कट गयी है, प्रोफेसर से मिलने के उपरान्त एक नये जीवन की ओर मुड़ती है। वह समझ जाती है कि जीवन घटनाओं से ही निर्मित होता है। किसी अनचाही घटना को जीवन का लक्ष्य मानना उसकी भूल है। चाँद की तरह ही कुंतल भी एक अनचाही घटनासे विचलित हो जाती है। वह जब तक शोभन में अपना सहारा ढूंढती है, उसे दुतकार तथा अपमान ही मिलता है। परन्तु जब वह परिस्थितियों को मानसिक स्तर पर स्वीकार लेती है तो उसमें जीवन जीने की शक्ति आ जाती है। वह न तो विधवा है और न ही बूढी या पतिता, अत: उसे आश्रम में भी सहारा नहीं मिलता है। कुंतल एक नारी है और वह एक नारी के रूप में ही जीना है, इसीलिए वह आगे की पढाई पूरी कर नौकरी कर लेती है। पति के द्वारा परित्याग किए जाने पर वह किसी पर बोझ बनना नहीं पसंद करती है। "तीसरा आदमी" की सुषमा में आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा हुआ है। पति द्वारा शक के आधार पर छोड़े जाने के बावजूद वह न तो आक्रोशी होती है और न ही पति से शिकायत करती है बल्कि बच्चों के साथ एक छोटी सी नौकरी करके ही जीवित है।

आत्मविश्वास की दृष्टि से इस दशक के युवकों में पिछले दशकों से कहीं ज्यादा आत्मविश्वास है। निराशा के पीछे भी आशा व आत्मविश्वास है। विषम परिस्थितियों में युवकों को पिछले दशकों से कहीं ज्यादा संघर्ष करना पड़ रहा है। परिवार से लेकर व्यवसाय तक उसे संघर्ष के शोलों से होकर गुजरना पड़ रहा है। फिर भी उसमें आत्महत्या या पलायन की भावना न्यूनतम है। वह हार के बावजूद भी जीत के लिए उठता है। "बीमार शहर" में निरंजन इसी बात की पुष्टि करता है। "देह मुश्किल से मिलती है। मरने की कल्पना

करना मूर्खों का काम है । मरें वे जिनमें आत्मबल न हो, जिनका मनोबल नष्ट हो गया हो, जो कायर हो, जो पुरूषार्थ से दूर भागते हों, जो कोरा भाग्य के लिए सुनहरे सपने बुनते हों, अकर्मण्यों के लिए मौत अभीष्ट है । काम करनेवालों के लिए तो जीवन चाहिए ।"44

अभी तक युवकों की अपेक्षा युवतियों में संघर्ष की भावना कम दिखाई देती थी । परन्तु इस दशक तक आते-आते युवक और युवतियों में संघर्ष की समान भावना काम करती है । शारीरिक बल में युवतियाँ युवकों से थोड़ी कम भले ही हो परन्तु मानसिक बल में युवतियाँ युवकों के बराबर हैं । अपवादों की बात दूसरी है । आज की युवतियाँ अपने अधिकार और कर्तव्य के प्रति सचेत हैं । पारम्परिक मान्यताओं को बंद आँखों से स्वीकार करना जागरूक युवतियों को स्वीकार नहीं है । आत्मविश्वास युवतियों में भी दिखाई देता है । "बीमार शहर" की शोभना, अयूसर तथा मिस गौरा की तीनोंलड़कियों में आत्मविश्वास भरा हुआ है । दाम्पत्य जीवन में आज जो दरार दिखाई देती है उसका कारण स्त्रियों में आत्मविश्वास और निर्भरता ही है । "आपका बंटी" की शकुन आत्मनिरर्भरता तथा आत्मविश्वास के बल पर ही पति अजय से अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है । वह भाग्य के भरोसे जीवन जीना नहीं चाहती, बल्कि कर्म के आधार पर अपने जीवन को निर्मित करने में विश्वास करती है । जबकि शकुन के विपरित "अन्तराल" की श्यामा है । श्यामा में सब कुछ है, परन्तु आत्मविश्वास की कमी है । इसीलिए वह द्वन्द्वों में फंसी हुई है ।

3. ध्येय और दिशाहीनता :

आज का युवक अपने आप को जीवन के ऐसे मोड पर पाता है जहां से दसो दिशाओं में बासियों रास्ते जाते हैं और वह वहां खडे-खडे यह तय नहीं कर पाता कि कौन सा रास्ता उसका अपना है जिसके साथ चलकर वह अपनी मंजिल तक पहुंच सकेगा । वह दिग्भ्रमित हो जाता है । उसके सामने न तो लक्ष्य का बोध है और न ही उसकी पहचान । इसीलिए उसे दिशा का बोध नहीं हो पाता । हर कोई अपनी-अपनी ढपली, अपना-अपना राग अलापता सा लगता है । प्रश्न ध्येय और दिशा का नहीं है बल्कि प्रश्न ध्येय और दिशा को निर्धारित करनेवाले तत्वों का है । बच्चा जब तक पढ़ता और बढ़ता है तब-तक इसका संकट अल्प होता है परन्तु जब वह युवा हो जाता है और पढ़ाई पूरी कर कुछ करना चाहता है तो यही संकट विकराल रूप में सामने खड़ा हो जाता है । यही वह चौराहा है, जहां से एक रास्ता उसे चुनना पड़ता है । रास्ते या दिशाओं के चुनाव में ध्येय तथा प्रेरणा, व्यक्तित्व व [redacted] मानसिक रूझान का महत्वपूर्ण स्थान होता है । शिक्षा ध्येय व मानसिक रूझान को पहचानने में मदद करती है । परिवार तथा समाज से वह प्रेरणा प्राप्त करता हुआ वह आगे बढ़ने का प्रयास करता है । परन्तु दुर्भाग्य यह है कि आज के युवा वर्ग के लिए यह सब कुछ इतना आसान नहीं है । स्कूली शिक्षा के दौरान ही उसे अपने परिवार की स्थितियों से भलिभांति परिचित हो जाना पड़ता है । मध्य वर्गीय परिवार पर आर्थिक संकट के बादल मंडराते रहते हैं, जबकि निम्न वर्ग के परिवार का आधार ही आर्थिक अभाव है । निम्न वर्ग के बच्चे स्कूल जाने के बजाय खेत-कारखानों में ही अपनी शिक्षा और अपने जीवन का ध्येय तलाश करते हैं । होटलों में प्लेट धोते हुए ही जीवन का लक्ष्य तलाशते हैं और उन्हें अपने कर्म के आसपास मिल भी जाता है । दिशाहीनता का अर्थ उन के लिए जीवन से कटना नहीं बल्कि उनके जीवन का उस रूप में विकास है ।

इस स्थिति को "मुरदा घर" में देखा जा सकता है । बंबई जैसे महानगर में जीवन यापन करनेवाले ये निम्न वर्ग के युवक जीवन की सम्वेदनाओं से जड़ हो चुके हैं । उनके लिए न कुछ होता है न होगा । अनचाहे ये पैदा हुए हैं और अनचाहे ही मर जाएंगे । इनके जीने और करने का न तो कोई ध्येय है और न ही दिशा । होटलों का कचरा इनका खाना है और दिन के बाकी समय गटर में ताश खेलना, काम । मनोरंजन के नाम पर रंडियों का अड्डा है तथा नंगे आदमी को ढेला मारना और उसके पीछे भागना, खेल-कूद की सामग्री । "नंगा आदमी दौड़ता है । लड़के तालियां बजाते हैं । ..... भागते हैं ..... और रुक कर खड़े हो जाते हैं । ..... उजाले के पास । नंगा आदमी नहीं आ सकता आगे ..... खुल गया लूंगा ..... बज गया पुंगी ...... साला ढुंगी .... किधर तेरा लुंगी ?"[45]

ध्येय और दिशा का महत्व मध्यवर्गीय युवा के लिए अधिक है । उसका हर कदम जीवन के लिए महत्व रखता है । यदि वह सही समय पर अपना ध्येय और दिशा नहीं तय कर पाता तो उसे अपने परिवार में कलंकित होना पड़ता है । जवानी में उठाया गया एक गलत कदम उसके संपूर्ण जीवन को बरबाद कर देता है । जटिल व विषम परिस्थितियों में पला व बढ़ा मध्यवर्गीय युवक के सामने ध्येय की समस्या पहले होती है, फिर उसकी पूर्ति के साधन व रास्ते की । "अपना मोर्चा" में युवकों की समस्या नौकरी या व्यवसाय की है । वे ऐसी शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं जिससे नौकरी या व्यवसाय प्राप्त कर सके । परन्तु व्यवस्था इसके विपरित है । शिक्षा का संबंध जीवन से न होकर मात्र शिक्षा भवन से है जिसके बाहर उसकी कीमत शून्य है । अत: वर्तमान शिक्षा प्रणाली से क्षुब्ध छात्र कुछ करना चाहते हैं और वे भाषा के विरोध में आन्दोलन करते हैं । यह आंदोलन उसके ध्येय के विपरीत है । परिणाम यह होता है कि युवक अपने

लक्ष्य से हट जाते हैं । अंग्रेजी हटाओ से प्रारंभ हुआ आन्दोलन पी·ए·सी हटाओं में बदल जाता है । ध्येय की अस्पष्टता ही उनसे समाजविरोधी कार्य करवाती है ।

ध्येय और दिशाहीनता का स्वरूप लाल-पीली जमीन तथा "बीमार शहर" के युवा पात्रों में भी विद्यमान है । "लाल पीली जमीन" के पात्रों का ध्येय मार-पीट करना, गैंग बनाना तथा लड़की फंसाना है । सफल व इज्जतदार युवा वही है जो हिंसक कार्य करता है और दिन दहाडे लड़कियों की इज्जत से खेलता है । कस्बाई संस्कार युवाओं को और कुछ करने और सोचने की जमीन ही पैदा नहीं कर पाती । शिक्षा का मूल्य इन छात्रों के लिए कुछ भी नहीं है । नैतिक मूल्य समाप्त हो चुके हैं । वास्तव में ये युवक ध्येय के अभाव में दिशाहीन हैं ।

महानगरों में हर रोज बढ़ती भीड़ और यांत्रिक परिवेश का शिकार बना युवक अपने को हताश, असहाय, और कुंठित पाता है । जो बहती गंगा में हाथ धोने की कला जानते हैं उन्हें कोई समस्या नहीं है । लेकिन जिनकी शिक्षा और संस्कारों का परिस्थितियों से मेल नहीं हो।पाता । संकट वास्तव में उन्हीं में है । "बेघर" का परमजीत आर्थिक समस्याओं को हल कर लेता है । लेकिन संस्कार की परिधि में असफल हो जाता है । संजीवनी को ठुकराकर वह रमा से विवाह कर लेता है और यहीं से उसके जीवन में यातनाओं का अटूट सिलसिला चल पड़ता है । वह राह से जुदा हो जाता है । "रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका तथा मनीष सही लक्ष्य के अभाव में सांस्कृतिक भटकाव में भटक रहे हैं । राधिका पिता का विरोध करती है परन्तु उसका विरोध उसके स्वयं के लिए अशुभ होता है । वह भूमि की तलाश में भटक रही है । "सीमाएं टूटती है" की चांद जीवन की घटनाओं को सहज रूप में स्वीकार न कर पाने के कारण नैतिक भटकाव झेलती है । भाई-भाभी के क्रोध को झेलती है ।

"आपका बंटी" में शकुन, "तीसरा आदमी" में नरेश, "रथ से गिरी बांसुरी" का अनुपम भी ध्येय को सही तरह से पहचान नहीं पाते । फलस्वरूप दिग्भ्रमित हो जाते हैं । शकुन अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है । परन्तु प्रतिशोध में डा० जोशी से शादी करती है । उसके लिए दूसरा शादी ध्येय नहीं था । इसीलिए वह अब भी मन से रिक्त है । मध्यवर्गीय युवकों का ध्येय अब एक मात्र पैसा कमाना रह गया है । वे इसे अर्जित करने के लिए तरह-तरह के अच्छे-बुरे कर्म करते हैं ।

मध्यवर्गीय युवकों के विपरीत उच्च वर्गीय युवकों का ध्येय तथा दिशा करीब निश्चित होती है । उन्हें मध्यवर्गीय युवकों की तरह अपनी मंजिल तलाश करने के लिए दर-दर ठोकरें नहीं खानी पड़ती । उनके युवा होने से पहले ही नौकरी या मंजिल तय होती है । आधुनिकता के आवरण में लिपटे इस वर्ग के युवक अकेलेपन के शिकार होते हैं । "अलग-अलग वैतरणी" में विपिन की समस्या पैसा या इज्जत कमाना नहीं है बल्कि उसकी समस्या अकेलेपन की है । वह अपने स्वयं को अपने परिवेश में समाहित नहीं कर पाता ।

कुल मिलाकर कथित दशक के उपन्यासों में युवा मानस की दिशाहीनता को छूने का प्रयास तो है लेकिन विस्तार वर्णन नहीं है । युवकों के सामने ध्येय की विविधता है । वह पैसा के साथ प्रतिष्ठा की भी कामना करता है । परिवार को सुखी देखने की ललक भी उसके मन में है । अत: लक्ष्य की विविधता में युवक उलझ गया है और वह दिशाहीन होकर इधर-उधर भागता हुआ नज़र आता है ।

4. भविष्य बोध :

भविष्य बोध का सीधा अर्थ है कि -- युवा अपने भविष्य को किस नजर से देखता है । हजारों यातनाओं व समस्याओं के बीच से गुजरता एवं झेलता हुआ युवा आज अपने जीवन के प्रति आस्थावान है । वह अपनी असफलताओं को खुदा की देन नहीं मानता । वह जान चुका है कि व्यवस्था में फैला हुआ भ्रष्टाचार ही बुराइयों की जड़ है अत: हमें इन बुराइयों से लड़ना होगा । किस्मत पर रोने से अच्छा है । बुराइयों से संघर्ष करना । इसीलिए वह मानसिक स्तरवालों संघर्ष करने के लिए तैयार हैं । वह यह मानकर चल रहा है कि उसका संघर्ष बेकार नहीं जायेगा । "भ्रमभंग" में चन्दन इसी विचारधारा से प्रेरित है । "अगली पीढ़ी का निर्माण होना है चन्दन वह पीढ़ी कुछ बन सके इसके लिए तुम्हारी पीढ़ी को संघर्ष करना है । अभावहीन जिन्दगी के लिए संघर्ष करना है । अच्छी शिक्षा के लिए संघर्ष । अच्छाई के लिए हमेशा संघर्ष करना होता है । इस व्यवस्था के लिए हमेशा संघर्ष करना ही होगा । संघर्ष ही विकल्प है ।"[46] चन्दन की इस भविष्यवाणी में सभी युवाओं की आस्था है ।

आजके युवा वर्ग के सामने न तो आदर्श है और न ही व्यवस्था उनके मानस में विश्वास जगा पायी है । आजादी के सपनों को टूटे दशक बीत चुका है लेकिन किसी को कोई फर्क नहीं महसूस हुआ । मोह का भंग होना आज के परिवेश में आदमी को व्यथित नहीं करता है । बल्कि मोह एक भ्रम सिद्ध हुआ जिसका अस्तित्व ही झूठ पर था । इसीलिए युवा के मन में किसी के प्रति मोह की भावना है ही नहीं । वह सत्य को बहुत करीब से देखने व पहचानने की ताकत रखता है । उसके जीवन का लक्ष्य ही संघर्ष है । वह अपना जीवन लक्ष्य संघर्ष के द्वारा ही प्राप्त करना चाहता है । "सीमाएं टूटती हैं" में

राजनाथ अपने बडे भाई से कहता है तुम्हारा ईश्वर हमें इस घटना से उबार नहीं सकता । इस घटना से उबरने के लिए हमें सबूत इकट्ठा करना होगा । मैं जानता हूं कि असली हत्यारा विमल है, लेकिन सबूत के अभाव में वह कानून से बच गया, परन्तु मैं उसे नहीं छोड़ूंगा । राजनाथ का यह उबाल उसके जूझारू प्रवृत्तियों को उजागर करता है ।

"सोया हुआ जल" में दिनेश समाज की भविष्यवाणी करता हुआ कहता है कि "नया सवेरा आ रहा है, नयी रोशनी आवेगी, नयी जिन्दगी आवेगी उसे कोई रोक नहीं सकता ।"47 इस नया सवेरा, रोशनी तथा जिन्दगी का तात्पर्य उस समाज व व्यवस्था से है जहां समानता का स्वर प्रतिष्ठित होता है । "रथ से गिरी बांसुरी" का अनुपम जो कि एक कमजोर युवक था, परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ आशावान हो उठता है । वह जीवन को एक अमूल्य निधि मानता है -- "मेरी समझ से जो आदमी निराश होने और आंसू बहाने में विश्वास करता है । उस पर अदालत में मुकदमा चलना चाहिए और वही सजा उसे मिलनी चाहिए जो सजा आत्महत्या की कोशिश करनेवालों को मिलती है ।"48 अनुपम यह मानकर चलता है कि समय आने पर सब कुछ ठीक हो जायेगा । व्यक्ति को घबरा कर हिम्मत नहीं हारनी चाहिए ।

आज का युवा धर्म में विश्वास नहीं करता वह एक ऐसे समाज की रचना करना चाहता है जहां व्यक्ति की पहचान योग्यता के आधार पर हो । "आज न मेरे मन में इस धर्म के प्रति आस्था है और न ही मैं हिन्दु कहलाने में अपने में गौरव महसूस करता हूं । अच्छा हो दुनिया मे धर्म का भेदभाव ही उठ जाए । ..... धर्म वही है जो धारण करने योग्य है ।"49 "बीमार शहर" की मंजरी का यह कथन उसके भविष्य बोध को उजागर करता है ।

आज के युवा वर्ग में जीवन के प्रति अटूट विश्वास है। वह जीवन जीने में ही विश्वास करता है। "रिहर्सल" की रोना जीवन संघर्ष हार जाती है। फिर वह जीवन को बुरा नहीं समझती। "अपना मोर्चा" तथा "गली आगे मुड़ती है" के छात्र युवा शिक्षा व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। वे शिक्षा व्यवस्था में बबदीली लाना चाहते हैं। संघर्ष के दौरान मार-खाते हैं, यातनाओं से गुजरते हैं लेकिन हिम्मत नहीं हारते। बार-बार परास्त होकर खड़ा होना उनके बुलंद हौसले को जाहीर करता है। छात्रों के संघर्ष को एकजुट करते हुए ज्वान कहते हैं कि "अगर आजादी ने बच्चे को बच्चा नहीं रहने दिया है तो हिन्दुस्तान में तीस साल की उमर तो बुढ़ापे की उमर और यह उमर है जिसमें आपके सारे जोड ढीले पड़ने लगते हैं, दाँत झड़ जाते हैं, गाल गड्ढे हो जाते हैं और आँखें सिर्फ दूरी के नाम पर मौत देख पाती है। और अगर आपकी हालत यह है तो अपने बदन की सारी ढीली गाँठों को जोड़िए और तनकर खड़े हो जाइए।"[50] ज्वान के इस कथन से दो बातें साफ होती है एक तो कि मौजूदा व्यवस्था ने व्यक्ति को असमय ही बूढ़ा बना दिया है और दूसरी यह कि हमें मौजूदा व्यवस्था से इस स्थिति के लिए लड़ना होगा।

संघर्ष वही करता है जिसके सामने लक्ष्य हो। लक्ष्य और शक्ति के साथ संघर्ष या विद्रोह का जन्म होता है। आज के युवा संघर्षरत हैं।। अत: इससे यह बात साफ है कि उसका भविष्य है। वह अपने भविष्य की रक्षा करने के लिए ही संघर्ष करता है। इस दशक के सभी युवा पात्र जीवन संघर्ष में संलग्न हैं।

वह जीवन की असफलताओं से निराश व हताश होकर भी पुन: संघर्ष और कुछ करने के लिए कमर कसकर खड़ा हो जाता है। वह व्यवस्था के हर नासुर को भलिभाँति पहचानता है और वहीं पर चोट

कर रहा है । पारम्परिक मूल्यों में उसका विश्वास नहीं रहा है । वह जीवन को अपनी पसंद के अनुसार जीने की इच्छा रखता है । जो संबंध उसे बोझ लगते हैं वह उन्हें ढोने में विश्वास नहीं रखता । ईश्वर का अस्तित्व भी वह वहीं तक स्वीकार करता है जहाँ तक शुभ हो । अपने जीवन की बाधा के रूप में वह ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करता है । आज का युवा कर्म की प्रधानता को मानता है । धर्म व नैतिकता की चकाचौंध उसे आकर्षित नहीं करते हैं । वैज्ञानिक दृष्टि से वह हर विचारधारा व वस्तु को परखता है । अंधी भक्ति उसे पसंद नहीं है । तात्पर्य यह है कि आठवें दशक के युवा पात्र अपने भविष्य के प्रति अधिक सचेत जागरूक और आस्थावान हैं । भविष्य की सुरक्षा का प्रश्न उनके दिमाग में सबसे पहले आता है । सबकुछ खोकर भी वे भविष्य की रक्षा करना चाहते हैं । उन्हें विश्वास है कि एक न एक दिन यह व्यवस्था अवश्य बदलेगी । हमारा संघर्ष सार्थक सिद्ध होगा । भविष्य के प्रति आस्था ही उन्हें विषम परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है । "अपना मोर्चा" के छात्र, "रूकोगी नहीं राधिका" की राधिका, मनीष, अक्षय, "सीमाएं टूटती हैं" की राज नाथ, चांद, नीला, "बेघर" की मंजरी संजीवनी, "बीमार शहर" की मंजरी, शोभना, उसका शहर की लूपिका आदि पात्र अच्छे भविष्य के लिए ही संघर्ष करते हैं ।

5. वैयक्तिक चेतना :

वैयक्तिक चेतना सामाजिक चेतना की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व देती है । उसके अनुसार समाज की उन्नति के लिए व्यक्ति का विकास आवश्यक है । व्यक्ति-व्यक्ति की भिन्नता स्वीकार करते हुए इस चेतना के व्यक्ति वैयक्तिक स्वतंत्रता का समर्थक होता है । उसके अनुसार समाज का हर व्यक्ति अलग-अलग होता है । अतः समाज का एक जैसा नियम सभी व्यक्तियों पर लागू नहीं हो सकता । इस

प्रकार वैयक्तिक चेतना से प्रेरित व्यक्ति समाज में प्रचलित मान्यताओं को भी नकारता है । प्रचलित और सर्वमान्य-मान्यताओं को नकारने की इस प्रक्रिया में उसे अनेकों यातनाओं से गुज़रना पड़ता है । इस तरह के व्यक्तियों में दो प्रवृत्तियां मुख्य रूप से दिखाई पड़ती है । एक अहम की और दूसरी पलायन की भावना । इन दोनों प्रवृत्तियों के कारण व्यक्ति में अनेकों मानसिक ग्रंथियां सक्रिय होती हैं जिसके परिणाम स्वरूप मानव मन अधिक जटिल हो जाता है । वैयक्तिक चेतना से प्रेरित व्यक्ति स्वयं का विकास चाहता है । वह अपने वैयक्तिक जीवन-दर्शन के अनुसार अपने जीवन की परिभाषा करता है । उसका सुख-दुख नितान्त उसका ही । "भ्रम भंग" में नन्दू तथा पुष्पा दोनों ही वैयक्तिक चेतना से प्रेरित हैं । इन दोनों पात्रों को परिवार के अन्य सदस्यों से कोई मतलब नहीं है । वे अपने भाई के सुख-दुख से कोई सरोकार नहीं रखते, बल्कि उनकी अपनी आवश्यकता ही पूरी नहीं पड़ती है । अपनी दुनिया में खोए हुए नन्दू तथा पुष्पा घर की मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं ।

व्यक्ति और समाज का संबंध एक सहज और स्वाभाविक संबंध है । व्यक्ति के बिना समाज और समाज के बिना व्यक्ति नहीं रह सकते । समाज की संकल्पना व्यक्ति के उद्भव के बाद ही हुई है । फिर समाज व्यक्ति के कार्यों को नैतिक, लाभकारी, तथा मर्यादित करता है । परन्तु टूटते हुए मूल्यों व गिरती हुई नैतिकता समाज के इन नियमों को कुचल रही हैं दिन पर दिन व्यक्ति भोगवादी होता जा रहा है । युवा व्यक्ति भी इन प्रवृत्तियों से वंचित नहीं है । वह समाज के हर नियम व मर्यादाओं का उल्लंघन करता है जो उसके सुख-सुविधा में बाधा उत्पन्न करते हैं ।

आज के युवक सीधे तौर पर समाज को तथा सामाजिक महत्व को नहीं नकारते लेकिन उन सामाजिक परम्पराओं को नहीं अपनाना चाहते जो वर्तमान के आधुनिक जीवन में अनुपयोगी सिद्ध हुई है । पुरातन के स्थान पर नवीन मूल्यों की स्थापना में युवा वर्ग सदैव से अग्रणी रहा है । युवा वर्ग आज वैयक्तिकता और व्यक्ति स्वातंत्र्य की ओर ज्यादा उन्मुख है । वे अपना जीवन अपनी इच्छा के अनुसार अपने ढंग से जीना चाहते हैं । आज का युवक समाज के विधि, निषेधों, परम्पराओं और प्रथाओं को आँख मींचकर स्वीकार नहीं करता । युवक का अपना जीवन दर्शन है । उसके अपने जीवन मूल्य हैं । इसी कारण वह सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को वह अपनी दृष्टि से परखता है । फलस्वरूप उसे समाज से संघर्ष करना पड़ता है । आज के युवक के मन में सामाजिक आस्था के प्रति क्षोभ है और इसके विरोध में वह वैयक्तिक भावना के अनुसार जीना चाहता है । इस प्रकार के जीवन में वह किसी भी प्रकार की कठिनाइयों को झेलने के लिए उसे पहले मानसिक स्तर पर तैयार होना पड़ता है ।

"रूकोगी नहीं राधिका" में राधिका के व्यक्तित्व में वैयक्तिक भावना अधिक है । वह अपने जीवन पर किसी प्रकार का बंधन स्वीकार नहीं करना चाहती । वह अपने ढंग से स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है -- "मैं स्वेच्छापूर्ण जीवन की इतनी आदी हो गई हूं कि बिंधन सह नहीं पाती ।"[5] "सीमाएं टूटती हैं" की चांद भी राधिका की तरह ही वैयक्तिक भावना को ही महत्व देती है । जो दुर्घटना पूरे परिवार के साथ जुड़ी हुई है उसे वह वैयक्तिक रंग देकर अपराध भावना से ग्रस्त हो जाती है । परिवार की इज्जत का उसे जरा भी ध्यान नहीं है । वह सरे आम पिता के हम उम्र दोस्त के साथ घूमती है ।

"बेघर" में रमा तथा संजीवनी का भाई घोर वैयक्तिक चेतना से प्रेरित है। ये पात्र अपने स्वार्थ के आगे कुछ देख ही नहीं पाते। रमा इतनी व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की स्त्री है कि वह अपने सुख में पति का सुख भी नहीं देख पाती। "चीजों के प्रति रमा का दृष्टिकोण फायदे - नुकसान का था। रमा का दिमाग छोटे से छोटा होता जा रहा था। इसी अनुपात में परमजीत की दहशत बढ़ रही थी।"[48] आपका बंटी में अजय तथा शकुन का व्यक्तिगत प्रतिशोध बंटी को प्राब्लम चाइल्ड बना देता है। उनकी ~~व्यक्ति~~ वैयक्तिक सुख की कामना इतनी अधिक है कि वे बच्चे के भविष्य के बारे में सोच ही नहीं पाते हैं। अस्तित्व की लड़ाई के मूल में वैयक्तिक भावना ही काम करती है। चूँकि यह लड़ाई युवा के साथ ही अधिक होती है इसीलिए उसमें वैयक्तिक भावना का होना आश्चर्यजनक घटना नहीं है।

आधुनिक युग की अर्थ की सभ्यता ने हानि-लाभ की भावना से प्रेरित व्यवसायिक बुद्धि को जन्म दिया है। दया, क्षमा, प्रेम, सहानुभूति आदि मानव-मूल्यों का क्षेत्र संकुचित होता गया। संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं और व्यक्ति अपने स्वार्थी प्रवृत्तियों को ही सर्वोपरि मानने लगा है। ऐसे परिवार व पारिवारिक परिवेश में युवा बचपन से ही विघटनकारी तत्व को देखता व समझता आ रहा है। परिवार में दिन-रात के कलह, आर्थिक संकट, भ्रष्ट व्यवस्था उसे नैतिक व मर्यादित रास्तों से जुदा कर देती है। वह स्वयं के विकास में ही लगा रहता है।

वैयक्तिक चेतना औद्योगिक युग की देन है। विज्ञान के बढ़ते चरण ने मानव के जीवन को इतना छोटा कर दिया है कि वह अपने से अलग दूसरे के बारे में सोच ही नहीं सकता। नित्य नये अविष्कार, बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरों में बढ़ती हुई भीड़ व्यक्ति की

स्वार्थ भावना को जगाती है । मध्यवर्गीय परिवार के युवकों में वैयक्तिक चेतना उच्च वर्ग की अपेक्षा कम पायी जाती है ।

जीविकोपार्जन में व्यस्त माता-पिता संतान को ऊंची शिक्षा नहीं दे पाते यह उनकी विवशता है । बच्चों की संख्या उनकी आयु के अनुसार में अधिक होती है । अत: बच्चे एक दूसरे के साथ सीमित साधनों में ही मिल-जुलकर रहना बचपन से ही सीखते हैं और बड़े होकर ये बच्चे स्वयं की अपेक्षा परिवार के लिए कुछ करने की सोचते हैं । इस वर्ग के युवकों का सपना परिवार को खुशहाल देखना होता है । "भ्रम भंग" में चन्दन का परिवार एक मध्यवर्गीय परिवार है । चन्दन घर का बड़ा होने के कारण परिवार के प्रति जिम्मेदारी महसूस करता है । उसमें वैयक्तिक चेतना बहुत बाद में उभरती है । जबकि इसके विपरीत उच्च वर्ग के युवक बचपन से ही वैयक्तिक चेतना से प्रेरित होते हैं । धन की पर्याप्तता में पले व बड़े हुए इस वर्ग के युवक दूसरों को सुख और दुख से सरोकार नहीं रखते हैं । यही कारण है कि आगे चलकर उनकी वैयक्तिक भावना उन्हें अपने ही परिवार में अकेला व अजनबी बना देती है । माता-पिता के संगत का अभाव इस वर्ग के युवकों के साथ बचपन से होता है । अत: इस वर्ग के युग बहुतायत स्वयं की प्रतिष्ठा व समृद्धि में विश्वास रखते हैं ।

यूं तो आज के युग में हर व्यक्ति थोड़ा-बहुत वैयक्तिक भावना से प्रेरित है । विज्ञान के चमत्कारों ने व्यक्ति के सामूहिक जीवन की भावना को सोख लिया है । व्यक्ति की पहचान आज उसके परिवार से कम उसके स्वयं के ओहदे और समृद्धि से है । अर्थ पर टीका जीवन मूल्य व्यक्ति की जीवन दृष्टि को लघु करता जा रहा है । यही कारण है कि मध्य वर्ग के युवक भी सामाजिक विकास की अपेक्षा स्वयं को फलते-फूलते देखना चाहते हैं परन्तु पारिवारिक संस्कारों के कारण उनमें अभी भी इसको लेकर द्वन्द्व । आज के युवा की नीयति

ही वैयक्तिक है । पारिवारिक कलह का यह एक प्रमुख कारण है । "सीमाएं टूटती है", "अलग-अलग वैतरणी", "रेत की मछली", "नरक दर नरक" "लाल-पीली जमीन", "कड़ियाँ" आदि इसके उदाहरण हैं ।

6• राजनैतिक चेतना :

इस दशक के उपन्यासों के युवा पात्रों में राजनैतिक चेतना उतनी नहीं है जितनी की होनी चाहिए थी । इस दशक तक यात्रा करते हुए उपन्यासों में राजनीतिक पहलू कम हो गया है । राजनीतिक मानस में बैठ गया है । व्यवहार में कम हो गया है । सच तो यह है कि यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते व्यक्ति के लिए राजनीति का अर्थ बदल गया है । कुर्सी तथा सत्ता की राजनीति का अर्थ विस्तार हो गया है । अब केवल राज्य चलाने के लिए ही राजनीति करने की आवश्यकता नहीं है । बल्कि जीवन ही राजनीति बन चुका है । बिना राजनीति किये आज के व्यक्ति को लँगोटी से कफन तक नहीं मिलता है । पेट से लेकर कब्र तक के लिए उसे राजनीति करनी पड़ती है । अब उसे राजनीति सीखने की आवश्यकता नहीं है । राजनीति तो उसके खून में रची-बसी है ।

आज का युवा वर्ग भी इस राजनीति से परे नहीं है । वह राजनीति व राजनीतिज्ञों की नीयति को बखूबी समझता है । उसके मानस में न तो स्वतंत्रता प्राप्त करने की बादवाली सुकोमल, सुखद कल्पना है और न ही राजनीतिज्ञों के कारनामें उसे आश्चर्यचकित करते हैं । राजनीति की हर दाँव को वह भलि-भाँति समझता है और उसके आगे वह अपने आप को लघु समझता है । वह राजनीतिक चालों से बोखलता नहीं है बल्कि उसे जीवन या वर्ग की नीयति मानता

है । आज के जीवन में उसे राजनीति का ही बोलबाला घर से लेकर बाहर तक, जन्म से लेकर मृत्यु तक दिखाई देता है । वह राजनीति के इन खेलों का इतना अभ्यासी हो गया है कि उसने इसे जीवन का अंग मान लिया है । राजनीति को आज का युवा पैसा कमाने का एक साधन भर मानता है । "रथ से गिरी बांसुरी" में राजनीतिज्ञों के चरित्र की इस प्रकार से व्याख्या की गयी है । -- "हमारे यहां तो चाहे कोई कितना भी ज्ञानी हो, विद्वान हो अगर वह नेता नहीं है तो फिर उसकी कीमत दो कौड़ी से ज्यादा नहीं है । जो लोग मिनिस्टरी की कुर्सी पा गये हैं उन्होंने अपनी बीवी-बच्चों और भी कई रिश्तेदारों के नाम अथाह सम्पत्ति पैदा कर ली है । ..... कांग्रेसवाले न तो देश को ऊंचा उठा रहे हैं और न कुर्सी छोड़ रहे हैं । अपने स्वार्थ-साधन के लिए वे पूरे देश को रसातल की ओर धकेले जा रहे हैं ।"51 राजनीतिज्ञों की यह पहचान कोई नयी नहीं है ।

वास्तव में युवा मानस में सीधे तौर पर राजनीतिक चेतना शुन्य है वह राजनेता बनने का सपना नहीं संजोता, बल्कि सरकारी नौकरी या व्यवसाय हासिल करने की तमन्ना ही उसका चरम ध्येय है । इसीलिए वह राजनीति पर टीका-टिप्पणी नहीं करता है । वह स्वयं उसमें फंसना नहीं चाहता । वह जानता है कि गाली गलौज करने के दिन बित गये । राजनीति इतनी बेशर्म हो गयी है कि किसी के अपशब्द उसका बाल भी बांका नहीं कर सकते । इसीलिए युवक अब दूसरे रास्ते की तलाश में हैं । "अपना मोर्चा" के छात्र राजनीतिक पार्टियों के करीब है । लेकिन उनके मानस में राजनीति करने की कामना नहीं है, बल्कि उसके विचारों में राजनीतिक पर्टियों के प्रति अविश्वास ही झलकता है । ना समझी, धैर्यता तथा लक्ष्य की सही पहचान के अभाव में छात्र राजनीतिज्ञों के जाल में फंस जाते हैं । परिणाम उनके हाथ से निकल जाता है और वे पुलिस के मोर्चे

पर

पर मारे जाते हैं । युवा छात्रों का लक्ष्य आन्दोलन करना नहीं था लेकिन सही मार्गदर्शन के अभाव में वे आन्दोलन करते हैं । गुमराह हुए इन युवा छात्रों का उपयोग विपक्ष अपने हित के लिए करता है ।

"महाभोज" में राजनीतिक चेतना बिसू तथा वृंदा में थोड़ी मात्रा में दिखायी देती है । वास्तव में वे राजनीतिक भावना से प्रेरित नहीं हैं, उनमें व्यवस्था के प्रति आक्रोश है । बिसू निम्न वर्ग का पढा-लिखा मजदूर युवक है । वह अपने हक की लड़ाई लड़ना चाहता है लेकिन कोई उसका मार्गदर्शन नहीं करता है । वह राजनीति की भ्रष्ट नीतियों से पूर्णत: परिचित है । इसीलिए आगजनी काण्ड का सबूत वह स्थानीय सरकार की अपेक्षा दिल्ली सरकार को सौंपना चाहता है ।

आज की राजनीति का शिकार पुलिस प्रशासन, न्याय तथा व्यक्ति है । अत: जब युवक इनके सम्पर्क में आता है तो उसे यथार्थ में इसका बोध होता है । शिक्षा संस्थाओं से लेकर कार्यालयों व पदोन्नति तक के लिए युवा को राजनीति करनी व देखनी पड़ती है । सही राजनीतिक ज्ञान के अभाव में उसे असफलता का ही मुंह देखना पड़ता है । यूं तो युवक स्कूल से ही राजनीति की हलचल को महसूस करता है लेकिन रोजगार की तलाश में वह इसका शिकार होता है । जिन युवकों में राजनीतिक चेतना सकारात्मक होती है । वे जीवन संघर्ष आसानी से जीत जाते हैं, लेकिन जिनमें नकारात्मक होती है वे असफल होकर विद्रोही, आक्रोशी या फिर हताश व कुंठित हो जाते हैं । "काली आंधी" में मालती का पति राजनीति के घटियापन को इन शब्दों में उजागर करता है । "तुम्हारी यह राजनीति बड़ी घटिया चीज है । .....तुम लोगों ने इसे बहुदा बना दिया है । तुम लोग सिर्फ चीजों को बखूबी इस्तेमाल करना जाते हो । बाढ आयी तो उसे इस्तेमाल करो, सूखा पड़ा तो उसे इस्तेमाल करो .....

तुम लोगों ने आदमी के आंसुओं और जजबातों तक को नहीं छोड़ा है ।"[52] मालती का पति राजनीति के प्रति नकारात्मक सोच रखता है । इसीलिए उसे मालती से दूर जाना पड़ता है । "मैं सब छोड़-छाड़कर कहीं और चला जाऊंगा, गुल्सरन जी ..... इसीलिए नहीं कि मैं कमज़ोर हूं या जिन्दगी में जो फैसला मैंने लिया था, उसे गलत समझता हूं या मैं कुछ चाहता हूं ..... सिर्फ इसलिए कि मालती को जो दुनिया चाहिए ..... जो सक्सेस और सफलता चाहिए, वह उसे मिलती चली जाए, मेरी वजह से उसमें रुकावट न आए ।"[53] राजनीतिक के चरित्र को मालती स्वयं विश्लेषित करती हुई कहती है कि -- हम तो राजनीतिक लोग हैं । हमारे अपने खेल हैं । हम सब खिलाड़ी हैं । हम झटका खाकर भी उठ खड़े होते हैं । कलंकों को भी धो लेते हैं । यहां ज्यादा बड़ा कलंक औरों पर लगाकर अपने कलंकों को छोटा कर लिया जाता है । क्योंकि हम निडर होकर या कहिए किसी हद तक बेशर्मी से, मैदान में डटे रहते हैं । हार भी जाते हैं तो फिर उसी मैदान में जीतने के लिए लौटते हैं ।"[54]

अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि युवा मानस में राजनीतिक चेतना निष्क्रिय नहीं है बल्कि वह खुलकर राजनीति के मैदान में आने से कतराता है ।

उपरोक्त विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि युवक अपने अस्तित्व और लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अनेकों यातनाएं झेलते हुए भी आगे बढ़ने के लिए उत्सुक है । व्यवस्था की विसंगति व भ्रष्ट परिस्थितियां उन्हें आगे भविष्य के सपनों को साकार करने से रोक नहीं पायेगी । युवा वर्ग ने आगे बढ़ने की इस प्रक्रिया में ही अनेक मान्यताओं, जीवन मूल्यों व रूढ़ियों को तोड़ा-मरोड़ा है तथा उनकी जीवनोपयोगी व्याख्या प्रस्तुत कर अपने व्यक्तित्व को दोषयुक्त होने से बचाने का प्रयास किया है । अपने आत्मविश्वास, वैज्ञानिक दृष्टि तथा समय के साथ चलने का संकल्प ही युवा मानस को आशावान बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है ।

अध्याय पाँचवाँ

संदर्भ सूची

1. भारतीय युवा आक्रोश पृ. 66
2. भ्रम भंग पृ. 73
3. सीमाएं टूटती हैं पृ. 23
4. बीमार शहर पृ. 24
5. सोया हुआ जल पृ. 32
6. अन्तराल पृ. 126
7. आपका बंटी पृ. 120
8. बीमार शहर पृ. 135
9. पृ. 35
10. बीमार शहर पृ. 49
11. -"- पृ. 52
12. -"- पृ. 115
13. -"- पृ. 149
14. अन्तराल पृ. 198
15. रिहर्सल पृ. 162
16. भ्रम भंग पृ. 159
17. सीमाएं टूटती हैं पृ. 52
18. अपना मोर्चा पृ. 21
19. सोया हुआ जल पृ. 31
20. भ्रम भंग पृ. 148

21• अपना मोर्चा पृ• 19
22• भ्रम भंग पृ• 167
23• तीसरा आदमी पृ• 6
24• आपका बंटी पृ• 37
25• -"- पृ• 110
26• अपना मोर्चा पृ• 75
27• रिहर्सल पृ• 48
27• -"- पृ• 220
28• आपका बंटी पृ• 121
30• भ्रम भंग पृ• 203
31• अलग-अलग वैतरणी पृ• 227
32• आपका बंटी पृ• 35
32• सुरजमुखी अंधेरे को पृ• 92
33• भ्रम भंग पृ• 199
34• -"- पृ• 190
35• रिहर्सल पृ• 82
36• बेघर पृ• 108
37• रेत की मछली पृ• 136
38• अन्तराल पृ• 75
38• चितकोबरा पृ• 169
38• भ्रमभंग पृ• 58

39.	बीमार शहर	पृ. 151
40.	-"-	पृ. 100
41.	सुरजमुखी अंधेरे की	पृ. 103
42.	रेत की मछली	पृ. 166
43.	भ्रम भंग	पृ. 133
44.	बीमार शहर	पृ. 65
45.	मुरदा घर	पृ. 60
46.	भ्रम भंग	पृ. 122
47.	सोया हुआ जल	पृ. 57
48.	रथ से गिरी बासुरी	पृ. 183
49.	बीमार शहर	पृ. 63
50.	अपना मोर्चा	पृ. 89
51.	बेघर	पृ. 138
51.	रथ से गिरी बांसुरी	पृ. 113
52.	काली आंधी	पृ. 6
53.	-"-	पृ. 77
54.	काली आंधी	पृ. 71

उपसंहार

मानव जीवन में युवावस्था महत्वपूर्ण है । यह वह अवस्था है जब व्यक्ति किशोरावस्था की दहलीज को पार कर जीवन की दिशाओं के प्रति अग्रसर होता है । इस उम्र में होनेवाली घटनाएं भावी जीवन दिशा को तय करती हैं । यह अवस्था मनुष्य के लिए सम्पूर्ण विकास की अर्थात् शारीरिक और मानसिक परिणति के संक्रान्तिकाल की है । युवावस्था में व्यक्ति कुछ न कुछ नया करने की संभावना से पूर्ण होता है । युवा सशक्त सम्वेगिक तथा स्वतःस्फूर्त होता है । दूसरे शब्दों में युवा के आचरण के प्रेरक प्रायः सम्वेग होते हैं विवेक नहीं । वह कठिन से कठिन कार्य के लिए सहज रूप से तत्पर होता है । खतरों से खेलना उसका शौक है । युवावस्था तीव्र रूप में शारीरिक, भावात्मक और बौद्धिक विकास का काल है । अतः इस काल का संघर्षमय होना स्वाभाविक है । युवा आगे बढ़ने के लिए नयी दिशाओं व संभावनाओं की खोज में संघर्षशील होता है । उसका यह उद्देश्य महत्वाकांक्षाओं के रूप में, दिवा स्वप्न के रूप में तथा कभी-कभी नूतन चिन्तन के रूप में फूटते हैं । कहने की आवश्यकता नहीं है कि युवा अवस्था एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व सम्भावनापूर्ण अवस्था है । इस अवस्था में मानों मनुष्य भावी जीवन के चौराहे पर खड़ा होता है । इस समय युवा को सही मार्गदर्शन की अवस्था होती है जो उससे रचनात्मक कार्य करवा सके ।

आज का युवा इतना संघर्षी है कि उसका मानस रेशमी धागों की उलझन है । अवस्था और मानस का सन्तुलन बिगड़सा गया है । अर्थ का प्रश्न उसकी अवस्था और मानसिकता दोनों का निर्धारित ही नहीं बल्कि बरगलाने भी लगा है । अवस्था और मानस का असंतुलन आज की परिधि

में तेज़ी से बदल रहा है । इस बदलाव की स्थिति में युवावस्था का पैमाना बाज़ारी वस्तुओं की कीमत सी हो गया है जो नित्य नये अंकों को ग्रहण करती है । अत: युवावस्था क्या है ? युवा मानस के लक्षण तथा उसका सही या विकृत रूप क्या होगा, क्या होना चाहिए ? आदि प्रश्न प्रश्न ही रह गये हैं । विद्वानों और शास्त्रों के अध्ययनों के उपरान्त भी निश्चित व सर्वकालिक पैमाना निर्धारित नहीं हो पाया है ।

युवावस्था की आयु सीमा निर्धारण के संबंध में मतभेद हैं । मनोविज्ञान युवावस्था को कालक्रम की परिधि में न मानकर विकास और परिपक्वता को महत्व देता है जबकि समाजशास्त्री युवावस्था को विकास व परिपक्वता के साथ-साथ उत्तरदायित्व की भावना से जोड़कर 15 से 35 वर्ष की ओर ले जाते हैं । लेकिन सामाजिक शारीरिक मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर युवावस्था को 14 से 35 वर्ष के बीच मानना तर्कसंगत है । साथ ही यह भी स्वीकारना होगा कि 14 वर्ष की अवस्था में न तो सभी बालक युवा बन जाते हैं और न ही 35 वर्ष की अवस्था पार करते ही युवा प्रौढ़ बन जाते हैं और न ही यह धारणा सर्वकालिक है । परिस्थितियों के आधार पर युवावस्था का समय बदलता रहता है । यही कारण है कि आज ऐसे भी बालक हैं जो निर्धारित युवा समय से पहले ही युवा गुणों को प्राप्त कर लेते हैं या फिर युवा अवस्था के गुजर जाने पर भी युवा सम्वेगों से परिचालित रहते हैं या उनमें युवा गुण आ ही नहीं पाते हैं ।

मानव के बौद्धिक विकास का संबंध उसकी आयु, उसको प्राप्त वातावरण, उसकी सामाजिक स्थिति तथा वंशानुगत स्थिति आदि पर भी आधारित होता है । इन सबको समग्र रूप में समेटकर ही मनोविज्ञान ने मानव की बौद्धिक स्थितियों का विवेचन प्रस्तुत किया है । इस विवेचन के आधार पर ही देखा जा सकता है कि आयु के साथ-साथ मानव की बाह्य और आन्तरिक प्रवृत्तियां किस प्रकार विकसित होती हैं ।

युवावस्था से पहले की अवस्था किशोरावस्था है । बचपन के समाप्त होने पर किशोरावस्था का आगमन अनेक शारीरिक व मानसिक परिवर्तन के साथ होता है जो युवावस्था की प्रारंभिक अवस्था है । जिसमें युवक इन परिवर्तनों की सक्रियता व उत्तेजनाओं को तेज़ी से अनुभव करता है । इस अवस्था में किशोरके मानस का सिर्फ विकास होता है । स्थिरता उसमें नहीं आती । स्थिरता उसमें तभी आती है जब वह विकास की अवधि पूर्ण कर लेता है । मानसिक अस्थिरता के कारणही युवक इस अवस्था में आकर्षण-विकर्षण दोनों का अनुभव एक साथ या क्षणों के अन्तर में एक ही वस्तु में करता है । किशोरावस्था की पूर्णतःपरिणति ही युवावस्था है । जब वह इन अनेक परिवर्तनों से गुजरता हुआ विकास की पूर्णता में पहुंचता है तो काफी हद तक अपने आप में स्थिरता महसूस करने लगता है । शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी पूर्ण स्थिति पर पहुंच जाता है । शक्ति व ऊर्जा का संचयन हो जाता है तथा उसकी दृष्टि पहले से कहीं अधिक बौद्धिक व सामाजिकता के निकट होती है । वह अपने आपको अपने तक ही सीमित नहीं रख पाता, बल्कि उसका संबंध समाज, व्यवस्था व जीवन से एक नियोजित योजना के साथ जुड़ने लगता है । इसीलिए इस अवस्था को परिपक्वता की दहलीज घोषित किया गया है । युवावस्था प्राथमिक सम्वेग जैसे प्रेम, भय और क्रोध से विशेष रूप से परिचालित होता है । इस अवस्था का प्रमुख लक्षण आक्रोश, बड़ों के द्वारा स्थापित मूल्यों पर आपत्ति व आशंका व्यक्त करना, क्रियात्मकता, आविष्कारिकता, बहादुरी, रोमान्स और साहसिक कार्य, भावुकता तथा सेन्स आफ ह्यूमन सिम्पथि आदि प्रमुख है । इस अवस्था की पहचान उसके शारारिक व योवन अंगों के विकास व उससे उत्पन्न उत्तेजना से होता है । इस अवस्था की शक्ति व ऊर्जा अनुमान से परे है । यह एक प्रकार से अन्धी शक्ति है । जिसका विवेकपूर्ण प्रयोग करने की आवश्यकता होती है । इस अवस्था का मानस संघर्षी, नवीनता का आग्रही होता है । वास्तव में यह संघर्षी मानस है जिसने लड़ने की शक्ति व व्यवस्थित दिशाओं व मान्यताओं को तोड़ने की शक्ति व अपना अनूठा तर्क होता है । इस अवस्था में युवक को पहला संघर्ष

अपने अस्तित्व के लिए करना पड़ता है । अस्तित्व की लड़ाई उसे परिवार, समाज, अर्थ, धर्म, राजनीति आदि सभी स्तरों पर करनी पड़ती है । वह अनुचित दबावों का तुरन्त प्रतिकार करता है । यह मानस किसी भी चीज की कीमत उपयोगिता की दृष्टि से आंकता है । इस मानस में सिद्धान्त व ज्ञान होने के बावजूद अनुभव की कमी होती है जिसके कारण सहनशीलता का अभाव होता है । तुरन्त क्रिया या प्रतिक्रिया में आना इसका सबूत है ।

जिस प्रकार युवावस्था मनुष्य होने की पूर्ण क्षमता रखता है, उसी प्रकार "युवा मानस" सोचने विचारने की पूर्ण क्षमता रखता है । यह ऐसा उन्मुक्त मानस है, जिसमें सामान्यत: किसी प्रकार का दोष नहीं होता है । यह किसी वस्तु के पूर्वाग्रह से मुक्त अद्भुत क्षमता व प्रेरणा से भरपूर होता है । पुरानी पीढ़ी व पुराना फैशन इस मानस को स्वीकार नहीं है । ये क्रांतिकारी परिवर्तनों के आकांक्षी होते हैं । इसीलिए होश की अपेक्षा जोश की अधिकता का नाम युवा मानस है । ये जितने वेग से अपने अन्दर परिवर्तन अनुभव करता है ठीक उतने ही वेग से अपने आस-पास की परिस्थितियों में भी परिवर्तन चाहता है । इस मानस में सोचने समझने के लिए ज्यादा समय नहीं रहता । अत: यही कारण है कि बाहरी जटिल परिस्थितियाँ युवा-मानस को आघात पहुंचाती है । फलस्वरूप धीरे-धीरे युवा मानस भी कुंठित, हताश व अनेक बुराइयों का शिकार हो जाता है । उसमें अनेक मानसिक ग्रंथियां उभर आती हैं जो उसके व्यक्तित्व के लिए घातक है ।

आज के युवा मानस की विसंगतियों का महत्वपूर्ण पहलू पैसा और प्यार है । इस अवस्था में ये दोनों ही उसे अत्यधिक आकर्षक लगते हैं और वह इन दोनों को प्राप्त कर अपने सपनों को साकार करना

चाहता है । दुर्भाग्य यह है कि आजके युवा की प्रमुख समस्या भी यही है । ऐसा देखा गया है कि जिन युवकों में ये दोनों ही पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं वे आदर्शप्रिय व परम्पराओं तथा नैतिक मूल्यों में विश्वास रखते हैं परन्तु जिन्हें नहीं मिलता वे या तो नदी-नालों या खोह की तलाश करते हैं या फिर आक्रोशी तथा विद्रोही हो जाते हैं । आज के युवा की हर लड़ाई की शुरुआत प्यार व पैसा प्राप्त करने से होती है ।

परिवार समाज की इकाई है और जातीय सांस्कृतिक निधि का प्रसारक एवं पोषक होता है । आनुवंशिक संस्कृति को परिवार ही संक्रमित करता है तथा बालक में अनुकरण निर्देशन, प्रोत्साहन, प्रशंसा, भय, दण्ड, कल्प एवं गति द्वारा उसका प्रचार व प्रसार करता है । पूर्व औद्योगिक समाज में किशोर अपने परिवार का एक सदस्य होता था । वह माता-पिता के व्यवसाय एवं जीविकोपार्जन की क्रियाओं में हाथ बंटाता था और परिवार में ही पिता के जीविकोपार्जन की क्रियाओं में लगकर स्वत: उस व्यवसाय में प्रशिक्षित हो जाता था । इस तरह वह माता-पिता के सम्पर्क में ही युवा होता था तथा परिवार की संकुचित दृष्टिकोण, कठोर धारणा, पूर्वाग्रह, अभिवृत्ति और मनोभावों को अर्जित करता हुआ पिता के राह पर ही चल पड़ता था । इस तरह वह बेकारी का शिकार होने से बच जाता था । परन्तु बीसवी शताब्दी में औद्योगिक, नागरीकरण तथा व्यक्तिवादी विचारधाराओं के कारण परिवार की परिधि, आकार एवं रूप-रेखा में तेज़ी से परिवर्तन हो रहा है । परिवार दिनो-दिन टूटता जा रहा है । आधुनिक कहलाने और दिखने की चाह में परिवार आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक उत्तरदायित्वों का वहन ठीक रूप से नहीं कर पाता है । इन परिवर्तनों के कारण अभिभावक अपने व्यवसाय तथा जीविकोपार्जन में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि वे अपने बच्चों को सामाजिकता के बारे में सही दृष्टि दे ही नहीं पाते । साधन सम्पन्न माता-पिता अपनी संतानों को होस्टल

में डालकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि इन दोनों ही स्थितियों में बालक बचपन से ही माता-पिता के सम्पर्क से वंचित रह जाते हैं और आगे चलकर यही युवावस्था में अकेलापन, अजनबी जैसे ग्रंथियों को जन्म देता है, साथ ही युवामानस के सामने सामाजिक मूल्यों में भी अनेक अन्तर्विरोध उपस्थित होते हैं। घर बाहर तथा स्कूलों में जो सामाजिक मूल्य उसे सिखाये जाते हैं वे स्वयं आप में विवादास्पद होते हैं। अतः युवा वर्ग के सामने यह संकट पैदा हो जाता है कि वास्तव में कौन सा सही है और कौनसा गलत है। सही और गलत की उलझन में युवा सामाजिक मूल्यों से विद्रोह कर बैठता है। परिवार के साथ भावात्मक लगाव भी कम होता जा रहा है। आज का युवा अपने अभिभावक का आदेश बिना तर्क किए मानने को तैयार नहीं है। इसका कारण वैज्ञानिक दृष्टि का विकास तथा पारिवारिक संस्कारों का अभाव है। सामाजिकरण की इस प्रक्रिया में आज का युवा मानस भटक रहा है। उसका संघर्ष अपने परिवार, अपने कुटुम्ब के प्रति है। वह अपने प्रौढों के अनुरूप बनना नहीं चाहता, अपितु उसमें परिवर्तन चाहता है। वह किसी तथ्य के मात्र वर्णन से संतुष्टि नहीं होता बल्कि स्वयं अनुभव प्राप्त करना चाहता है।

सही तौर पर देखा जाए तो आज के सामाजिक परिवेश में युवा वर्ग उपेक्षित परिस्थितियों से गुजर रहा है। अपनी अस्मिता व महत्व की आकांक्षा ने उसको समाज के प्रति संदिग्ध बना दिया है। बदलता हुआ आजका आधुनिक परिवेश परिवार के प्रति संदेह, परिवार में भय पैदा करने लगा है। माता-पिता युवा संतान को बांधना नहीं चाहते बल्कि उसे जीवन-यापन की पद्धति में ढालना चाहते हैं। उन्हें हमेशा किशोर के प्रति भय रहता है। सामाजिक विषमता को जानते व समझते हुए भी उनका यह प्रयत्न उनकी विवशता है। वे नहीं चाहते कि इन्कलाब की पहली आवाज उनकी संतान के गले से निकले जिसके कंधे

पर उसका बुढ़ापा लदा हो । अतः वे युवा को पुराने रास्ते पर ले जाना चाहते हैं और यहीं से पीढ़ी अन्तर का संघर्ष प्रारंभ होता है । पीढ़ी अन्तर का यह संघर्ष शाश्वत है । हर पीढ़ी अपने पुरानी पीढ़ी व पुराने दृष्टिकोण को गलत साबित करना चाहती है । और इसी भाव-भूमि से युवा संघर्ष, युवा संस्कृति, युवा-चिन्तन का जन्म होता है ।

स्वतंत्रता के बाद जन्मी भारत की एक पूरी पीढ़ी आज मतदान का अधिकार प्राप्त कर चुकी है । स्वतंत्रता इनके लिए शासन हस्तान्तरण से अधिक कुछ नहीं रहा है । भारतीय परिवेश में व्याप्त खोखले आदर्श, नैतिकता, सामाजिक मूल्यों के टूटने के साथ-साथ विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में नयी-नयी क्रान्तियाँ, पाश्चात्य आधुनिक फैशन के बढ़ते प्रभाव में वह अपने आप को कहीं नहीं पा रहा है । बड़े-बड़े कुर्सीखोरों को अपने निजी स्वार्थों के लिए भ्रष्टातिभ्रष्ट हथकंडे अपनाते वह रोज ही देखता है । अतः उसका विद्रोही होना स्वाभाविक है । इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता । जीवन की सच्चाई को समझने की राह में आज का युवा घर में दिन-रात पारिवारिक कलहों से जूझता है । अतः उस पर पाश्चात्य की नकल या फैशन-परस्ती का इल्जाम लगाना अनुचित है । संबंधों की मिठास आर्थिक संकट के आगे फीकी पड़ गयी है । इसीलिए वह अपनी मायूसी छुपाने के लिए पाश्चात्य तरीकों को अपनाता है । एक तरफ आधुनिक यन्त्रों से उत्पन्न वस्तुएं उसे आकर्षित करती हैं तो दूसरी ओर भारतीय पारम्परिक अनुशासन व संस्कारों का भ्रम उसे बीच की स्थिति में गुनहगारों के कटघरे में खड़ा कर देती है । अगर एक ही वाक्य में कहना हो तो यही कहा जा सकता है कि भारतीय युवामानस यदि तन से पूरी तरह पाश्चात्य है तो मन पाश्चात्य की तरफ उड़ते-उड़ते समकालीन भारतीय परम्परा की तरफ लौट पड़ता है । जैसे विदाई के समय व्यक्ति बार-बार मुड़कर अपने प्रियजनों को आत्मविभोर हो देखता है ।

आधुनिक बोध का अर्थ है वर्तमान का बोध होना है और इस पीढ़ी को वर्तमान का बोध है । आज की विषम परिस्थितियों में जीता हुआ युवा वर्तमान परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाता बल्कि उसे बदलना चाहता है और यहीं से विद्रोह की नींव पड़ती है । उसका विद्रोह किसी एक व्यवस्था से नहीं बल्कि सभी रूढ़िगत व्यवस्थाओं से है, जो आज के जीवन में गतिरोधक सिद्ध हो रहे हैं । इसलिए यह माना गया है कि आज का विद्रोह युद्ध की घोषणा नहीं है, तथाकथित विश्वास के प्रति अविश्वास की घोषणा है । उठाया गया हर कदम अपने लिए रास्ते खोजना नहीं है बल्कि निर्धारित रास्तों से इन्कार है ।

बीसवीं शताब्दी के छठे, सातवें और आठवें दशकों में युवा मानस ने जिस प्रचंड शक्ति का परिचय दिया है उससे पुरानी पीढ़ी चौंकी है । आज विश्व में हुए युवा जागरण का उदाहरण युवा आन्दोलन है । विश्व के नक्शे में ऐसा कोई देश नहीं बचा है जहां युवा आन्दोलन नहीं हुए हैं । इन सभी आन्दोलनों का मुख्य लक्ष्य युवा अस्तित्व को स्वीकार करवाना तथा युवा दृष्टि व शक्ति को मनवाना है । इन आन्दोलनों में से अधिकांश आन्दोलन जड़ परम्पराओं और भ्रष्ट प्रशासन के विरूद्ध है । शिक्षा संस्थाओं में व्याप्त अनुशासनहीनता ने शिक्षा का अर्थ ही बदल दिया है । भविष्य के आशा और दिलाशा झूठे पड़ चुके हैं । हमारा सारा समाज दोहरी नकाब लगाए जिए जा रहा है । इतना बड़ा वैचारिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा मूल्यगत विद्रोह पैदा हो गया है कि असली नकली में फर्क नहीं रहा है । ईमानदारी और सच्चाई, सच और झूठ का एक ही रंग हो गया है । चरित्रहीनता की इस स्थिति ने एक नये पोषण को जन्म दिया है । परिणामस्वरूप पीढ़ी अन्तराल की खाई और अधिक गहरा गयी है । यदि नयी पीढ़ी क्रुद्ध होकर यह नारा लगाती है कि पीढ़ियों के बीच कोई सम्वाद शेष नहीं है तो गलत नहीं है ।

असंतुलित आर्थिक विकास ने सामाजिक जीवन में ही असंतुलन पैदा नहीं किया है बल्कि एक नयी मानसिकता रच डाली है। नैतिकता का प्रश्न इसी विसंगति के शिकंजे में फँसा है। जिसके पास पैसा है उसके पास सब कुछ होते हुए भी कुछ भी नहीं है तथा दूसरी ओर जिसके पास धन का अभाव है उसके पास कुछ भी नहीं होते हुए भी सब कुछ है। पैसा आज के समाज का इष्ट देव है। सभी इसे प्राप्त करने की होड़ में लगे हुए हैं। पैसा की हुकूमत समाज पर चलती है। मध्य व निम्न वर्ग के युवकों की समस्या मुख्य रूप से अर्थ की है। इसीलिए मध्य तथा निम्नवर्गीय युवकों का मानस आर्थिक आवश्यकताओं के आस-पास ही तैयार होता है। उसकी हर समस्या अर्थ से शुरू होकर अर्थ पर समाप्त होती है। आर्थिक संकट उसके व्यक्तित्व को खण्डित कर देती है। नौकरी करना उसका वंशगत पेशा है। जब कि वर्तमान शिक्षा पद्धति बेकारों की संख्या बढ़ा रही है। हजारों लाखों युवक रोज़गार की तलाश में मारे-मारे फिर रहे हैं। रोटी-रोजी का लालच उससे समाज विरोधी कार्य करवाते हैं। इस मानस में प्रशासन के प्रति आक्रोश भड़क रहा है। इसमें प्रशासन के प्रति आक्रोश है। निराशा और विद्रोह की भावना तोड़-फोड़ और अव्यवस्था को प्रोत्साहित कर रही है। रोजगार और नौकरी का संबंध भारतीय शिक्षा से दूर होता जा रहा है। विद्यालय तथा विश्वविद्यालय गुंडों व स्वार्थों का गेह बन गया हैं। धर्मान्ध इन समस्याओं को धर्म से जोड़कर तोड़-फोड़ व खून खराबे की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित कर रहे हैं परन्तु इन बढ़ती समस्याओं का समाधान नहीं निकल पा रहा है। व्यक्ति की जटिलता की हद को वह पार कर रहा है। व्यक्ति की विवशता इस तरह हावी हो गयी है कि मानव-मानव से कतराने लगा है। दहेज कहर ढा रहे हैं। बलात्कारों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। गर्भपात और परिवार नियोजन की इतनी सुविधाओं के बावजूद भी नाजायज बच्चों की फसल लहलहा

रही है । फैशनपरस्त व आधुनिक कहलाने की ललक व्यक्ति से कुछ भी करा सकती है । लड़कियां दहेज के नाम पर कुंवारी रह जाती हैं । लड़के बेरोजगारी के कारण कुंवारे हैं । आज के इस भारतीय परिवेश में पौरुषता कम होती जा रही है । जिम्मेदारियों से युवा वर्ग भागता नज़र आता है । बेरोज़गारी उसे आवारा बनाकर समाज विरोध, व्यक्ति विरोध और स्वयं विरोधी कार्य करवाती है । यही आवारा युवक हर प्रकार की मौज-मस्ती चाहता है लेकिन जिम्मेदारी नहीं । युवावर्ग की इस लाचारी और मजबूरी ने उसे दर-बदर कर दिया है । अपने ही संबंधी उसे बेगाने लगने लगे हैं । अपने ही माता-पिता, भाई-बहन दुश्मन बन गये हैं । इसलिए वह घर से बाहर एक ऐसा रिश्ता ढूंढता है जो उसकी समस्याओं को समझ सके, और वह रिश्ता है दोस्ती का । इस रिश्ते के माध्यम से ही वह अपनी भड़ास निकालता है । दोस्ती की खोज ममता की खोज है और इस संबंध से ही वह विपरीत लिंगी के प्रति भी आकर्षित होता है तथा अवचेतन में दबी रति भावना के उत्सर्जन का प्रयास भी करता है । दुर्व्यवस्थाओं के कीचड़ में फंसा यह युवा वर्ग न तो रो पाता है और न ही हंस पाता है । अतः परिस्थितियों में विपर्यन करता है ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि विसंगति व विषम परिस्थितियों में [illegible] हुए युवा मानस में भविष्य के सपने हैं । वह समस्याओं से हारता नहीं बल्कि परास्त करने का संकल्प लेता है और एक सुनहरा भविष्य उसे बुलाता है । हार कर भी उठना इसका सबूत है । आज का युवा आत्महत्या के स्थान पर संघर्ष की राह चुनता है । समस्याओं को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करता है । अपवादों की बात अलग है । अत: यह स्पष्ट है कि सामान्य तौर पर भारत की युवा पीढ़ी गुमराह नहीं है । बल्कि समाज, राजनैतिक मूल्य, दुव्यवस्था उसे गुमराह कर रही है । उचित शिक्षा का अभाव

बेरोजगारी जैसी भयंकर समस्याएं युवा मानस को आघात पहुंचा रही है । उसका यह दुर्भाग्य है कि उसे न तो भारतीय संस्कृति की सही जानकारी है और न ही पश्चिमी विचारधाराओं एवं उपलब्धियों की तादात्म्यता तथा संगति । परम्परागत इज्जत के नाम पर युवा वर्ग का शोषण करनेवाली यह बुजुर्ग पीढ़ी न तो उसे सही दिशा दे पायी है और न ही सही जीवन दृष्टि । अभावों में पली इस पीढ़ी को दयनीय बनाकर उसे अभावग्रस्त जीवन व भ्रष्ट चरित्र के साथ कोमल कल्पना, स्वर्ग व नरक जैसी झूठी आस्थाहीन भय, पाप-पुण्य आदर्श जैसी खोखली बातें ही विरासत में दे पाया है । यदि इस विसंगति में वह तड़पता छटपटाता युवा मानस आक्रोशी होकर परम्पराओं व नैतिक मूल्यों को नकारता है तो दोष सिर्फ उसका ही नहीं है दोषी पूरा का पूरा वह परिवेश है जो उसे जन्म से लेकर आज तक मिला है । सच तो यह है कि इस आठवें दशक के बुजुर्ग और युवा पीढ़ी में किसी भी प्रकार की समझ का सम्वाद अब शेष नहीं रहा और न ही यह आश्चर्य की बात है ।

उपन्यास समाज तथा व्यक्ति के बाह्याभ्यान्तर की अनुभव सम्पदा को उसकी समस्त वास्तविकता, परिवेशगत जीवन्तता तथा ऐतिहासिकता से जोड़कर प्रस्तुत करता है । ऐसी स्थिति में जो युग जितना जटिल, आवेग पूर्ण परिवर्तन के आग्रही संवेदनशील तथा प्रतिश्रुत होता है, उस युग की रचना भी उसी अनुपात में विद्रोह और यथा-स्थिति को प्रस्तुत करने की क्षमता से पूर्ण होती है । या फिर रूढ़ी और परम्परा के उन मूल्यों के खिलाफ अपने पक्ष को सुदृढ़ करती है । अत: विद्रोह नये मूल्यों को जन्म देता है और विद्रोही मानव नये मूल्यों का समर्थक होता है । विद्रोह करने की मानसिक व सामाजिक क्षमता युवा मानस में ही अधिक होती है । अत: आदर्शों, सामाजिक व्यवस्था व संस्कार पर प्रहार करनेवाला युवा मानस जब अपने लिए संघर्ष करता

है तो उसके सामने गत पीढ़ी की मजबूरी, समय की उलझन और पारम्परिक भावों का बाधक रूप में उभरना अपरिहार्य है जिन्हें वह परास्त करने का स्वप्न देखता है ।

आठवें दशक का लेखन युवा मानस की इसी भाव-भूमि को प्रस्तुत करता है । इसीलिए यह अधिक आक्रामक, सामाजिक जीवन की विसंगतियों के कारण आक्रोश से भरा हुआ तथा युवा वर्ग की जुझारू मानसिकता और इस मानसिकता को तोड़नेवाली सत्ता के विभिन्न चेहरों की पहचान में सजग और सतर्क रहा है । इसका आक्रामक और इस तरह गुस्से से भरा होना समय की माँग है । क्योंकि जब पूरा समाज नये क्षितिज की तलाश में भटक रहा है और इस भटकान के दौरान वह अनेकों विसंगतियों को देखता है तब इस दशक के लेखन की नियति और कुछ हो ही नहीं सकती । इस दशक का लेखन भोग और यथार्थ के अनुभव से परे नहीं है । शिल्प और भाव-योजना में कलात्मकता के साथ भोगे हुए यथार्थ की कठोर भूमि साथ-साथ चलती है । निश्चय ही इस दशक का लेखन यथार्थ से मिलकर सार्थक हो गया है । आज का पाठक बनावटी और स्वपनीली दुनिया से ऊब चुका है । अत: वह वही कुछ जानना और पढ़ना पसंद करता है जो उसके आस-पास बिखरा हुआ है । समय की नियति ने उसे समझा दिया है कि वही सोचो जिसे तुमने देखा और भोगा है । इसका परिणाम यह हुआ है कि आज व्यक्ति लेखन में अपनी ही समस्याओं को व्यक्त करना श्रेयस्कर समझता है और पाठक वर्ग भी उसी साहित्य को पसंद करता है, जिसमें उसके जीवन का दर्द छुपा है । आठवें दशक का लेखन लेखक तथा पाठक दोनों की माँग की पूर्ति करता है । नारी के विभिन्न आयामों को आधुनिक युग के बदलते परिवेश में रेखांकित करने का प्रयास आठवें दशक में मिलता है । नारी इन उपन्यासों की भोग्या या तृप्ति का साधन नहीं है, बल्कि आज के संदर्भ में बदलते हुए युग की व्यथा-कथा है ।

नितान्त व्यक्तिवादी उपन्यासों के भीतर भी कहीं न कहीं व्यक्ति और सामाजिक परिवेश का द्वन्द्व मिलता है। युवा-पीढ़ी व बुजुर्ग पीढ़ी का संघर्ष घर से लेकर बाहर तक निरन्तर जारी है। सामाजिक जड़ता मानवीय संबंधों को ही अपरिवर्तनीय अवस्था में लाकर खड़ी नहीं करती बल्कि संबंधों की क्रिया-प्रतिक्रिया ही कथा-वस्तु के रूप में उभरती है। अकेलापन, संत्रास, कुंठा और सत्ता की स्थितियों के बीच असंगतियाँ, निर्वासिन, पलायन के नारे स्वयं ही नारे के रूप में उभरते हैं। अतः यह मानना ही होगा कि आठवें दशक का लेखन अपनी शिल्प के साथ जिन-जिन स्थितियों को लेकर चला है वह एक सार्थक मोड़ तैयार करता है। ऐसा नहीं है कि आठवें दशक से पहले ये सारी बातें नहीं लिखी-पढ़ी गयी हों, फिर भी यह कहना ही पड़ता है कि आलोच्य दशक का तेवर अपने पिछले दशकों से तीखा है। मानवीय स्थिति और विशेषकर मध्यवर्ग के युवकों का इतना विस्तृत वर्णन केवल आठवें दशक में ही मिलता है। अतः इस दशक का लेखन तमाम स्थितियों और अन्तर्द्वन्द्वों की दस्तावेज है।

जिस दशक का लेखन ही इतनी विसंगतियों से भरा हो वहाँ युवा मानस की स्थिति का आकलन आसानी से लगाया जा सकता है। आठवें दशक में चित्रित युवा व्यक्ति का व्यक्तित्व और मानस एक ही राह पर चल पड़ा है। व्यक्तित्व वही है जो उसका मानस है। इन युवा पात्रों में आकांक्षा, स्वप्न, तथा सुख की कामना के साथ संत्रास, आक्रोश, भय मजबूरी तथा विद्रोह भी विद्यमान है। युवक आस-पास के युवकों के समान ही है। उनमें भी वे ही प्रवृत्तियाँ काम करती हैं जो आज के सामान्य युवक में काम करती हैं। इस दशक के युवकों की यह विशेषता है कि ये ख्याली पुलाव नहीं बनाते हैं। यथार्थ की धरती ही उनके व्यक्तित्व व मानस की रचना की गयी है। युवक बचपन से ही परिस्थितियों को समझते चलते हैं। जीविकोपार्जन में माता-पिता का व्यस्त रहना, आधुनिक माता-पिता की मजबूरी है।

अ

अत: इस बात को इस दशक के युवक अच्छी तरह समझते हैं । संबंधों की रागात्मकता की सूखती धार आज का बालक बचपन से ही देखता और समझता आ रहा है । इसीलिए इन युवकों में संबंधों को लेकर हो-हल्ला नहीं है ।

किसी भी मानस पर सबसे ज्यादा प्रभाव उसकी परिस्थितियों का पड़ता है । आठवें दशक का युवा मानस भी इसका अपवाद नहीं है । घर की परिस्थिति से लेकर बाहर की परिस्थितियों का प्रभाव युवा मानस पर बुरी तरह से हावी है । आज के औद्योगिक युग में मानव का जीवन पैसे के इर्द-गिर्द ही घूमता है । पैसा समाज का बादशाह है । यही कारण है कि पूरा का पूरा मानव समाज पैसे के पीछे भागता हुआ नज़र आ रहा है । युवा वर्ग भी इस दौड़ के पीछे भागता हुआ नज़र आ रहा है । युवा वर्ग भी इस दौड़ के पीछे है । उसने देखा है कि परिवार में पैसे को लेकर रोज ही झमेला खड़ा होता है । युवक धन सम्पत्ति के प्रति अत्यन्त जागरूक हैं । घर की आर्थिक स्थिति का प्रभाव मध्यवर्गीय युवकों पर अधिक है । इस वर्ग के युवकों का पहला लक्ष्य नौकरी व पैसा प्राप्त करना है । पैसा बनाने के चक्कर में ये युवक गाँव से शहर की ओर गमन करते हैं और शहर में अनेकों समस्याओं से गुज़र कर भी अपना लक्ष्य तलाशते हैं । आज के आधुनिक युग की पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की विषमता व विसंगति ने युवकों का आत्मविश्वास ही नहीं उसकी आस्था को भी झकझोर दिया है । मध्यवर्ग के युवकों की आस्था के टूटने का मुख्य कारण आर्थिक लड़ाई में मिलनेवाली निरंतर हताशा है । उपन्यासों में ऐसे हताशापूर्ण वातावरण में भी हिम्मत न हारनेवाले हिम्मत के साथ संघर्षमय जीवन बितानेवाली आधुनिक युवतियों का भी चित्र है ।

आठवें दशक के युवकों में वैयक्तिक मूल्य तथा नैतिकता अधिक मात्रा में है। विवाह और यौन संबंधों को लेकर युवा वर्ग में परम्परा के प्रति विद्रोह है। युवक/युवतियाँ एक तरफ विवाह और प्रेम संबंधों की व्याख्या को नये ढंग से विश्लेषित करते हैं तो दूसरी तरफ पुरानी रूढ़ि में फंसा मानस दाम्पत्य जीवन में तीसरे के प्रवेश से क्षुब्ध हो जाता है। क्रान्तिकारी विचारधारा मात्र सिद्धान्त बन कर ही रह गयी है। इस दशक की एक विशेषता यह भी रही है कि युवा मानस में अधिकार और कर्तव्य को लेकर कोई द्वन्द्व नहीं है। युवक/युवतियाँ अपने अधिकार और कर्तव्य को बखूबी पहचानते और निभाते हैं। पारिवारिक लगाव विशेष रूप से मध्यवर्ग के युवकों में मिलता है जो धीरे-धीरे समय की धूप में सूखता चला जाता है। महत्वाकांक्षी युवक जीवन को सुखमय बनाने के लिए नैतिक व अनैतिक कार्यों में फर्क नहीं करते हैं। इन सबके बावजूद आधुनिक परिवेश में युवामानस किसी न किसी कारण से कुंठित दिखाई देता है। कारण चाहे जो हो परन्तु उनके आन्तरिक मन में हलचल है। सफलता और असफलता जीवन की दिशा तय करते हैं। सफल मानस जितना उत्साही है असफल मानस उतना हताश नहीं है। युवा मानस भविष्य के प्रति आशावान है।

आठवें दशक के युवा मानस में विद्रोह की भावना मानसिक स्तर पर अधिक है। वह जीवन में बाधक परम्पराओं, रूढ़ियों तथा नैतिकताओं को नकारना चाहता है। परन्तु उसकी कुछ ऐसी मजबूरियां भी हैं जो उसे सामूहिक विद्रोह करने से रोकती है। युवा मानस में निषेध की भावना उन सभी क्षेत्रों में मिलती है जो परम्परा के अनुसार वैध है। असमर्थता का बोध अकेलेपन की पीड़ा को जन्म देती है। युवक जहां कहीं किसी कारण असफल या असमर्थ हो जाते हैं। वहीं अपने आप को अकेला महसूस करते हैं। वे धीरज और धर्म की तलाश बाहरी दुनिया के बजाय अपने अन्दर करते हैं। यही कारण है कि वे एक बार फिर उठ खड़े होते हैं। जीवन में किसी एक क्षेत्र की असफलता

जीवन की असफलता नहीं बनती है । प्रेम की असफलता में ये युवक भावुकता से ज्यादा बुद्धि से काम लेते हैं जिसके कारण हैं असफल प्रेम जीवन में भटकाव पैदा नहीं कर पाया है । स्वाभिमान और आत्म-विश्वास की भावना आलोच्य दशक के युवकों में अधिक है । इसका आत्मविश्वास ही समस्याओं से बाहर निकलने में मदद करता है ।

आधुनिक युग की देन वैयक्तिक भावना है जिसका अर्थ वैयक्तिक सुख से है । इस दशक के युवकों में भी वैयक्तिक भावना मिलती है । स्वयं के उत्थान व आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए युवक सामाजिक मान्यताओं को नकारते हैं । व्यक्तिक स्वतंत्रता के आकांक्षी ये युवक सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को अपनी दृष्टि से परखता है । वह अपनी वैयक्तिकता की रक्षा के लिए समाज से टकराता है और हर कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार होता है ।

समय की जटिलता और दिनों-दिन वैज्ञानिक विकास और मानव की बढ़ी आवश्यकता और आकांक्षाओं ने मनुष्य को अधिक जटिल बना दिया है । युवा मानस के संदर्भ में यह बात और भी सार्थक प्रतीत होती है । वह जो आज है, कल परिस्थितियों के दबाव में आकर बदल सकता है । उसकी सोच उसकी विचारधारा क्षणिक बदलाव में नया मोड़ लेती है । अत: ऐसी हालत में सर्वकालिक दृष्टि देना मुश्किल है । फिर यह मानना ही पड़ता है कि आठवें दशक के युवक अन्तर्मुखी, संघर्षी स्वाभिमानी, आत्मविश्वासी तथा विद्रोही हैं । मौजूदा परिस्थितियों के प्रति वह जागरूक है । व्यवस्था में व्याप्त विषमता और विसंगति को पहचानते हैं । वे अपनी हालत और आस-पास के परिवेश को समझते हैं । इसीलिए वे कहीं आक्रोश और विद्रोह भी करते हैं तो कहीं जीवन से पलायन भी कर जाते हैं । उनकी इस दृष्टि को कोमल स्वप्न या दिवा स्वप्न कह कर अब नकारा नहीं जा सकता बल्कि समाज व व्यवस्था में उचित

मान- स्थान देखकर रचनात्मक कार्य लिया जा सकता है । फैशनपरस्ती या आवारा कहकर अपना दामन छुडानेवाले बुजुर्ग पीढ़ी को यह जिम्मेदारी है कि वह युवा मानस को कैसे जिम्मेदारियों के प्रति जिम्मेदार बनाये । सिर्फ पीढी अन्तराल कहकर खामोश बैठना भी युवा मानस को गलत राह पर ढकेलना होगा । होना तो यह चाहिए कि थोड़ा बुजुर्ग पीढ़ी आगे आएँ और थोड़ा युवा वर्ग पीछे हटे, और फिर दोनों मिलकर आगे की राह तय करें । सारा दोष किसी एक पक्ष पर मढना, दोषी पक्ष को अंधेरी सुरंग में ढकेलना है । परिणाम में या तो हमारा अतीत समाप्त हो जायेगा या फिर भविष्य । युवा मानस को सही मार्गदर्शन की तलाश है जो उसकी मानसिक स्थिति को समझ सके । यदि उसे यह मार्गदर्शन अपने बुजुर्ग पीढी से मिल सकेगा तो वह एक जिम्मेदार नागरिक बनकर अपने देश और जिम्मेदार पारिवारिक सदस्य बनकर परिवार के उत्तरदायित्वों को बखूबी निभा सकता है । उसे सही-गलत, उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक की परख और पहचान है । उसमें अधिकार के साथ अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता भी है । यदि ऐसा होता है तो निश्चय ही युवामानस कुछ नया कर सकेगा ।

.:.

परिशिष्ट

आधार ग्रंथ

		लेखक	प्रथम संस्करण
1·	अपना घर	मीरा महादेवन	1973 - अक्षर प्रकाशन प्रा०लि०
2·	अपना मोर्चा	काशीनाथ सिंह	1972 - प्रारूप प्रकाशन, इलाहाबाद
3·	अपराधिनी	शिवानी	1972 - हिंद पाकेट बुक्स प्रा०लि०, दिल्ली
4·	अन्तराल	मोहन राकेश	1972 - राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पटना
5·	अनामदास का पोथा	डॉ०हजारी प्रसाद द्विवेदी	1976 - राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, पटना
6·	अलग-अलग वैतरणी	शिवप्रसाद सिंह	1967 - लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
7·	आपका बंटी	मन्नू भंडारी	1971 - अक्षर प्रकाशन दिल्ली
8·	उपसंहार	योगेश गुप्त	1980 - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
9·	उसका शहर	प्रमोद सिन्हा	1970 - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
10·	एक टुकड़ा इतिहास	गोपाल उपाध्याय	1975
11·	कच्ची पक्की दीवारें	रामकुमार भ्रमर	1976 - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
12·	कड़ियां	भीष्म साहनी	1970 - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पटना

13.	काली आंधी	कमलेश्वर	1981 - राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली
14.	किसलिए	प्रभाकर माचवे	1970
15.	कोई तो	विष्णु प्रभाकर	1980
16.	गली आगे मुड़ती है	शिवप्रसाद सिंह	1974
17.	चितकोबरा	मृदुला गर्ग	1976 - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
18.	छोटे-छोटे महायुद्ध	रमाकान्त	1977
19.	जाने-पहचाने अजनबी	मीनाक्षी पुरी	1977 - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
20.	तमस	भीष्म साहनी	1973
21.	तीसरा आदमी	कमलेश्वर	1978 - राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
22.	थके पांव	डा०भगवतीचरण वर्मा	1973 - राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
23.	धुआं	अमृत राय	1976
24.	नरक-दर-नरक	ममता कालिया	1975
25.	नाचो बहुत गोपाल	अमृत लाल नागर	1978 - राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
26.	पचपन खंभे लाल दीवारें	उषा प्रियंवदा	1976

27.	परछाइयों के पीछे	शशिप्रभा शास्त्री	1979 - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
28.	पत्थरों का शहर	सुरेश सिंहा	1971
29.	बीमार शहर	राजेन्द्र अवस्थी	1972 - राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, नयी दिल्ली
30.	बेघर	ममता कालिया	1971 - रचना प्रकाशन इलाहाबाद
31.	भ्रम-भंग	देवेश ठाकुर	1975 - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
32.	महाभोज	मन्नू भंडारी	1979 - राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
33.	मुरदा घर	जगदम्बा प्रसाद दीक्षित	1974 - राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
34.	यह भी नहीं	महीप सिंह	1976
35.	यात्राएं	गिरिराज किशोर	1971 - राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली
36.	रथ से गिरी बांसुरी	हिमांशु श्रीवास्तव	1982 - आरती प्रकाशन दिल्ली
37.	राग दरबारी	श्री लाल शुक्ल	1968 - राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0, दिल्ली
38.	रिहर्सल	हिमांशु श्रीवास्तव	राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली
39.	रुकोगी नहीं राधिका	उषा प्रियंवदा	1967-अक्षर प्रकाशन, प्रा0लि0

40• रेत की मछली कांता भारती 1974 - लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

41• लाल पीली जमीन गोविंद मिश्र 1976

42• बावन नदियों का संगम शैलेश मटियानी 1981 - परिमल प्रकाशन इलाहाबाद

43• सफेद मेमने मणि मधुकर 1971

44• सीमाएं टूटती हैं श्रीलाल शुक्ल 1973 - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

45• सूरजमुखी अंधेरे को कृष्णा सोबती 1972 - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

46• सोया हुआ जल सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 1977 - लिपि प्रकाशन, नयी दिल्ली

(ख) सहायक ग्रंथों की सूची

1• अठारह उपन्यास राजेन्द्र यादव अक्षर प्रकाशन प्रा०लि., 2/36, अन्सारी रोड, दरिया गंज, नयी दिल्ली-2

2• अमेरिकी सभ्यता मैक्स लर्नर 1963, रामलाल पुरी, संचालक आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरीगेट, दिल्ली

3• अस्तित्ववाद और समरोत्तर हिंदी साहित्य श्याम सुंदर मिश्र

4• आठवें दशक के प्रतिनिधि श्रेष्ठ कविताएं डा०हरिवंशराय बच्चन, अजित कुमार, सरस्वती विहार, जी०टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली

5• आठवें दशक के हिंदी उपन्यास — डॉ० रामविनोद सिंह, अनुपम प्रकाशन, पटना

6• आधुनिक हिंदी उपन्यास - साहित्य में चित्रित समस्याएं (औद्योगिक संदर्भ) — डॉ० श्री चन्द्र सिंह, राष्ट्रीय साहित्य सदन, 36 गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ, 1985

7• आधुनिक हिंदी उपन्यास - सृजन और आलोचना — डॉ० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नयी दिल्ली

8• आधुनिक हिंदी उपन्यासों में परिकल्पना — डॉ० विजयमोहन सिंह रचना प्रकाशन, खुल्दाबाद, इलाहाबाद

9• आधुनिकता और हिंदी उपन्यास — इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रका० नयी प्रकाशन, पटना

10• कहानी फिलहाल — डॉ० रामेश्वर खण्डेलवार और डॉ० चन्द्रभान रावत, राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली

11• किशोर मनोविज्ञान की भूमिका — डॉ०सरयूप्रसाद चौबे, आगरा बुक स्टोर, रावतपाडा, आगरा

12• नवयुवकों से — डॉ०सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, सन्मार्ग प्रकाशन, 16 यू•बी• बेंग्लो रोड, जवाहर रोड, दिल्ली-6

13• नारी शोषण आईने और आयाम — आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली

14.	बाल मनोविज्ञान : बाल विकास	डॉ० प्रीति वर्मा, डॉ० डी.एन. श्रीवास्तव विनोद पुस्तक भण्डार
15.	भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएं	प्रमोला कपूर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
16.	भारतीय युवा आक्रोश	प्रो० सत्यदेव सिंह विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
17.	मानव समाज	राहुल सांकृत्यायन, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद
18.	विद्रोह और साहित्य	नरेन्द्र मोहन, देवेन्द्र इस्सर साहित्य भारती
19.	विज्ञान और नैतिकता	बर्ट्रेन्ड रसेल, अनु० धर्मपाल राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० 8 फैज़बाजार, दिल्ली
20.	संस्कृत के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली तीसरा संस्करण
21.	समकालीन कविता पर एक बहस	जगदीश नारायण श्रीवास्तव प्रथम संस्करण, 1978
22.	समकालीन हिंदी कहानी में पीढ़ियों का अन्तराल	डॉ० सूरजप्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
23.	समाज मनोविज्ञान	हंसराज भाटिया

24.	सामान्य मनोविज्ञान	डॉ० प्रीति वर्मा, विनोद पुस्तक भंडार,
25.	साठोत्तर हिंदी उपन्यासों में नारी विविध आयाम	विमल शर्मा
26.	स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में जीवन-दर्शन	डॉ० सुमित्रा त्यागी
27.	हिंदी उपन्यास	डॉ० सुरेश सिंहा
28.	हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा	रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
29.	हिंदी उपन्यास : तीन दशक	डॉ० राजेन्द्र प्रताप
30.	हिंदी उपन्यास परम्परा और प्रयोग	डॉ०सुभद्रा, मलंकार प्रकाशन, 666 गली, दिल्ली
31.	हिंदी उपन्यास पहचान और परख	इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, दिल्ली
32.	हिंदी उपन्यास प्रयोग के चरण	डॉ० राजकमल बोरा, नमिता प्रकाशन, आनंद नगर हाउस, औरंगाबाद
33.	हिंदी उपन्यास प्रेम और जीवन	डॉ० शान्ति भारद्वाज, प्रकाशक - सुशील माथुर, सुशील प्रकाशन, अजमेर,
34.	हिन्दी उपन्यास महाकाव्य के स्वर	डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्ता, अशोक प्रकाशन, नयी दिल्ली

35.	हिंदी उपन्यास में मध्य वर्ग	डॉ० हेमराज निर्मम, विभु प्रकाशन, सहिदाबाद-5,
36.	हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ० रमेश तिवारी, रचना प्रकाशन, 45-ए, इलाहाबाद
37.	हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना	डॉ० कुंवरपाल सिंह, प्रकाशक : हरीराम द्विवेदी कृष्ण नगर, दिल्ली
38.	हिंदी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद	सर्वजीत राय, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद
39.	हिन्दी कहानी पहचान और परख	इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली
40.	हिन्दी कविता सम्वेदना और दृष्टि	राम मनोहर त्रिपाठी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नया दिल्ली
41.	शिक्षा और संस्कृति	जैनेन्द्र कुमार व ललित शुक्ल समान्तर प्रकाशन, दरियागंज नया दिल्ली

हिन्दी पत्र-पत्रिकाएं

1. कादम्बिनी - मासिक प्रकाशन, मई, 1983, पृ. 7
2. धर्मयुग - युवा विशेषांक, 27 नवंबर, 1983
3. नव-भारत टाइम्स, 19 अक्तूबर, 1989
4. रविवार - 14 सितम्बर, 1985
5. रविवार, जनसत्ता, 3 फरवरी, 1985 - 17 फरवरी, 1985
6. समीक्षा, अक्तूबर, 1985

हिंदी शब्द-कोश

1. नालन्दा शब्द सागर	सम्पा0 श्री नवल जी आदीश बुक डिपो, दिल्ली
2. मानक हिंदी कोश (4)	सम्पा0 रामचन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
3. हिन्दी विश्व कोश (18)	सम्पा0 नगेन्द्र नाथ बसु, बा.आर.पब्लिशिंग कारपोरेशन दिल्ली
4. हिन्दी शब्द सागर	सम्पा0 श्याम सुंदर दास, काशी नागरी प्रचारणी सभा

अंग्रेजी पुस्तकें

1.	Adolescence and youth.	John Janeway Conger Hopes Row, Publishers Inc. 10 East, 53rd Street, New York.
2.	Adolescent Development.	Elizabeth Herlocks
3.	The Out of School Youth	V.L.Reddy, R.S.Bhat, Sterling Publishers Pvt. Ltd., AB/9, Safdarjang Enclave, New Delhi-110016
4.	The Psychology of Adolescence	T.Jersild, Judiths, Brodes and David W.Brook Third Edition, Macmillan Publishing Co. - Ind. 866 Third Avenue, New York.
5.	Understanding adolesence	Somes F. Adams Second Edition Allyn and Bacon, & Co., Boston
6.	Youth and Indian Independence.	Karan Singh
7.	Youth in Modern Society.	L.S.Mehra
8.	Youth in Revolt	Sagar Ahluwalia 1972, Young Asia Publication, Post Box No. 2513 New Delhi-22

9. Youth in Modern Society. — Shirely M. Clark/ John P. Clark (Editor)

10. Youth University and Community — Edited by B.K. Misra C.M. Jain - S.L. Doshi

11. The New Encyclopedia Macropedia Volume — Britanic in 30 Volumes 19 - Encyclopedia Britanic, Inc. William Belon, Publisher 1943 Helen Hemingway Benton.

अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएं

1. Deccan Chronical (Sunday) 3 Feb., 1985

2. Mirror, July, 1984

3. Sunday, 28 Feb., 1984 Page No. 7.